॥ अथ ॥

पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम्

भाषाटीकया सहितम्

प्रकाशक—पं० त्रिभुवननाथ भार्गव

भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी १.

मूल्य ३)

* अथ *
पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम्
॥ भाषाटीकया सहितम् ॥
प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी १.

पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम्

※ श्रीसद्गुरवे नमः ※
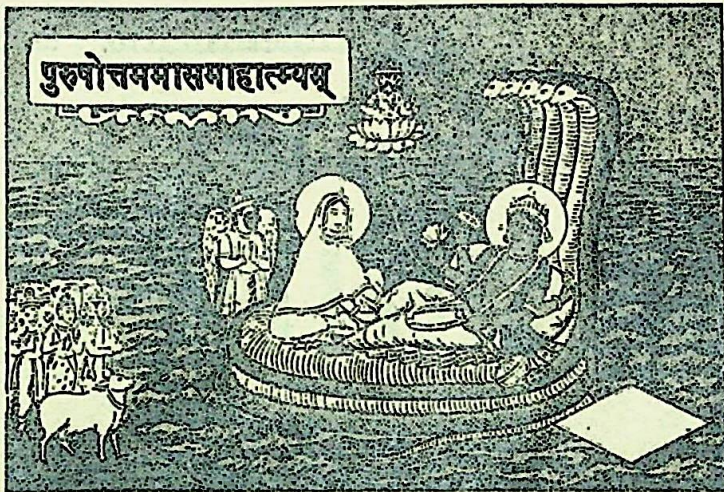
अथ पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम्

वन्दना करनेवाले के लिये कल्पतरु, वृन्दावन में विनोद करनेवाले, वृन्दावन की शोभा के नाथ, ऐसे अद्भुत भगवान् पुरुषोत्तम की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥ नारायण (ईश्वर), नर (जीव), नरोत्तम (शुद्ध ब्रह्म) ज्ञानमयी

श्री गणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ वन्दे वन्दारुमन्दारं वृन्दावनविनोदिनम् ॥ वृन्दावनकलानाथं पुरुषोत्तममद्भुतम् ॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ नैमिषारण्यमाजग्मुर्मुनयः सत्रकाम्यया ॥ असितो देवलः पेलः सुमन्तुः पिप्पलायनः ॥ ३ ॥ सुमतिः काश्यपश्चैव जाबालिर्भृगुरङ्गिराः ॥ वामदेवः सुतीक्ष्णश्च शरभङ्गश्च पर्वतः ॥ ४ ॥ आपस्तम्बोऽथ

सरस्वती एवं श्री व्यास की बन्दना कर तब ग्रन्थारम्भ करे ॥ २ ॥ परम पवित्र नैमिषारण्य में यज्ञ करने की इच्छा से बहुत से मुनि आये । असित, देवल, पैल, सुमन्तु, पिप्पलायन ॥ ३ ॥ सुमति, काश्यप, जाबालि, भृगु, अङ्गिरा, वाम-

देव, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग, पर्वत ॥ ४ ॥ आपस्तम्ब, माण्डव्य, अगस्त्य, कात्यायन, रथीतर, ऋभु, कपिल, रैभ्य ॥ ५ ॥
गौतम, मुद्गल, कौशिक, गालव, क्रतु, अत्रि, बभ्रु, त्रित, शक्ति, बुध, बौधायन, वसु ॥ ६ ॥ कौण्डिन्य, पृथु, हारीत,
धूम्र, शङ्कु, संकृति, शनि, विभाण्डक, पङ्क, गर्ग, काणाद ॥ ७ ॥ जमदग्नि, भरद्वाज, धूमप, मौनभार्गव, कर्कश, शौनक,

माण्डव्योऽगस्त्यः कात्यायनस्तथा ॥ रथीतरो ऋभुश्चैव कपिलो रैभ्य एव च ॥ ५ ॥
गौतमो मुद्गलश्चैव कौशिको गालवः क्रतुः ॥ अत्रिर्बभ्रुस्त्रितः शक्तिर्बुधो बौधायनो वसुः
॥ ६ ॥ कौण्डिन्यः पृथुहारीतौ धूम्रः शङ्कुश्च सङ्कृतिः ॥ शनिर्विभाण्डकः पङ्को गर्गः
काणाद एव च ॥ ७ ॥ जमदग्निर्भरद्वाजो धूमपो मौनभार्गवः ॥ कर्कशः शौनकश्चैव
शतानन्दो महातपाः ॥ ८ ॥ विशालाख्यो विष्णुवृद्धो जर्जरो जयजङ्गमौ ॥ पारः पाश-
धरः पूरो महाकायोथ जैमिनिः ॥ ९ ॥ महाग्रीवो महाबाहुर्महोदरमहाबलौ ॥ उद्दालको
महासेन आर्त आमलकप्रियः ॥ १० ॥ ऊर्ध्वबाहुरूर्ध्वपाद एकपादश्च दुर्धरः ॥ उग्रशीलो
जलाशी च पिङ्गलोऽत्रिर्ऋभुस्तथा ॥ ११ ॥ शाण्डीरः करुणः कालः कैवल्यश्च कलाधरः ॥

शतानन्द, महातपस् ॥ ८ ॥ विशाल, विष्णुवृद्ध, जर्जर, जय, जङ्गम, पार, पाशधर, पूर, महाकाय, जैमिनि ॥ ९ ॥
महाग्रीव, महाबाहु, महोदर, महाबल, उद्दालक, महासेन, आर्त, आमलकप्रिय ॥ १० ॥ ऊर्ध्वबाहु, ऊर्ध्वपाद, एकपाद,
दुर्धर, उग्रशील, जलाशी, पिङ्गल, अत्रि, ऋभु ॥ ११ ॥ शाण्डीर, करुण, काल, कैवल्य, कलाधर, श्वेतबाहु,

... कैवल्य, कलाधर, श्वेतबाहु,
रोमपाद, कद्रु, कालाग्निरुद्रग, ॥ १२ ॥ श्वेताश्वतर, आद्य, शरभङ्ग, पृथुश्रवस्, ये सब ऋषि शिष्यों के सहित, अङ्गों के सहित वेदों को जाननेवाले, ब्रह्मनिष्ठ ॥ १३ ॥ लोगों के ऊपर कृपा करनेवाले, परोपकारी स्वभाववाले, दूसरों के हित में सदा रत रहनेवाले, श्रौत स्मार्त कर्म को करनेवाले ॥ १४ ॥ नैमिषारण्य में आकर यज्ञ करने को उद्यत हुए।

श्वेतबाहू रोमपादः कद्रुः कालाग्निरुद्रगः ॥ १२ ॥ श्वेताश्वतर एवाद्यः शरभङ्गः पृथुश्रवाः ॥ एते सशिष्या ब्रह्मिष्ठा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ १३ ॥ लोकानुग्रहकर्तारः परोपकृतिशीलिनः ॥ परप्रियरता नित्यं श्रौतस्मार्तपरायणाः ॥ १४ ॥ नैमिषारण्यमासाद्य सत्रं कर्तुं समुद्यताः ॥ तीर्थयात्रामथोद्दिश्य गेहात् सूतो विनिर्गतः ॥ १५ ॥ पृथिवीं पर्यटन्नेव नैमिषे दृष्टवान् मुनीन् ॥ तान् सशिष्यान्नमस्कर्तुं संसारार्णवतारकान् ॥ १६ ॥ सूतः प्रहर्षितः प्रागाद्यत्रासंस्ते मुनिश्वराः ॥ ततः सूतं समायान्तं रक्तवल्कलधारिणम ॥ १७ ॥ प्रसन्नवदनं शान्तं परमार्थविशारदम् ॥ अशेषगुणसम्पन्नमशेषानन्दसम्प्लुतम् ॥ १८ ॥ ऊर्ध्वपु-

इधर तीर्थयात्रा की इच्छा से सूत भी घर से निकले ॥ १५ ॥ पृथिवी पर घूमते हुए नैमिषारण्य में आय समस्त मुनियों को देखा। और शिष्यों के सहित संसार-समुद्र से तारनेवाले ऋषियों को नमस्कार करने के लिए ॥ १६ ॥ जहाँ सब मुनि इकट्ठे थे वहाँ हँसते हुए सूतजी आये। तब आते हुए सूत को लाल रंग की वृक्ष की छाल धारण किये हुए ॥१७॥ प्रसन्नमुख, शान्त, परमार्थ को जाननेवाले, सम्पूर्ण गुणों से युक्त, समस्त आनन्दों से परिपूर्ण ॥१८॥ श्री तिलक धारण

किये, रामनाम का छापा लगाये, गोपीचन्दन मृत्तिका से दिव्य शङ्ख चक्र का छापा लगाये ॥१९॥ तुलसी की माला से शोभित, जटा मुकुट से भूषित, भगवान् के परम मन्त्र को जपते हुए, हरि की अद्भुत शरण में रत ॥ २० ॥ समस्त शास्त्रों के सार को जानने वाले, सम्पूर्ण प्राणियों के हित में संलग्न, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीते हुए, जीते हुए ही

ण्ड्रधरं श्रीमन्नाममुद्राविराजितम् ॥ शङ्खचक्रधरं दिव्यं गोपीचन्दनमृत्स्नया ॥ १९ ॥ लसच्छ्रीतुलसीमालं जटामुकुटमण्डितम् ॥ जपन्तं परमं मन्त्रं हरेः शरणमद्भुतम् ॥ २० ॥ सर्वशास्त्रार्थसारज्ञं सर्वलोकहिते रतम् ॥ जितेन्द्रियं जितक्रोधं जीवन्मुक्तं जगद्गुरुम् ॥ २१ ॥ व्यासप्रसादसम्पन्नं व्यासवद्विगतस्पृहम् ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय नैमिषेया महर्षयः ॥ २२ ॥ श्रोतुकामाः समावव्रुर्विचित्रा विविधाः कथाः ॥ ततः सूतो विनीतात्मा सर्वानृषिवरान् मुदा ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा ननाम दण्डवन्मुहुः ॥ २३ ॥ ऋषय ऊचुः—
सूत सूत चिरञ्जीव महाभागवतो भवान् ॥ अस्माभिस्त्व सनं तेऽद्य कल्पितं सुमनोहरम्

मुक्त, जगद् गुरु ॥ २१ ॥ श्री व्यास के प्रसाद से सम्पन्न, श्री व्यास की तरह इच्छा रहित आदि गुणों से युक्त-देख नैमिषारण्य में रहने वाले समस्त महर्षिगण सहसा उठ कर ॥ २२ ॥ विविध प्रकार की विचित्र कथाओं को सुनने की इच्छा से घेर लेते हुए। तब नम्रस्वभाव सूतजी प्रसन्नता पूर्वक सब ऋषिलोगों को हाथ जोड़कर फिर दण्डवत करते हुए ॥ २३ ॥ ऋषिलोग बोले— हे ... हम लोगों ने आपके लिये य ह

सुन्दर आसन बिछाया हुआ है ॥ २४ ॥ हे महाभाग ! आप थके हैं यहाँ बैठ जाइये ऐसा सब ब्राह्मणों ने कहा। इस प्रकार बैठने के लिये कह कर जब सब तपस्वी और समस्त जनता बैठ गयी ॥ २५ ॥ तब विनयपूर्वक प्रसन्नता से तपोवृद्ध समस्त मुनियों से बैठनेकी अनुमति लेकर बिछाये हुए आसन पर सूत बैठ गये ॥ २६ ॥ तदनन्तर सूत को

॥ २४ ॥ अत्रास्यतां महाभाग श्रान्तोऽसीत्यवदन् द्विजाः ॥ इत्युक्त्वा सूपविष्टेषु सर्वेषु च तपस्विषु ॥ २५ ॥ तपोवृद्धांस्ततः पृष्ट्वा सर्वान् मुनिगणान् मुदा ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाद्रौमहर्षणिः ॥ २६ ॥ सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्तमुपलक्ष्य च ॥ श्रोतुकामाः कथाः पुण्या इदं वचनमब्रुवन् ॥ २७ ॥ ऋषय ऊचुः—सूत सूत महाभाग भाग्यवानसि साम्प्रतम् ॥ पराशर्यवचो हार्दं त्वं वेद कृपया गुरोः ॥ २८ ॥ सुखी कच्चिद्भवानद्य चिराद् दृष्टः कथं वने ॥ श्लाघनीयोऽसि पूज्योऽसि व्यासशिष्यशिरोमणे ॥ २९ ॥ संसारेऽस्मिन्नसारे तु श्रोतव्यानि सहस्रशः ॥ तत्र श्रेयस्करं स्वल्पं सारभूतं च यद्भवेत् ॥ ३० ॥ तन्नो वद

सुखपूर्वक बैठे हुए और सुस्ताये हुए देखकर पुण्यकथाओं को सुनने की इच्छावाले समस्त ऋषि यह बोले ॥ २७ ॥ ऋषि लोग बोले—हे सूत ! हे सूत ! हे महाभाग ! आप इस समय भाग्यवान् हैं। भगवान् व्यास के वचनों के हार्दिक अभिप्राय को गुरु की कृपा से आप जानते हैं ॥ २८ ॥ क्या आप सुखी तो हैं ? आज बहुत दिनों के बाद हम लोगों ने आपको देखा है। आज इस बन में आप कैसे आये ? आप प्रशंसा के पात्र हैं। हे व्यासशिष्यशिरोमणे ! आप पूज्य हैं ॥ २९ ॥

इस असार संसार में सुनने योग्य हजारों विषय हैं, परन्तु उनमें श्रेयस्कर, थोड़ासा सारभूत जो हो ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! संसार-समुद्र में डूबते हुओं को पार लगानेवाला, शुभफल देनेवाला, आपके मन में निश्चित विषय जो हो वही हम लोगों से कहिये ॥ ३१ ॥ हे अज्ञानरूप अन्धकार से अन्धे हुओं को ज्ञानरूप चक्षु देनेवाले ! भगवान् की

महाभाग यत्ते मनसि निश्चितम् ॥ संसारार्णवमग्नानां पारदं शुभदं च यत् ॥३१॥ अज्ञान-तिमिरान्धानां नेत्रदानपरायण ॥ वद शीघ्रं कथासारं भवरोगरसायनम् ॥३२॥ हरिलीला-रसोपेतं परमानन्दकारणम् ॥ एवं पृष्टः शौनकाद्यैः सूतः प्रोवाच प्राञ्जलिः ॥ ३३ ॥ सूत उवाच—शृण्वन्तु मुनयः सर्वे मदुक्तं सुमनोहरम् ॥ आदावहं गतो विप्रास्तीर्थं पुष्कर संज्ञितम् ॥३४॥ स्नात्वा तृप्त्वा ऋषान् पुण्यान् सुरान् पितृगणानथ ॥ ततः प्रयातो यमुनां प्रतिबन्धविनाशिनीम् ॥३५॥ क्रमादन्यानि तीर्थानि गत्वा गङ्गामुपागतः ॥ ततः काशी-

लीलारूपी रस से युक्त, परमानन्द का कारण, संसाररूपी रोग को दूर करने में रसौषधि के समान जो कथा का सार है वह शीघ्र ही कहिये । इस प्रकार शौनकादिक ऋषियों के पूछने पर हाथ जोड़कर सूत बोले ॥ ३२–३३ ॥ सूत बोले—हे समस्त मुनियों ! मेरा कहा हुआ मनोहर आख्यान आप लोग सुनिये । हे विप्रों ! पहिले मैं पुष्कर तीर्थ को गया ॥ ३४ ॥ वहाँ स्नान करके पुण्य ऋषियों, देवताओं, तब पितरों को तर्पणादि से तृप्त करके तब समस्त प्रतिबन्धों को दूर करनेवाली यमुना के तट पर गया ॥ ३५ ॥ फिर क्रम से अन्य तीर्थों को जाकर गङ्गा तट पर गया पुनः काशी

आकर अनन्तर गयातीर्थ पर जाय ॥ ३६ ॥ पितरों का श्राद्ध कर तब त्रिवेणी पर गया तदनन्तर कृष्णा नदी में स्नान कर फिर गण्डकी में स्नान कर पुलह ऋषि के आश्रम पर गया ॥ ३७ ॥ धेनुमती में स्नान कर फिर सरस्वतीके तीर पर गया, वहाँ हे विप्रो ! त्रिरात्रि उपवास कर गोदावरी गया ॥ ३८ ॥ फिर कृतमाला, कावेरी, निर्विन्ध्या, ताम्र-

मुपागम्य गयां गत्वा ततः परम् ॥३६॥ पितॄनिष्ट्वा ततो वेणीं कृष्णां च तदनन्तरम् ॥ ततः स्नात्वा च गण्डक्यां पुलहाश्रममाव्रजम् ॥३७॥ धेनुमत्यामहं स्नात्वा ततः सारस्वते तटे ॥ त्रिरात्रमुषितो विप्रास्ततो गोदावरीं गतः ॥३८॥ कृतमालां च कावेरीं निर्विन्ध्यां ताम्रपर्णिकाम् ॥ तापीं वैहायसीं नन्दां नर्मदां शर्मदां गतः ॥३९॥ गत्वा चर्मण्वतीं पश्चात् सेतुबन्धमथागमम् ॥ ततो नारायणं द्रष्टुं गतोऽहं बदरीवनम् ॥४०॥ ततो नारायणं दृष्ट्वा तापसानभिवाद्य च ॥ नत्वा स्तुत्वा च तं देवं सिद्धक्षेत्रमुपागतः ॥४१॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रमन्नागतवान् कुरून ॥ जाङ्गलं देशमासाद्य हस्तिनापुरगोऽभवम् ॥ ४२ ॥ तत्र श्रुतं विष्णुरातो

पर्णिका, तापी, वैहायसी, नन्दा, नर्मदा, शर्मदा, नदियों पर गया ॥ ३९ ॥ पुनः चर्मण्वतीमें स्नान कर पीछे सेतुबन्ध पहुँचा, तदनन्तर नारायण का दर्शन करने के हेतु बदरी वन गया ॥ ४० ॥ तब नारायणका का दर्शन कर वहाँ तपस्वियों को अभिवादन कर पुनः नारायणको नमस्कार कर और उनकी स्तुति कर सिद्धक्षेत्र पहुँचा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बहुत से तीर्थों में घूमता कुरु देश में बाद जाङ्गल देश में आय फिर हस्तिनापुर में गया ॥ ४२ ॥ हे द्विजो !

वहाँ जाय यह सुना कि राजा परीक्षित राज्य को त्याग बहुत ऋषियों के साथ परम पुण्यप्रद गङ्गातीर गये हैं ॥ ४३ ॥ और उस गङ्गातट पर बहुत से सिद्ध, सिद्धि जिनका भूषण है ऐसे योगिलोग, देवर्षि वहाँ पर आये हैं, कोई निराहार ॥ ४४ ॥ कोई वायु भक्षण कर, कोई जल पीकर, कोई पत्ते खाकर, कोई श्वास ही का आहार कर, कोई फलाहार कर,

राज्यमुत्सृज्य जग्मिवान् ॥ गङ्गातीरं महापुण्यमृषिभिर्बहुभिर्द्विजाः ॥ ४३ ॥ तत्र सिद्धाः
समाजग्मुर्योगिनः सिद्धिभूषणाः ॥ देवर्षयश्च तत्रैव निराहाराश्च केचन ॥ ४४ ॥ वाताम्बु-
पर्णाहाराश्च श्वासाहाराश्च केचन ॥ फलाहाराः परे केचित् फेनाहाराश्च केचन ॥ ४५ ॥ तं
समाजं प्रष्टुकामस्तत्राहमगमं द्विजाः ॥ तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मभूतो महामुनिः ॥४६॥
व्यासपुत्रो महातेजाः शुकदेवः प्रतापवान् ॥ श्रीकृष्णचरणाम्भोजे मनसो धारणां दधत्॥४७॥
तं द्व्यष्टवर्षं योगीशं कम्बुकण्ठं महोन्नतम् ॥ स्निग्धालकावृतमुखं गूढजत्रुं ज्वलत्प्रभम् ॥४८॥
अवधूतं ब्रह्मभूतं ष्ठीवद्भिर्बालकैर्वृतम् ॥ स्त्रीगणैर्धूलिहस्तैश्च मक्षिकाभिर्गजो यथा ॥ ४९ ॥

कोई फेन का आहार कर रहते हैं ॥ ४५ ॥ हे द्विजो ! उस समाज को कुछ पूछने की इच्छा से हम भी वहाँ गये । वहाँ ब्रह्मरूप भगवान् महामुनि, व्यासजी के पुत्र, बड़े तेजवाले, शुकदेव उनका नाम, बड़े प्रतापी, श्रीकृष्ण के चरण-कमलों को मन से धारण किये हुए आये ॥ ४६-४७ ॥ उन १६ वर्ष के योगिराज, शङ्ख की तरह कण्ठवाले, बड़े लम्बे, चिकने बालों से घिरे हुए मुखवाले, बड़ी पुष्ट कन्धों की सन्धिवाले, चमकती हुई प्रभायुक्त ॥४८॥ अवधूत स्वरूपवाले, ब्रह्मरूप,

वालों से घिरे हुए मुखवाले, बड़ा पुष्ट कंधों की सन्धिवाले, चमकती हुई प्रभायुक्त

थूकते हुए लड़कों से घिरे हुए, मक्षिकाओं से जैसे मत्त हस्ती घिरा रहता है उसी प्रकार धूल हाथ में ली हुई स्त्रियों से आवृत ॥४९॥ सर्वाङ्ग धूल से आच्छादित महामुनि शुकदेव को देख सब मुनि प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़कर सहसा उठकर खड़े हो गये ॥५०॥ इस प्रकार महामुनियों द्वारा सत्कृत भगवान् शुकको देखकर दुःख देनेवाली पीछे आती हुई मूर्ख स्त्रियाँ और साथ के बालक दूर खड़े हो गये और पछताने लगे और भगवान् शुक की नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करके अपने २ घर चले

धूलिधूसरसर्वाङ्गं शुकं दृष्ट्वा महामुनिम् ॥ मुनयः सहसोत्तस्थुर्बद्धाञ्जलिपुटा मुदा ॥ ५० ॥ स्त्रियो मूढाश्च बालास्ते तं दृष्ट्वा दूरतः स्थिताः ॥ पश्चात्तापसमायुक्ताः शुकं नत्वा गृहान् ययुः ॥५१॥ आसनं कल्पयाञ्चक्रुः शुकायोन्नतमुत्तमम् ॥ आसेदुर्मुनयोऽम्भोजकर्णिकायाश्छदा इव ॥ ५२ ॥ तत्रोपविष्टो भगवान् महामुनिर्व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ॥ पूजां दधद्ब्राह्मणकल्पितां तदा रराज तारावृतचन्द्रमा इव ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये शुकागमने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

गये ॥५१॥ इधर मुनि लोग शुकदेव के लिये बड़ा ऊँचा उत्तम आसन बिछाते हुए। उस आसन पर बैठे हुए भगवान् शुक को कमल की कर्णिका (कमल के बीच की चौतड़िया) को जैसे कमल के पत्ते घिरे रहते हैं उसी प्रकार मुनि लोग उनको घेरकर बैठ गये ॥ ५२ ॥ वहाँ बैठे हुए भगवान् महामुनि शुकदेव, व्यासजी के पुत्र, ज्ञानरूप महासागर के चन्द्रमा, ब्राह्मणों द्वारा की हुई पूजा को धारण किये हुए तब तारागणों से घेरे हुए चन्द्रमा की तरह शोभा देने लगे ॥ ५३ ॥

इति बृहन्नारदीये श्रीपुरुषोत्तममास माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

सूत बोले। राजा परीक्षित के पूछने पर भगवान् शुक द्वारा कथित परम पुण्यप्रद श्रीमद्भागवत शुकदेव के प्रसाद से सुनकर अनन्तर राजा को मोक्ष देखकर ॥ १ ॥ अब यहाँ यज्ञ करने को उद्यत ब्राह्मणों को देखने के लिये मैं आया हूँ और यहाँ दीक्षित ब्राह्मणों के दर्शन कर मैं कृतार्थ हुआ ॥ २ ॥ ऋषि बोले हे साधो ! अन्य विषय की बातों को

सूत उवाच—राज्ञा पृष्टं शुकेनोक्तं श्रीमद्भागवतं परम् ॥ शुकप्रसादात्तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा राज्ञो विमोक्षणम् ॥ १ ॥ अत्राहमागतो विप्रान् सत्रोद्यमपरायणान् ॥ द्रष्टुकामः कृतार्थोऽहं जातो दीक्षितदर्शनात् ॥२॥ ऋषय ऊचुः—साधो वार्त्तान्तरं त्यक्त्वा सूतापूर्वं वदस्वनः॥ कृष्णद्वैपायनमुखाद्यच्छ्रुतं तत्प्रसादतः ॥ ३ ॥ सारात् सारतरां पुण्यां कथामात्मप्रसादनीम् ॥ पाययस्व महाभाग सुधाधिकतरां पराम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच—विलोमजोऽपि धन्योऽस्मि यन्मां पृच्छत सत्तमाः ॥ यथाज्ञानं प्रवक्ष्यामि यच्छ्रुतं व्यासवक्त्रतः ॥ ५ ॥

छोड़कर भगवान् कृष्णद्वैपायन के प्रसाद से उनके मुख से जो आपने सुना है वही अपूर्व विषय है सूत ! आप हम लोगों से कहिये ॥ ३ ॥ सार के सार का भी साररूप, मन को प्रसन्न करनेवाली, अमृत से भी अधिकतर हितकर पुण्य कथा, हे महाभाग ! हम लोगों को सुनाइये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले। विलोम (ब्राह्मण के चरु में क्षत्रिय का चरु मिल जाने से) उत्पन्न होने पर भी मैं धन्य हूँ जो आप लोग श्रेष्ठ पुरुष मुझसे पूछ रहे हैं। भगवान् व्यास के मुख से जो

जन्म से) उत्पन्न होने पर भी मैं धन्य हूँ जो आप लोग श्रेष्ठ पुरुष मुझसे पूछ रहे हैं। भगवान् व्यास के मुख से जो मैंने सुना है वह यथाज्ञान मैं कहता हूँ ॥ ५ ॥ एक समय नारदमुनि नर नारायण के आश्रम में गये। वह आलय बहुत से तपस्वियों, सिद्धों तथा देवताओं से भी निषेवित है ॥ ६ ॥ और बर, बहेड़ा, आँवला, बेल, आम, अमड़ा, कैथ, जामुन, कदम्ब आदि और भी अनेक वृक्षों से सुशोभित है ॥ ७ ॥ भगवान् विष्णु के चरणों से निकली हुई पुण्या गङ्गा और अलकनन्दा नदियाँ भी वहाँ बह रही हैं। ऐसे नर नारायण के स्थान में श्री नारद जाकर महामुनि नारायण को

एकदा नारदो गच्छन्नरनारायणालयम् ॥ तापसैर्बहुभिः सिद्धैर्देवैरपि निषेवितम् ॥६॥ बदर्यक्षामलैर्बिल्वैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ कपित्थैर्जम्बुनीपाद्यैर्वृक्षैरन्यैर्विराजितम् ॥ ७ ॥ विष्णुपादोदकीपुण्याऽलकनन्दाऽस्ति तत्र च ॥ तत्र गत्वाऽनमद्देवं नारायणमहामुनिम् ॥ ८ ॥ परब्रह्मणि संलग्नमानसं च जितेन्द्रियम् ॥ जितारिषट्कमलं प्रस्फुरद्बहुलप्रभम् ॥९॥ नमस्कृत्वा च साष्टाङ्गं देवदेवं तपस्विनम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव नारदो विभुम् ॥१०॥ नारद उवाच—देवदेव जगन्नाथ कृपाकूपार सत्पते ॥ सत्यव्रतस्त्रिसत्योऽसि सत्यात्मा सत्यसम्भवः ॥ ११ ॥

नमन करते हुए ॥ ८ ॥ परब्रह्म में लगा हुआ है मन जिनका ऐसे जितेन्द्रिय, काम क्रोधादि छओ शत्रुओं को जीते हुए, मल रहित, जिनके शरीर से बहुत सी प्रभा चमक रही है ऐसे देवताओं के भी देव, तपस्वी नारायण को नमस्कार कर दण्डवत् कर हाथ जोड़ और नारद उस व्यापक की स्तुति करने लगे ॥ ९–१० ॥ नारदजी बोले। हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे कृपासागर सत्पते! आप सत्यव्रत, त्रिसत्य, (तीनों काल में रहनेवाले) सत्य आत्मा, सत्यसम्भव हैं ॥ ११ ॥

हे सत्ययोने ! आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपका जो यह तप है वह सम्पूण प्राणियों की शिक्षा के लिये और मर्यादा स्थापन के अर्थ है ॥ १२ ॥ यदि आप तपस्या न करें तो—जैसे एक के पाप करने से कलियुग में पृथ्वी डूबती है तैसे ही पुण्य करने से पृथ्वी तरती है। पुण्यात्मा और पापीजनों से यह आवृत

सत्ययोने नमस्तेऽस्तु त्वामहं शरणं गतः ॥ तपस्तेऽखिलशिक्षार्थं मर्यादास्थापनाय च ॥ १२ ॥ अन्यथैककृतात् पापात् कलौ मज्जति मेदिनी ॥ तथैव पुण्यात्तरति पुण्यपापिजनावृता ॥ १३ ॥ कृतादिषु यथा पूर्वमेकगं तत्समस्तगम् ॥ तादृक्स्थितिं निराकृत्य कलौ कर्त्तैव केवलम् ॥ १४ ॥ लिप्यते पुण्यपापाभ्यामिति ते तपसि स्थितिः ॥ भगवन् प्राणिनः सर्वे विषयासक्तमानसाः ॥ १५ ॥ दारापत्यगृहासक्तास्तेषां हितकरं च यत् ॥ ममापि हितकृत्किञ्चिद्विचार्य क्षन्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ त्वन्मुखाच्छ्रोतुकामोऽहं ब्रह्म-

है—डूब जाय, आपही के पुण्य से स्थित है ॥ १३ ॥ 'पहिले सत्ययुग आदि में जैसे एक पाप करता था तो सभी पापी हो जाते थे' ऐसी स्थिति हटाकर कलयुग में कर्ता ही केवल पुण्य पापों से लिप्त होता है यह आपके तप की स्थिति है। हे भगवन् ! कलि में जितने प्राणी हैं सब विषयों में मन लगानेवाले ॥ १४–१५ ॥ जिनका चित्त स्त्री, पुत्र, मकान ही

कहने के योग्य हैं ॥ १६ ॥ आपके मुख से सुनने की इच्छा से मैं ब्रह्मलोक से यहाँ आया हूँ 'उपकारप्रिय विष्णु हैं' ऐसा वेद में निश्चित है ॥ १७ ॥ इसलिये लोकोपकार के लिये कथा का सार इस समय आप कहिये। जिसके श्रवण-मात्र से प्राणी निर्भय पद (मोक्ष) पावें ॥ १८ ॥ इस प्रकार नारद का वचन सुन भगवान् ऋषि भुवन को पवित्र

लोकादिहागतः ॥ उपकारप्रियो विष्णुरिति वेदे विनिश्चितम् ॥ १७ ॥ तस्माल्लोकोपकाराय कथासारं वदाऽधुना ॥ तस्य श्रवणमात्रेण निर्भयं विन्दते पदम् ॥ १८ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः ॥ कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम् ॥ १९ ॥ श्री नारायण उवाच—गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकाभरणस्य पुंसः ॥ वृन्दावने विहरतो ब्रजभर्तुरादेः पुण्यां कथां भगवतः शृणु नारद त्वम् ॥ २० ॥ चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितुं भुविकः समर्थः ॥ त्वं चापि नारदमुने भगवच्चरित्रं

करनेवाली पुण्य कथा प्रारम्भ करते हुए ॥ १९ ॥ श्री नारायण बोले। गोपों की स्त्रियों के मुख कमल के भ्रमर, रास के ईश्वर, रसियों के आभरण, वृन्दवनविहारी, ब्रज के पति आदिपुरुष भगवान् की पुण्य कथा को कहते हैं हे नारद! आप सुनो ॥ २० ॥ निमेषमात्र समय में दृष्टि डालने से जो जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगत् के विधाता हैं उनके कर्मों को हे वत्स! इस पृथ्वी में कौन वर्णन कर सकता है। हे नारदमुने! आप भी सार सहित भगवान् के चरित्र

को जानते हैं और यह भी जानते हैं कि भगवच्चरित्र वाणी से नहीं कहा जा सकता ॥ २१ ॥ तथापि अद्भुत पुरुषोत्तम माहात्म्य आदर से कहते हैं। यह पुरुषोत्तम माहात्म्य दरिद्रता और वैधव्य को दूर करनेवाला, यश का दाता एवं सत्पुत्र और मोक्ष को देनेवाला है अतः शीघ्र ही इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ २२ ॥ नारद बोले। हे मुने! पुरुषोत्तम

जानासि सारसरसं वचसामगम्यम् ॥ २१ ॥ तथापि वक्ष्ये पुरुषोत्तमस्य माहात्म्यमत्यद्भुतमादरेण ॥ दारिद्र्यवैधव्यहरं यशस्यं सत्पुत्रदं मोक्षदमाशुसेव्यम् ॥ २२ ॥ नारद उवाच—पुरुषोत्तमस्तु को देवो माहात्म्यं तस्य किं मुने ॥ अत्यद्भुतमिवाभाति विस्तरेण वदस्व मे ॥ २३ ॥ सूत उवाच—नारदोक्तं वचः श्रुत्वा मुनिर्नारायणोऽब्रवीत् ॥ समाधाय मनः सम्यक् मुहूर्तं पुरुषोत्तमे ॥ २४ ॥ श्रीनारायण उवाच—पुरुषोत्तमेति मासस्य नामाप्यस्ति सहेतुकम् ॥ तस्य स्वामी कृपासिन्धुः पुरुषोत्तम उच्यते ॥ २५ ॥ ऋषिभिः प्रोच्यते तस्मान्मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ तस्य व्रतविधानेन प्रीतः स्यात् पुरुषोत्तमः

नामक कौन देवता हैं? उनका माहात्म्य क्या है? यह अद्भुत सा प्रतीत होता है, अतः आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २३ ॥ सूत बोले! श्रीनारद का वचन सुन नारायण एक मुहूर्त पुरुषोत्तम में अच्छी तरह मन लगाय तब बोले ॥ २४ ॥ श्रीनारायण बोले। 'पुरुषोत्तम' यह मास का नाम जो पड़ा है सो सकारण है। पुरुषोत्तम मासके स्वामी कृपासागर पुरुषोत्तम ही हैं ॥ २५ ॥ इसी लिये ऋषि लोग इसको पुरुषोत्तम मास कहते हैं। पुरुषोत्तम मास के

व्रतविधान से भगवान् पुरुषोत्तम प्रसन्न होते हैं ॥ २६ ॥ नारद बोले । चैत्रादि मास जो हैं वह अपने २ अभिमानी देवताओं से युक्त हैं ऐसा मैंने सुना है, परन्तु उनके बीच में पुरुषोत्तम नाम का मास नहीं सुना है ॥ २७ ॥ पुरुषोत्तम मास कौन है ? और पुरुषोत्तम मास के स्वामी कृपा के निधि पुरुषोत्तम कैसे हुए ? हे कृपानिधे ! यह आप मुझसे

॥ २६ ॥ नारद उवाच—सन्ति मध्वादयो मासाः सेश्वरास्ते श्रुता मया ॥ तन्मध्ये न श्रुतो मासः पुरुषोत्तमसंज्ञकः ॥ २७ ॥ पुरुषोत्तमस्तु को मासस्तस्य स्वामी कृपानिधिः ॥ पुरुषोत्तमः कथं जातस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥ २८ ॥ स्वरूपं तस्य मासस्य सविधानं वद प्रभो ॥ किं कर्तव्यं कथं स्नानं किं दानं तत्र सत्पते ॥ २९ ॥ जपपूजोपवासादि साधनं किं च भण्यताम् ॥ तुष्येत् कृतेन को देवः किं फलं वा प्रयच्छति ॥ ३० ॥ एतदन्यच्च यत्किञ्चित्तत्त्वं ब्रूहि तपोधन ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुः साधवो दीनवत्सलाः ॥३१॥ नरा ये भुवि

कहिये ॥ २८ ॥ इस मास का विधान के सहित स्वरूप हे प्रभो ! कहिये । हे सत्पते ! इस मासमें क्या करना ? कैसे स्नान करना ? क्या दान करना ? ॥ २९ ॥ इस मास का जप, पूजा उपवास आदि का क्या साधना है ? कहिये । इस मास के विधान से कौन देवता प्रसन्न होते हैं ? और क्या फल देते हैं ? ॥ ३० ॥ इससे अतिरिक्त और जो कुछ भी तत्त्व हो वह हे तपोधन ! कहिये । साधु और दीनों के ऊपर कृपा करनेवाले जो पुरुष हैं, वे बिना पूछे भी कृपा करके

सदुपदेश कर देते हैं ॥ ३१ ॥ इस पृथ्वी पर जो मनुष्य दूसरों के भाग्य के अनुवर्ती हैं और दरिद्रता से पीड़ित, नित्य रोगी रहने वाले, पुत्र चाहने वाले ॥ ३२ ॥ जड़, गूँगे, ऊपर से अपने को बड़े धार्मिक दरसाने वाले, विद्यारहित, मलिन वस्त्रों को धारण करनेवाले, नास्तिक, पर-स्त्री गामी, नीच, जर्जर, दासवृत्ति करनेवाले ॥ ३३ ॥ जिनकी आशा

जायन्ते परभाग्यानुवर्तिनः ॥ दारिद्र्यपीडिता नित्यं रोगिणः पुत्रकाङ्क्षिणः ॥३२॥ जडा मूका दाम्भिकाश्च हीनविद्याः कुचैलिनः ॥ नास्तिका लम्पटा नीचा जर्जराः परसेविनः ॥३३॥
नष्टाशा भग्नसङ्कल्पाः क्षीणसत्त्वाः कुरूपिणः ॥ रोगिणः कुष्ठिनो व्यङ्गा नेत्रहीनाश्च केचन ॥३४॥
इष्टमित्रकलत्राप्तपितृमातृवियोगिनः ॥ शोकदुःखादिशुष्काङ्गाः स्वेष्टवस्तुविवर्जिताः ॥ ३५ ॥
पुनर्नैवंविधास्ते स्युर्यत्कृतेन श्रुतेन च ॥ पठितेनानुचीर्णेन तद्वदस्व मम प्रभो ॥ ३६ ॥
वैधव्यं वन्ध्यतादोषहीनाङ्गत्वदुराधयः ॥ रक्तपित्ताद्यपस्मारराजयक्ष्मादयश्च ये ॥ ३७ ॥

नष्ट हो गई हैं, सङ्कल्प जिनके भग्न हो गये हैं, कुरूपी, रोगी, कुष्ठी, टेढ़े मेढ़े अङ्गवाले, अन्धे ॥ ३४ ॥ इष्टवियोग, स्त्रीवियोग आप्तपुरुषवियोग, माता।पिताविहीन, शोक दुःख आदि से सूख गये हैं अङ्ग जिनके, अपनी इष्ट वस्तु से रहित ॥ ३५ ॥—आदि दुःखों से दुःखित फिर कोई प्राणी न हों जिन अनुष्ठान के करने, सुनने पढ़ने से हे प्रभो ! ऐसा प्रयोग हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ वैधव्य, वन्ध्यादोष, अङ्गहीनता, दुर्बुद्धि, रक्तपित्त आदि, मृगी, राजयक्ष्मादि जो दोष हैं

प्रदान हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ वैधव्य, वन्ध्यादोष, अङ्गहीनता, दुर्बुद्धि, रक्तपित्त आदि, मृगी, राजयक्ष्मादि जो दोष हैं ॥ ३७ ॥ इन दोषों से दुःखित मनुष्यों को देखकर हे जगन्नाथ ! मैं दुःखी हूँ। अतः मेरे ऊपर कृपा करके ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे मन को प्रसन्न करनेवाले विषय को विस्तार से कहिये। हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, समस्त तत्त्वों के

एतैर्दोषसमूहैश्च दुःखितान् वीक्ष्य मानवान् ॥ दुःखितोऽस्मि जगन्नाथ कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ३८ ॥ विस्तरेण वद ब्रह्मन् मन्मनोमोदहेतुकम् ॥ सर्वज्ञः सर्वतत्त्वानां निधानं त्वमसि प्रभो ॥ ३९ ॥ सूत उवाच—इति विधितनयोदितं रसालं जनहितहेतुं निशम्य देवदेवः ॥ अभिनवघनरावरम्यवाचाऽवददभिपूज्य मुनिं सुधांशुशान्तम् ॥ ४० ॥

इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे प्रश्नविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आयतन हैं ॥ ३९ ॥ सूत बोले। इस प्रकार नारद के परोपकारी मधुर वचनों को सुनकर देवदेव नारायण, चन्द्रमा की तरह शान्त महामुनि नारद से नये मेघ के समान गम्भीर वचन बोले ॥ ४० ॥

इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऋषि लोग बोले। हे महाभाग! नर के मित्र नारायण नारद के प्रति जो शुभ वचन बोले वह आप विस्तारपूर्वक कहें ॥ १ ॥ सूत बोले। हे द्विजसत्तमो! नारायण ने नारद के प्रति जो रम्य वचन कहे वह जैसे मैंने सुने हैं वैसे ही कहता हूँ आप लोग सुनें ॥ २ ॥ नारायण बोले। हे नारद! पहिले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने राजा युधिष्ठिर से जो

ऋषय ऊचुः—नारायणो नरसखो यदुवाच शुभं वचः ॥ नारदाय महाभाग तन्नो वद सविस्तरम् ॥ १ ॥ सूत उवाच—नारायणवचो रम्यं श्रूयतां द्विजसत्तमाः॥ यदुक्तं नहरदायैतत् प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच—शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं हरिणा पुरा ॥ राज्ञे युधिष्ठिरायैवं श्रीकृष्णेन महात्मना ॥ ३ ॥ एकदा धार्मिको राजाऽजातशत्रुर्युधिष्ठिरः ॥ द्यूते पराजितो दुष्टैर्धार्तराष्ट्रैश्छलप्रियैः ॥ ४ ॥ समक्षमग्निसम्भूता कृष्णा धर्मपरायणा ॥ दुःशासनेन दुष्टेन कचेष्वादाय कर्षिता ॥ ५ ॥ आकृष्टानि च वासांसि श्रीकृष्णेन सुरक्षिता ॥ पश्चाद्राज्यं परित्यज्य प्रयाताः काम्यकं वनम् ॥ ६ ॥ अत्यन्तं

कहा था वह मैं कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ एक समय धार्मिक राजा अजातशत्रु युधिष्ठिर, छलप्रिय धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रों द्वारा जुए में हार गये ॥ ४ ॥ सबके देखते २ अग्नि से उत्पन्न हुई धर्मपरायणा द्रौपदी को बालों से पकड़कर दुष्ट दुःशासन ने खींचा ॥ ५ ॥ और खींचने के बाद उसके वस्त्र उतारने लगा तब भगवान् कृष्ण ने उसकी रक्षा की, पीछे

दुःशासन ने खींचा ॥ ५ ॥ और खींचने के बाद उनके वस्त्र उतारने लगा तब भगवान् कृष्ण ने उसकी रक्षा की, पीछे पाण्डव राज्य को त्याग काम्यक वन को गये ॥ ६ ॥ वहाँ अत्यन्त क्लेशयुक्त हुए वन के फलों को खाकर रहने लगे। जैसे वन के हाथियों के शरीर में बाल रहते हैं इसी प्रकार पाण्डवों के शरीर में बाल होगये ॥ ७ ॥ इस प्रकार दुःखित पाण्डवों को देखने के लिये भगवान् देवकीसुत मुनियों के साथ काम्यक वन में गये ॥ ८ ॥ उन भगवान् को देखकर

क्लेशमापन्नाः पार्था वन्यफलाशिनः ॥ विष्वक्कचाचिताः सर्वे गजा इव वनौकसः ॥७॥ अथ तान् दुःखितान् द्रष्टुं भगवान् देवकीसुतः ॥ जगाम काम्यकवनं मुनिभिः परिवारितः ॥८॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्तस्थुर्देहाः प्राणानिवागतान् ॥ पार्थाः सस्वजिरे प्रीत्या श्रीकृष्णं प्रेमविह्वलाः ॥ ९ ॥ ते चानीनमतां भक्त्या यमौ हरिपदाम्बुजम् ॥ द्रौपदी तं ननामा शुशनैः शनैरतन्द्रिता ॥ १० ॥ तान् दृष्ट्वा दुःखितान् पार्थान् रौरवाजिनवाससः ॥ धूलिभिर्धूसरान् रूक्षान् सर्वतः कचसंवृतान् ॥ ११ ॥ पाञ्चालीमपि तन्वङ्गीं तादृशीं दुःखसंवृताम् ॥ तेषां

शरीर में जैसे पुनः प्राण आजाँय इस प्रकार सहसा उठकर युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन प्रेमविह्वल हुए प्रीति से श्रीकृष्ण से गले मिले ॥९॥ और नकुल, सहदेव भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भक्ति से नमन करते हुए। द्रौपदी भी धीरे धीरे वहाँ आय आलस्यरहित होकर भगवान् को शीघ्र नमस्कार करती हुई ॥ १० ॥ उन दुःखित पाण्डवों को रुरु मृग के चर्म के वस्त्रों को पहिरे देख और समस्त शरीर मे धूल लगी हुई, रूखा शरीर, चारो तरफ बाल बिखरे हुए ॥ ११ ॥

द्रौपदी को भी उसी प्रकार शरीर से दुर्बल, दुःखों से घिरी हुई देखते हुए। दुःखों से दुःखित पाण्डवों को देखकर दुःखित ॥ १२ ॥ भक्तवत्सल भगवान् धृतराष्ट्र के पुत्रों को जलादेने की इच्छा से क्रोध करते हुए। वे विश्व के आत्मा, भौंहों को चढ़ाकर देखने वाले ॥ १३ ॥ करोड़ों काल के कराल मुख की तरह मुखवाले, प्रलय की अग्नि के समान

दुःखमतीवोग्रं दृष्ट्वैवातीव दुःखितः ॥ १२ ।धार्त्तराष्ट्रान् दग्धुकामो भगवान् भक्तवत्सलः ॥
चक्रे कोपं स विश्वात्मा भ्रूभङ्गकुटिलेक्षणः ॥ १३ ॥ कोटिकालकरालास्यः प्रलयाग्निरिवो-
त्थितः ॥ सन्दष्टोष्ठपुटः प्रोच्चैस्त्रिलोकीं ज्वलयन्निव ॥ १४ ॥ सीतावियोगसन्तप्तः साक्षा-
द्दाशरथिर्यथा ॥ तमालक्ष्य तदा वीरो बीभत्सुर्जातवेपथुः । १५ ॥ उत्थाय कृष्णं तुष्टाव
बद्धाञ्जलिपुटं भिया ॥ धर्मानुमोदितः शीघ्रं द्रौपद्या च तथापरैः ॥ १६ ॥ अर्जुन उवाच—
हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः ॥ त्वमेव जगतां पाता मां न पासि कथं प्रभो

उठे हुए ओठों को दांत के नीचे जोर से दबाकर तीन लोक को जला देंगे ऐसे ॥ १४ ॥ श्रीसीता के वियोग से सन्तप्त जैसे भगवान् रामचन्द्र को रावण पर क्रोध आया था इस प्रकार से क्रोधित भगवान् को देखकर काँपते हुए अर्जुन ॥ १५ ॥ उठकर कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये द्रौपदी तथा और लोगों से भी एवं धर्मराज से अनुमोदित हुए, डरते हुए, शीघ्र ही हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥ १६ ॥ अर्जुन बोले। हे कृष्ण ! हे जगतों के नाथ ! हे नाथ ! मैं

जगत् से बाहर नहीं हूं, क्या मेरी रक्षा हे प्रभो ! आप न करेंगे ? ॥ १७ ॥ जिनके नेत्र के देखने से ही ब्रह्मा का पतन हो जाता है उसके क्रोध करने से क्या हो जायगा यह कौन जानता है ॥ १८ ॥ आप संहार करनेवाले हैं क्रोध को संहार करिये । हे तात ! हे जगत्पते ! आप ऐसे पुरुषों के क्रोध से जगत् का प्रलय होता है ॥ १९ ॥ आप सब तत्त्व

॥ १७ ॥ यच्चक्षुःपतनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत् । तत्कोपेन भवेत्किं वा को वेद किं भविष्यति ॥ १८ । क्रोधं संहर संहर्तस्तात तात जगत्पते ॥ त्वद्विधानां च कोपेन जगतः प्रलयो भवेत् ॥ १९ ॥ वन्दे त्वां सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् ॥ वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥ २० ॥ त्वमीश्वरोऽसृजः सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं बीजरूपः सनातनः ॥ २१ ॥ स कथं स्वकृतं हन्याद्विश्वमेकापराधतः ॥ मशकान् भस्मसात्कर्तुं को वा दहति मन्दिरम् ॥ २२ ॥ श्रीनारायण उवाच—इति विज्ञाप्य श्रीकृष्णं फाल्गुनः

को जाननेवाले हैं, सबके कारण का कारण हैं, वेद वेदाङ्ग के बीज के बीज हैं, श्रीकृष्ण हैं, ईश्वर हैं आपकी मैं बन्दना करता हूँ ॥ २० ॥ आप ईश्वर हैं इस चराचरात्मक जगत् को आपने उत्पन्न किया है, सर्वमङ्गल माङ्गल्य के आप बीजरूप हैं सनातन हैं ॥ २१ ॥ सो कैसे एक के अपराध से अपने बनाये विश्व का आप नाश करेंगे ? कौन मच्छरों को जलाने के लिये अपने घर को जला देता है ? ॥ २२ ॥ श्रीनारायण बोले । इस प्रकार दूसरों की वीरता को मर्दन

करनेवाले अर्जुन भगवान् को समझाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए ॥ २३ ॥ सूत बोले। श्रीकृष्ण क्रोध को हटाकर चन्द्रमा की तरह शान्त हुए। इस प्रकार भगवान् को शान्त हुए देखकर पाण्डव स्वस्थ होते हुए ॥ २४ ॥ और प्रेम से प्रसन्नमुख एवं प्रेमविह्वल हुए तब प्रणाम करते हुए और वन के कन्द, मूल, फल आदि से कृष्ण का पूजन करते

परिवीरहा ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणनाम जनार्दनम् ॥ २३ ॥ सूत उवाच—हरिः क्रोधं निरस्याशु सौम्योऽभूच्चन्द्रमा इव ॥ तमालक्ष्य तदा सर्वे पाण्डवाः स्वास्थ्यमागताः ॥२४॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः सर्वे प्रणेमुः प्रेमविह्वलाः ॥ श्रीकृष्णं पूजयाञ्चक्रुर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥२५॥ श्रीनारायण उवाच—ततः प्रसन्नं श्रीकृष्णं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥ विज्ञायावनतो भूत्वा बृहत्प्रेमपरिप्लुतः ॥ २६ ॥ बद्धाञ्जलिर्गुडाकेशो नामं नामं पुनः पुनः ॥ तं तथा कृतवान् प्रश्नं यथा पृच्छति यं भवान् ॥ २७ ॥ श्रुत्वैवं भगवान् दध्यौ मुहूर्त्तं मनसा हरिः ॥ ध्यात्वाऽऽत्त्वास्य सुहृद्वर्गं पाञ्चालीं च धृतव्रताम् ॥ उवाच वदतां श्रेष्ठः पाण्डवानां हितं वचः ॥२८॥

हुए ॥ २५ ॥ नारायण बोले। तब शरण में जाने योग्य, भक्तों के ऊपर कृपा करनेवाले श्रीकृष्ण को प्रसन्न जान बड़े भारी प्रेम से भरे हुए ग्रीवा झुकाये ॥ २६ ॥ हाथ जोड़कर अर्जुन बारम्बार नमस्कार करते हुए और जो प्रश्न आपने हमसे किया है वही प्रश्न अर्जुन श्रीकृष्ण से करते हुए ॥ २७ ॥ इस प्रकार अर्जुन का प्रश्न सुन भगवान् कृष्ण मुहूर्त भर मन से सोचकर अपने मित्र पाण्डवों को और व्रत की हुई द्रौपदी को ... देते हुए वक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण

पाण्डवों को हितकर वचन बोले ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोल । हे राजन् ! हे महाभाग ! बीभत्सो ! अब मेरा वचन सुनो । यह अपूर्व प्रश्न किया है आपको उत्तर देने में मुझे उत्साह नहीं हो रहा है ॥ २९ ॥ इस प्रश्न का उत्तर गुप्त से भी गुप्त है ऋषियों को भी नहीं विदित है तब भी हे अर्जुन ! मित्र के नाते अथवा तुम हमारे भक्त हो इस कारण से हम

श्रीकृष्ण उवाच—शृणु राजन् महाभाग बीभत्सो ह्यथ मद्वचः ॥ अपूर्वोऽयं कृतः प्रश्नो नोत्तरं वक्तुमुत्सहे ॥ २९ ॥ एष गुह्यतरो लोके ऋषीणामपि दुर्घटः ॥ तथापि वक्ष्ये मित्रत्वाद्भक्तत्वाच्च तवार्जुन ॥ ३० ॥ तदुत्तरमतीवोग्रं क्रमतः शृणु सुव्रत ॥ मध्वादयश्च ये मासा लवपक्षाश्च नाडिकाः ॥ ३१ ॥ यामास्त्रियामा ऋतवो मुहूर्तान्ययने उभे ॥ हायनं च युगान्येवं परार्धान्ताः परे च ये ॥ ३२ ॥ नद्योऽर्णवह्रदाः कूपा वापीपल्वलनिर्झराः ॥ लतौषधिद्रुमाश्चैव त्वक्सारा: वादपाश्च ये ॥ ३३ ॥ वनस्पतिपुरग्रामगिरयः पत्तनानि च ॥ एते सर्वे मूर्तिमन्तः पूज्यन्ते स्वात्मनो गुणैः ॥ ३४ ॥ न तेषां कश्चिदप्यस्ति ह्यपूर्वः स्वा-

कहते हैं ॥ ३० ॥ हे सुव्रत ! वह जो उत्तर है वह अति उग्र है अतः क्रम से सुनो । चैत्रादि जो १२ मास, निमेष, महाने के दोनों पक्ष. घड़ियाँ, ॥ ३१ ॥ प्रहर, त्रिप्रहर, छ ऋतुएँ, मुहूर्त, दक्षिणायन, उत्तरायण, वर्ष, चारो युग, इसी प्रकार परार्ध तक जो काल हैं यह सब ॥ ३२ ॥ और नदी, समुद्र, तालाब, कूएँ, बावली, गढ़इयाँ, सोते, लता, औषधियाँ, वृक्ष, त्वक्सार (बांस) आदि पेड़ ॥ ३३ ॥ वन की औषधियाँ, नगर, गाँव, पर्वत, पुरियाँ ये सब मूर्तिवाले हैं और

अपने गुणों से पूजे जाते हैं ॥ ३४ ॥ यह अपूर्व है इन सबों में अपने (स्वामी) अधिष्ठातृ देवता के विना कोई नहीं है, अपने अपने अधिकार में पूजे जाने पर फल के देने वाले हैं ॥ ३५ ॥ अपने अपने अधिष्ठातृ देवता के योग्य माहात्म्य से ये सब सौभाग्यवान् हैं। हे पाण्डुनन्दन ! एक समय अधिमास उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ उस उत्पन्न हुए असहाय निन्दित मास को सब लोग बोले कि मलमास सूर्य की सङ्क्रान्ति से रहित है, अतः पूजने योग्य नहीं है

मिवर्जितः । स्वे स्वेऽधिकारे सततं पूज्यन्ते फलदायिनः ॥ ३५ ॥ स्वस्वामियोगमाहात्म्यात् सर्वे सौभाग्यशालिनः ॥ अधिमासः समुत्पन्नः कदाचित् पाण्डुनन्दन ॥ ३६ ॥ तमूचुः सकला लोका असहायं जुगुप्सितम् ॥ अनर्हो मलमासोऽयं रविसङ्क्रमवर्जितः ॥ ३७ ॥ अस्पृश्यो मलरूपत्वाच्छुभे कर्मणि गर्हितः ॥ श्रुत्वैतद्वचनं लोकान्निरुद्योगो हतप्रभः ॥३८॥ दुःखान्वितोऽतिखिन्नात्मा चिन्ताग्रस्तैकमानसः॥ मुमूर्षुरभवत्तेन हृदयेन विदूयता ॥ पश्चाद्धैर्यं समालम्ब्य मामसौ शरणं गतः ॥ ३९ ॥ प्राप्तो वैकुण्ठभवनं यत्राहमवसं नर ॥ अन्त-

॥ ३७ ॥ यह मास मलरूप होने से छूने योग्य नही है और शुभ कर्मों में अग्राह्य है, इस प्रकार के वचनों को लोगों के मुख से सुन कर यह मास निरुद्योग, प्रभारहित, ॥ ३८ ॥ दुःख से घिरा हुआ, अति खिन्नमन, एक चिन्ता में ही ग्रस्तमन होकर व्यथित हृदय से मरणासन्न की तरह हो जाता हुआ। फिर वह धैर्य धारण कर मेरी शरण में आया ॥ ३९ ॥ हे नर ! वैकुण्ठ भवन में जहाँ मैं रहता था वहाँ पहुँचा और ... पर ... आ कर मुझ परम पुरुषोत्तम को यह

देखता हुआ ॥ ४० ॥ उस समय ...

देखता हुआ ॥ ४० ॥ उस समय अमूल्य रत्नों से जटित सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे मुझको देखकर यह भूमि पर साक्षाद् दण्डवत् लेट कर ॥ ४१ ॥ हाथ जोड़कर नेत्रों से बराबर आँसुओं की धारा बहाता हुआ धैर्य धारण कर गद्गद वाणी से बोला ॥ ४२ ॥ सूत बोले। इस प्रकार महामुनि बदरीनाथ कथा कहकर चुप होते हुए। इस प्रकार नारायण

गृहं समागत्य मामसौ दृष्टवान् परम् ॥ ४० ॥ अमूल्यरत्नरचिते हेमसिंहासने स्थितम् ॥ तदानीं मामसौ दृष्ट्वा दण्डवत् पतितो भुवि ॥ ४१ ॥ प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा मुञ्चन्नश्रूणि नेत्रतः ॥ वाचा गद्गदया सौम्यं बभाषे धैर्यमुद्वहन् । ४२ ॥ सूत उवाच—इत्युक्त्वा बदरीनाथो विरराम महामुनिः ॥ तच्छ्रुत्वा पुनरेवाह नारदो भक्तवत्सलः ॥ ४३ ॥ नारद उवाच—इत्थं गत्वा भवनममलं पूर्णरूपस्य विष्णोर्भक्तिप्राप्यं जगदघहरं योगिनाप्यगम्यम् ॥ यत्रैवास्ते जगदभयदो ब्रह्मरूपो मुकुन्दस्तत्पादाब्जं शरणमधितः किं बभाषेऽधिमासः ॥४४॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्येऽधिमासस्य वैकुण्ठप्रापणं नामतृतीयोऽध्यायः॥३॥

के मुख से कथा सुन भक्तों ऊपर कृपा करनेवाले नारदमुनि पुनः बोले ॥ ४३ । नारद बोले। इस प्रकार परिपूर्ण भगवान् विष्णु के निर्मल भवन में जाकर भक्तिद्वारा मिलनेवाले, जगत् के पापों को दूर करनेवाले, योगियों को भी शीघ्र न मिलनेवाले, जगत् को अभय देनेवाले, ब्रह्मरूप, मुकुन्द जहाँ पर हैं उनके चरणकमलों की शरण में गया हुआ अधिमास क्या बोला ॥ ४४ ॥ इतिश्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीनारायण बोले। हे नारद! भगवान् पुरुषोत्तम के आगे जो शुभ वचन अधिमास ने कहे वह लोगों की हित इच्छा से हम कहते हैं सुनो ॥ १ ॥ अधिमास बोला। अति प्रेम से बोला हे नाथ! हे कृपानिधे! हे हरे! मेरे से जो बली हैं उन्होंने 'यह मलमास है' ऐसा कहकर मुझको पंक्ति से निकाल दिया है ऐसे मुझ निकाले हुए फलाकांक्षी आये हुए

श्रीनारायण उवाच—शृणु नारद वक्ष्येऽहं लोकानां हितकाम्यया॥ अधिमासेन यत्प्रोक्तं हरेरग्रे शुभं वचः ॥ १ ॥ अधिमास उवाच—अयि नाथ कृपानिधे हरे न कथं रक्षसि मामिहागतम् ॥ कृपणं प्रबलैर्निराकृतं मलमासेत्यभिधां विधाय मे ॥ २ ॥ शुभकर्मणि वर्जितं हि मां निरधीशं मलिनं सदैवतैः ॥ अवलोकयतो दयालुता क्व गता तेऽद्य कठोरता कथम् ॥ ३ ॥ वसुदेववराङ्गना यथा खलकंसानलतः सुरक्षिता ॥ वद मां शरणागतं कथं न तथा-द्यावसि दीनवत्सल ॥ ४ ॥ द्रुपदस्य सुता यथा पुरा खलदुःशासनदुःखतोऽविता ॥ वद मां

की आप क्यों नहीं रक्षा करते ॥ २ ॥ अपने स्वामी देवता वाले मासादिकों द्वारा शुभकर्म में वर्जित मुझ स्वामीरहित को देखते ही आपकी दयालुता कहाँ चली गयी और आज यह कठोरता कैसे आ गयी? ॥ ३ ॥ कंसरूप अग्नि से जैसे वसुदेव की स्त्री की रक्षा आपने की वैसे ही हे दीनवत्सल! कहिये मुझ शरण आये की आज कैसे रक्षा नहीं करते

शरण आये की आज कैसे रक्षा नहीं करते ॥ ५ ॥ यमुना में काली नाग के विष से जैसे गौ चरानेवाले और पशुओं की आपने रक्षा की वैसे हे दीनवत्सल! कहिये मुझ शरण आपे की आज कैसे रक्षा नहीं करते ॥ ६ ॥ पशु और पशुओं को पालनेवाले एवं पशुपालकों की स्त्रियों की जैसे पहिले व्रज में सर्पत वन में लगी हुई अग्नि से आपने रक्षा की वैसे हे दीनवत्सल! कहिये मुझ शरण आये की आज कैसे रक्षा नहीं करते ॥ ७ ॥ मगधदेश के राजा

शरणागतं कथं न तथाद्यावसि दीनवत्सल ॥ ५ ॥ यमुनाविषतो यतोऽविताः पशुपालाः पशवो यथा त्वया ॥ वद मां शरणागतं कथं न तथाद्यावसि दीनवत्सल ॥ ६ ॥ पशवः पशुपास्तदङ्गना अविता दावधनञ्जयाद्यथा ॥ वद मां शरणागतं कथं न तथाद्यावसि दीनवत्सल ॥ ७ ॥ पृथिवीपतयो मगधेशालयबन्धनात्त्वया ॥ वद मां शरणागतं कथं न तथाद्यावसि दीनवत्सल ॥ ८ ॥ गजनायक एत्य रक्षितो झटिति ग्राहमुखाद्यथा त्वया ॥ वद मां शरणागतं कथं न तथाद्यावसि दीनवत्सल ॥ ९ ॥ श्रीनारायण उवाच—इति विज्ञाप्य भूमानं विरराम निरीश्वरः ॥ मलमासोऽश्रुवदनस्तिष्ठन्नग्रे जगत्पतेः ॥ १० ॥ तदानीं श्रीहरिस्तूर्णं कृपया प्लावितो भृशम् ॥

जरासन्ध के बन्धन से राजाओं की जैसे रक्षा की वैसे दीनवत्सल! कहिये मुझ शरण आये की आज कैसे रक्षा नहीं करते ॥ ८ ॥ आपने ग्राह के मुख से गजराज को झट से आय कर जैसे रक्षा की वैसे हे दीनवत्सल! कहिये मुझ शरण आये की आज कैसे रक्षा नहीं करते ॥ ९ ॥ श्रीनाराण बोले। इस प्रकार भगवान् को जनायकर निरीश्वर मलमास, आँसू बहता मुख लिये जगत्पति के सामने खड़ा चुप रोता हुआ ॥ १० ॥ उसको रोते देखते ही भगवान् शीघ्र ही

दयार्द्र हो गये और पास में खड़े दीनमुख मलमास से शीघ्र बोले ॥ ११ ॥ श्रीहरि बोले । प्रेम से बोले हे वत्स ! क्यों इस समय अत्यन्त दुःख में डूबे हुए हो ऐसा कौन बड़ा भारी दुःख तुम्हारे मन में है ? ॥ १२ ॥ दुःख में डूबते हुए तुमको हम बचावेंगे, तुम शोक मत करो । मेरी शरण में आया हुआ फिर शोक करने योग्य नहीं रहता ? ॥ १३ ॥

उवाच दीनवदनं मलमासं पुरःस्थितम् ॥ ११ ॥ श्रीहरिरुवाच—वत्स वत्स किमत्यन्तं दुःखमग्नोऽसि साम्प्रतम् ॥ एतादृशं महद्दुःखं किं ते मनसि वर्तते ॥ १२ ॥ त्वामहंदुःख-संमग्नमुद्धरिष्यामि मा शुचः ॥ न मे शरणमापन्नः पुनः शोचितुमर्हति ॥ १३ ॥ इहागत्य महादुःखी पतितोऽपि न शोचति ॥ किमर्थं त्वमिहागत्य शोकसंमग्नमानसः ॥ १४ ॥ अशोकमजरं नित्यं सानन्दं मृत्युवर्जितम् ॥ वैकुण्ठमीदृशं प्राप्य कथं दुःखान्वितो भवान् ॥ १५ ॥ त्वामत्र दुःखितं दृष्ट्वा वैकुण्ठस्थाः सुविस्मिताः ॥ किमर्थं मर्तुकामोऽसि तन्मे वत्स वदाधुना ॥ १६ ॥ श्रीनारायण उवाच—श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं विभार इव भारभृत् ॥ श्वासोच्छ्वाससमायुक्त

यहाँ अकर महादुखी पतित भी शोक नहीं करता किसलिये तुम यहाँ आकर शोक में मन को डुबाये हुए हो ॥ १४ ॥ शोकरहित; कभी भी जरापने को न प्राप्त होनेवाले, नित्य, आनन्दयुक्त, मृत्युरहित, से इस प्रकार के वैकुण्ठ में आकर तुम कैसे दुःखित हो ? ॥ १५ ॥ तुमको यहाँ पर दुःखित देखकर वैकुण्ठ में रहनेवाले बड़े विस्मय को प्राप्त हो रहे हैं, हे

... तुम क्यों मरने की इच्छा करते हो ? ॥ १६ ॥ श्रीनारायण बोले । इस प्रकार भगवद्वाक्य
को सुनकर–बोझा लिये हुए आदमी जैसे बोझा रखकर श्वास पर श्वास लेता है इसी प्रकार श्वासोच्छ्वास लेकर–अधिमास मधुसूदन से बोला ॥ १७ ॥ अधिमास बोला । हे भगवन् ! आप सर्वव्यापी हैं, आप से अज्ञात कुछ नहीं है, आकाश की तरह आप विश्व में व्याप्त होकर बैठे हैं ॥ १८ ॥ चर अचर में विष्णु हैं, सबके साक्षी हैं, विश्वभर को

उवाच मधुसूदनम् ॥ १७ ॥ अधिमास उवाच–अज्ञातं किञ्चिन्नैवास्ति सर्वत्र भगवंस्तव ॥
आकाश इव सर्वत्र व्याप्य व्यवस्थितः ॥ १८ ॥ चराचरगतो विष्णुः साक्षी सर्वस्य विश्व-
दृक् ॥ कूटस्थे त्वयि सर्वाणि भूतानि च व्यवस्थया ॥ १९ ॥ संस्थितानि जगन्नाथ न
किञ्चिद्भवता विना ॥ किन्न जानासि भगवन्निर्भाग्यस्य मम व्यथाम् ॥२०॥ तथापि वच्मि हे
नाथ दुःखजालमपावृतम् ॥ तादृशं नैव कस्यापि न श्रुतं नावलोकितम् ॥ २१ ॥ क्षणा
लवा मुहूर्ताश्च पक्षा मासा दिवानिशम् ॥ स्वामिनामधिकारैस्ते मोदन्ते निर्भयाः सदा ॥२२॥
न मे नाम न मे स्वामी न हि कश्चिन्ममाश्रयः ॥ तस्मान्निराकृतः सर्वैः साधिदेवैः

देखते हैं, कूटस्थ आप में व्यवस्था से सब भूत ॥ १९ ॥ स्थित हैं हे जगन्नाथ ! आपके बिना कुछ भी नहीं है । क्या आप मेरे निर्भाग्य की व्यथा को नहीं जानते हैं ॥ २० ॥ तथापि हे नाथ ! मैं अपनी व्यथा को कहता हूँ जिस प्रकार मैं दुःखजाल से घिरा हुआ हूँ वैसे दुःखित को मैंने न देखा है न सुना है ॥ २१ ॥ क्षण, निमेष, मुहूर्त, पक्ष, मास, दिन और रात सब अपने अपने स्वामियों के अधिकारो से सदा निर्भय प्रसन्न रहते हैं ॥ २२ ॥ मेरा न कुछ

नाम है और न मेरा कोई स्वामी है एवं न कोई मुझको आश्रय है अतः क्षणादिक समस्त स्वामी वालों ने शुभकर्म से मुझको निराकृत कर दिया है ॥२३॥ यह मलमास सदा निषिद्ध है, अन्धा है, गढ़े में गिरनेवाला है ऐसा सब कहते हैं इसी कारण से मैं मरने की इच्छा करता हूँ जीने की मेरी इच्छा नहीं है ॥ २४ ॥ बुरी तरह जीने से मरना अच्छा है

सुकर्मणः ॥ २३ ॥ निषिद्धो मलमासोऽयमित्यन्धोऽवटगः सदा ॥ तस्माद्विनष्टुमिच्छामि नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २४ ॥ कुजीविताद्वरं मृत्युर्नित्यदग्धः कथं स्वपेत् ॥ अतः परं महाराज वक्तव्यं नावशिष्यते ॥ २५ ॥ परदुःखासहिष्णुस्त्वमुपकारप्रियो मतः ॥ वेदेषु च पुराणेषु प्रसिद्धः पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ निजधर्मं समालोच्य यथारुचि तथा कुरु ॥ पुनः पुनः पामरेण न वक्तव्यः प्रभुर्महान् ॥ २७ ॥ मरिष्येऽहं मरिष्येऽहं मरिष्येऽहं पुनः पुनः ॥ इत्युक्त्वा मलमासोऽयं विरराम विधेःसुत ॥२८॥ ततः पपात सहसा सन्निधौ श्रीरमापतेः॥

जो सदा जला हुआ है वह कैसे सो सकता है । हे महाराज ! इससे अधिक मुझको कुछ कहना नहीं है ॥२५॥ दूसरे के दुःख को न सहन करनेवाले, परोपकारी, ऐसे वेदों और पुराणों में आप पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हैं ॥ २६ ॥ आप प्रभु और महान् हैं आप अपना धर्म देखकर जैसी रुचि हो वैसा करें । मुझ पामर द्वारा घड़ी घड़ी अब कुछ वक्तव्य नहीं है

विराम करता हुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर एका-एक श्रीलक्ष्मीपति के पास गिर गया। तब इस प्रकार गिरते हुए को देख भगवान् बड़े विस्मयको प्राप्त होते हुए ॥ २९ ॥ श्रीनारायण बोले। इस प्रकार कहकर चुप हुए अधिमास के प्रति बहुत कृपा भार से अवसन्न हुये श्रीकृष्ण, मेघ के समान गम्भीर वाणी से चन्द्रमा की तरह नम्र हुये शान्तिकर वचन

तत्र तं पतितं दृष्ट्वा संसज्जाता सुविस्मिता ॥ २९ ॥ श्रीनारायण उवाच—इत्युक्त्वा विरतिमुपागतेऽधिमासे श्रीकृष्णो बहुलकृपाभरावसन्नः ॥ प्रावोचज्जलदगभीरशावरम्यं निर्वाणं शिशिरमयूखवन्नयंस्तम् ॥३०॥ सूत उवाच—नारायणस्य निगमर्द्धिपरायणस्य पापौघवार्धिवडवाग्निवचोऽवदातम् ॥श्रुत्वा प्रहर्षितमना मुनिराबभाषे शुश्रूषुरादिपुरुषस्य वचांसिविप्राः ॥३१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये मलमासविज्ञप्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

बोलें ॥ ३० ॥ सूतजी बोले। हे विप्रों! वेदरूप ऋद्धि के आश्रित नारायण का पापों के समुदायरूप बढ़ते हुए समुद्र को शोषण करने को बड़वानल अग्नि के समान वचन सुन प्रसन्न हुए नारदमुनि, पुनः आदिपुरुष के वचनों को सुनने की इच्छा से बोले ॥ ३१ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारद बोले। हे महाभाग! हे तपोनिधे! इस प्रकार अधिमास के वचनों को सुनकर हरि, चरणों के आगे पड़े हुए अधिमास से क्या बोले ? ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले। हे पापरहित! हे नारद! जो हरि ने मलमास के प्रति कहा वह हम कहते हैं सुनों। हे मुनिश्रेष्ठ! आप जो सत्कथा हमसे पूछते हैं अतः आप धन्य हैं ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले। हे

नारद उवाच–किमुवाच महाभाग श्रुत्वा तद्वचनं हरिः ॥ चरणाग्रे निपतितमधिमासं तपोनिधे ॥१॥ श्रीनारायण उवाच–शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं हरिणाऽनघ ॥ धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ यन्मां पृच्छसि सत्कथाम् ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच–शृणु तत्रत्यवृत्तान्तं प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः ॥ नेत्रकोणसमादिष्टस्तदानीं हरिणाऽर्जुन ॥ ३ ॥ वीजयामास पक्षेण तं मासं मूर्च्छितं खगः ॥ उत्थितः पुनरेवाह नैतन्मे रोचते विभो ॥ ४ ॥ अधिमास उवाच–पाहि-पाहि जगद्धातः पाहि विष्णो जगत्पते ॥ उपेक्षसे कथं नाथ शरणं मामुपागतम् ॥ ५ ॥

अर्जुन! बैकुण्ठ का वृत्तान्त हम तुम्हारे सामने कहते हैं सुनो। मलमास के मूर्च्छित हो जाने पर हरि के नेत्र से सङ्केत पाये हुए गरुड़ मुर्च्छित मलमास को पक्ष (पङ्ख) से हवा करने लगे। हवा लगने पर अधिमास उठकर पुनः बोला कि हे विभो। यह मुझको नहीं रुचता है ॥ ३–४ ॥ अधिमास बोला। हे जगत् को उत्पन्न करने वाले! हे विष्णो! हे

कहकर काँपते हुए घड़ी २ विलाप करते हुए अधिमास से, वैकुण्ठ में रहने वाले हरि, हृषीकेश बोले ॥ ६ ॥ श्रीविष्णु बोले। उठो २ तुम्हारा कल्याण हो हे वत्स! विषाद मत करो। हे निरीश्वर! तुम्हारा दुःख मुझको दूर होता नहीं ज्ञात होता है ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर प्रभु मन में सोचकर क्षण भर में उपाय निश्चय करके पुनः मधुसूदन अधिमास से बोले

इत्युक्त्वा वेपमानं तं विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥ तमुवाच हृषीकेशो वैकुण्ठनिलयो हरिः ॥ ६ ॥ श्रीविष्णुरुवाच—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते विषादं वत्स मा कुरु॥ त्वद्दुःखं दुर्निवार्यं मे प्रतिभाति निरीश्वर ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा मनसि ध्यात्वा तदुपायं क्षणं प्रभुः ॥ विनिश्चित्य पुनर्वाक्य-मुवाच मधुसूदनः ॥ ८ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ वत्सागच्छ मया सार्धं गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्रास्ते भगवान् कृष्णः पुरुषोत्तम ईश्वरः ॥ ९ ॥ गोपिकावृन्दमध्यस्थो द्विभुजो मुरलीधरः ॥ नवीननीरदश्यामो रक्तपङ्कजलोचनः ॥ १० ॥ शारदीय-पार्वणेन्दुशोभातिरोचनाननः ॥ कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाममनोहरः ॥ ११ ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी वनमालाविभूषितः ॥

॥ ८ ॥ श्रीविष्णु बोले। हे वत्स! योगियों को जो दुर्लभ गो लोक है वहाँ मेरे साथ चलो जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण, पुरुषोत्तम रहते हैं ॥ ९ ॥ गोपियों के समुदाय के मध्य में स्थित दो भुजा वाले, मुरली को धारण किये हुए, नवीन मेघ के समान श्याम, लाल कमल के सदृश नेत्रवाले, ॥ १० ॥ शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अति सुन्दर मुखवाले, करोड़ों कामदेव के समान लावण्ययुक्त, मनोहर लीला के धाम, ॥ ११ ॥ पीताम्बर धारण किये हुए, माला पहिने,

वनमाला से विभूषित, उत्तम रत्नाभरण धारण किये हुए, प्रेम के भूषण, भक्तों के ऊपर कृपा रखने वाले ॥ १२ ॥ चन्दन चर्चित सर्वाङ्ग, कस्तूरी-केशर से युक्त, वक्षस्थल में श्रीवत्स चिह्न से शोभित, कौस्तुभ मणि से विराजित ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ रत्नों के सार से रचित उज्वल किरीटकुण्डलधारी, रत्नों के सिंहासन पर बैठे हुए, पार्षदगणों से घिरे हुए,

सद्रत्नभूषणः प्रेमभूषणो भक्तवत्सलः ॥ १२ ॥ चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितः ॥ श्रीवत्सवक्षाः संभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितः॥ १३ ॥ सद्रत्नसाररचितकिरीटी कुण्डलोज्ज्वलः॥ रत्नसिंहासनारूढः पार्षदैः परिवेष्टितः ॥ १४ ॥ स एव परमं ब्रम्ह पुराणपुरुषोत्तमः ॥ स्वेच्छामयः सर्वबीजं सर्वाधारः परात्परः ॥ १५ ॥ निरीहो निर्विकारश्च परिपूर्णतमः प्रभुः ॥ प्रकृतेः पर ईशानो निर्गुणो नित्यविग्रहः ॥ १६ ॥ गच्छावस्तत्र त्वद्दुःखं श्रीकृष्णो व्यपनेष्यति ॥ श्रीनारायण उवाच—इत्युक्त्वा तं करे कृत्वा गोलोकं गतवान् हरिः ॥ १७ ॥ अज्ञानान्धतमोध्वंसं ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम् ॥ ज्योतिःस्वरूपं प्रलये पुरासीत्केवलं मुने ॥१८॥

॥ १४ ॥ वही पुराण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। स्वेच्छामय, समस्त ब्रह्माण्ड के बीज, सबके आधार, पर से भी पर ॥ १५ ॥ चेष्टारहित, निर्विकार, परिपूर्णतम, प्रभु, माया से परे, ईशान, गुणरहित, नित्यशरीर ॥ १६ ॥ ऐसे प्रभु जिस गोलोक में रहते हैं वहाँ हम दोनों चलते हैं वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। श्री नारायण बोले। ऐसा कहकर अधि-

दीपक हैं। हे मुने! पहिले प्रलय काल में केवल ज्योतिःरूप थे ॥ १८ ॥ करोड़ों सूर्यों के समान निभा वाले, नित्य, असङ्ख्य, विश्व के कारण, उन स्वेच्छामय विभु की ही वह बड़ी भारी लाल रङ्ग की ज्योति है ॥ १९ ॥ उस ज्योति के अन्दर ही तीन लोक मनोहर विराजित हैं। हे मुने! उसके ऊपर शाश्वत ब्रह्म की तरह गोलोक विराजित हैं ॥ २० ॥ तीन करोड़ योजन का चारो तरफ विस्तार है, मण्डल की तरह उस गोलोक की आकृति है, बड़े भारी तेज के

सूर्यकोटिनिभंनित्यमसंख्यं विश्वकारणम् ॥ विभोः स्वेच्छामयस्यैव तज्ज्योतिरुल्बणं महत् ॥ १९ ॥ ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरं ॥ तस्यैवोपरि गोलोकः शाश्वतो ब्रह्मवन्मुने ॥ २० ॥ त्रिकोटियोजनायामो विस्तीर्णो मण्डलाकृतिः ॥ तेजःस्वरूपः सुमहद्रत्नभूमिमयः परः ॥ २१ ॥ अदृश्यो योगिभिः स्वप्ने दृश्यो गम्यश्च वैष्णवैः ॥ ईशेन विधृतो योगैरन्तरिक्षस्थितो वरः ॥ २२ ॥ आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितः ॥ सद्रत्नभूषितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितः ॥ २३ ॥ तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटिविस्तरात् ॥ वैकुण्ठः

समान उसका स्वरूप है, उसकी भूमि रत्नमय है ॥ २१ ॥ योगियों द्वारा भी स्वप्न में अदृश्य है, विष्णु के भक्तों से गम्य और दृश्य है। ईश्वर ने योगद्वारा उसे धारण कर रखा है अन्तरिक्ष में वह उत्तम लोक स्थित है ॥ २२ ॥ आधि, व्याधि, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, भय आदि से रहित है श्रेष्ठ रत्नों से भूषित असङ्ख्य मकानों से शोभित है ॥ २३ ॥ उस गोलोक के नीचे पचास करोड़ योजन के विस्तार के भीतर दहिने वैकुण्ठ और बायें वैकुण्ठ के समान मनोहर

शिवलोक स्थित है ॥ २४ ॥ एक करोड़ योजनविस्तार का मण्डलाकृति वैकुण्ठ शोभित है, वहाँ सुन्दर पीताम्बरधारी वैष्णव रहते हैं ॥ २५ ॥ उस वैकुण्ठ के रहनेवाले शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए लक्ष्मी के सहित चतुर्भुज हैं। उस वैकुण्ठ में रहनेवाली स्त्रियाँ बजते हुए नूपुर और करधनी धारण किये सब लक्ष्मी के समान रूपवती हैं

शिवलोकश्च तत्समः सुमनोहरः ॥ २४ ॥ कोटियोजनविस्तीर्णो वैकुण्ठो मण्डलाकृतिः ॥ लसत्पीतपटा रम्या यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ॥ २५ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मश्रियाजुष्टचतुर्भुजाः ॥ स्त्रियो लक्ष्मीसमाः सर्वाः कूजन्नूपुरमेखलाः ॥ २६ ॥ सव्येन शिवलोकश्च कोटियोजनविस्तृतः ॥ लयशून्यश्च सृष्टौ च पार्षदैः परिवारितः ॥ २७ ॥ निवसन्ति महाभागा गणा यत्र कपर्दिनः ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा नाग यज्ञोपवीतिनः ॥ २८ ॥ अर्द्धचन्द्रलसद्भालाः शूलपट्टिशपाणयः ॥ सर्वे गंगाधराः शूरास्त्र्यम्बका जयशालिनः ॥ २९ ॥ गोलोकाभ्यन्तरे

॥ २६ ॥ गोलोक के बाएं तरफ जो शिवलोक है वह एक करोड़ योजन में विस्तृत है और प्रलय शून्य है सृष्टि में पार्षदों से युक्त रहता है ॥ २७ ॥ बड़े भाग्यवान् शङ्कर के गण जहाँ रहते हैं। शिवलोक के रहने वाले सब सर्वाङ्ग भस्म धारण किये हुए नाग का यज्ञोपवीत पहिरे हुए ॥ २८ ॥ अर्धचन्द्र जिनके मस्तक में शोभित है त्रिशूल और

अन्दर अति सुन्दर एक ज्योति है वह ज्योति परम आह्लाद को देनेवाली, निरन्तर परमानन्द का कारण है ॥ ३० ॥ योगिलोग निरन्तर योग द्वारा ज्ञानचक्षु से ध्यान करते हैं। वही ज्योति आनन्द देनेवाली निराकार और पर से भी परे है ॥ ३१ ॥ उस ज्योति के अन्दर अत्यन्त सुन्दर एक रूप है जो कि नीलकमल के पत्ते समान श्याम, लाल कमल

ज्योतिरतीव सुमनोहरम् ॥ परमाह्लादकं शश्वत्परमानन्दकारणम् ॥ ३० ॥ ध्यायन्ते योगिनः शश्वद्योगेन ज्ञानचक्षुषा ॥ तदेवानन्दजनकं निराकारं परात्परम् ॥ ३१ ॥ तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम् ॥ इन्दीवरदलश्यामं पङ्कजारुणलोचनम् ॥ ३२ ॥ कोटिशारदपूर्णेन्दुशोभातिरोचनाननम् ॥ कोटिमन्मथसौन्दर्यलीलाधाममनोहरम् ॥ ३३ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ३४॥ सद्रत्नकोटिखचितकिरीटकटकोज्ज्वलम् ॥ रत्नसिंहासनस्थं च वनमाला विभूषितम् ॥ ३५॥

के समान नेत्र वाले ॥ ३२ ॥ करोड़ो शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के समान शोभायमान मुख वाले, करोड़ो कामदेव के समान सौन्दर्य सम्पन्न, लीला के सुन्दर धाम ॥ ३३ ॥ दो भुजा वाले, मुरली हाथ में लिये, मन्दहास्य युक्त, पीतवस्त्र धारण किये, श्रीवत्स चिह्न से शोभित जिनका वक्षःस्थल है, कौस्तुभमणि से सुशोभित ॥ ३४ ॥ करोड़ों उत्तम रत्नों से जटित चमचमाते किरीट और पौंची धारण किये, रत्न के सिंहासन पर स्थित, वनमाला से सुशोभित ॥ ३५ ॥ वही श्रीकृष्ण

नामवाले पूर्ण परब्रह्म हैं। अपनी इच्छामय, सबका कारण, सबके आधार, पर से भी परे ॥ ३६ ॥ थोड़े ही अवस्थावाले, निरन्तर गोपवेश के विधायक, करोड़ों पूर्ण चन्द्रों की शोभा से युक्त, भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले ॥ ३७ ॥ इच्छा रहित, निर्विकार, परिपूर्णतम, स्वामी, रासमण्डप के बीच में बैठे हुए, शान्त, रास के स्वामी, हरि ॥ ३८ ॥ मङ्गलस्व-

तदेव परमं ब्रह्म पूर्णं श्रीकृष्णसंज्ञकम् ॥ स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम् ॥३६॥ किशोर-वयसं शश्वद्गोपवेषविधायकम् ॥ कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३७ ॥ निरीहं निर्विकारं च परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ रासमण्डपमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं हरिम् ॥ ३८ ॥ मंगलं मंगलार्हं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ परमानन्दराजं च सत्यमक्षरमव्ययम् ॥ ३९ ॥ सर्वसिद्धेश्वरं सर्व सिद्धि-रूपं च सिद्धिदम् ॥ प्रकृतेः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम् ॥ ४० ॥ आद्यं पुरुष मव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ॥ नित्यं स्वतन्त्रमेकं च परमात्मस्वरूपकम् ॥ ४१ ॥ ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं शान्तिपरायणम् । एवं रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव

रूप, मङ्गल के योग्य, समस्त मंगलों के मंगल, परम आनन्द के राजा, सत्यरूप, कभी भी क्षरण न होनेवाले, विकार रहित ॥३९॥ समस्त सिद्धों के ईश्वर, समस्त सिद्धरूप अशेष सिद्धियों के दाता, माया से परे, ईश्वर, गुणरहित, नित्यशरीरी ॥४०॥ आदिपुरुष, सूक्ष्म, बहुत हैं नाम जिनके, अनेकों द्वारा स्तुति किये जानेवाले, नित्य, स्वतन्त्र, एक, ऐसे परमात्मा के स्वरूप

उपकार के लिये इस प्रकार दूसरा (कृष्ण) रूपधारण किये हुए हैं ॥ ४२ ॥ श्रीनारायण बोले । ऐसा कहकर भगवान् सत्त्व स्वरूप विष्णु अधिमास को साथ लेकर ही परब्रह्मयुक्त गोलोक में पहुँचे ॥ ४३ ॥ सूत बोले । ऐसा कहकर

सः ॥ ४२ ॥ श्रीनारायण उवाच—एवमुक्त्वा ततो विष्णुरधिमाससमन्वितः गोलोकमगमच्छीघ्रं विरजोवेष्टित परम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच—इतीरयित्वा गिरमात्ता सत्क्रिये मुनीश्वरे तूष्णिमवस्थिते मुनिः । जगाद वाक्यं विधिजो महोत्सवाच्छुश्रूषुरानन्दनिधेर्नवाः कथाः ॥ ४४ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे श्रीनारायणनारदसंवादे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये
विष्णोर्गोलोकगमने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सत्क्रिया को ग्रहण किये हुए नारायण मुनि के चुप हो जानेपर आनन्दसागर पुरुषोत्तम से विविध प्रकार की नयी नयी कथाओं को सुनने की इच्छा रखनेवाले नारद मुनि उत्कण्ठापूवक बोले ॥ ४४ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये विष्णोर्गोलोकगमने पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

नारद बोले। भगवान् विष्णु गोलोक में जाकर क्या करते हैं? हे पापरहित! मुझ श्रोता के ऊपर कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले। हे नारद! हे पापरहित! अधिमास को लेकर भगवान् विष्णु के गोलोक जाने पर जो घटना हुई वह हम कहते हैं सुनो ॥ २ ॥ उस गोलोक के अन्दर मणियों के खम्भे से सुशोभित सुन्दर पुरुषोत्तम

नारद उवाच—वैकुण्ठाधिपतिर्गत्वा गोलोके किं चकार ह ॥ तद्वदस्व कृपां कृत्वा मह्यं शुश्रूषवेऽनघ ॥१॥ श्रीनारायण उवाच–शृणु नारद वक्ष्येऽहं यज्जातं तत्र तेनऽघ ॥ विष्णुर्गोलोकमगमदधिमासेन संयुतः ॥ २ ॥ तन्मध्ये भगवद्धाम मणिस्तम्भैः सुशोभितम् । ददर्श दूरतो विष्णुर्ज्योतिर्धाम मनोहरम् ॥ ३ ॥ तत्तेजःपिहिताक्षोऽसौ शनैरुन्मील्य लोचने ॥ मन्दं मन्दं जगामाधिमासं कृत्वा स्वपृष्ठतः ॥४॥ उपमन्दिरमासाद्य साधिमासो मुदान्वितः ॥ उत्थितैर्द्वारपालैश्च वन्दिताङ्घ्रिर्हरिः शनैः ॥ ५ ॥ प्रविष्टो भगवद्धाम शोभासंमुष्टलोचनः ॥ तत्र गत्वा ननामाशु श्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् ॥६॥ गोपिकावृन्दमध्यस्थं रत्नसिंहासनासनम् ॥

के धाम को दूर से भगवान् विष्णु देखते हुए ॥ ३ ॥ उस धाम के तेज से बन्द हुए नेत्रवाले विष्णु धीरे धीरे नेत्र खोलकर और अधिमास को अपने पीछे कर धीरे धीरे धाम के प्रति जाते हुए ॥४॥ भगवान् के मन्दिर के पास जाकर अधिमास के सहित विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए और उठकर खड़े हुए द्वारपालों से अभिवन्दित, पुरुषोत्तम भगवान् की

को नमस्कार करते हुए ॥ ५–६ ॥ गोपिकाओं के मण्डल के मध्य में रत्नसिंहासन पर बैठे हुए कृष्ण को नमस्कार करके पास में खड़े होकर विष्णु बोले ॥ ७ ॥ श्रीविष्णु बोले। गुणों से रहित विष्णु, गोविन्द, एक, अक्षर, सूक्ष्म, नाशरहित, विग्रहवान्, गोपों के वेष के विधायक ॥ ८ ॥ छोटी अवस्थावाले, शान्तस्वरूप, गोपियों के पति, बड़े सुन्दर, नूतन मेघ के समान श्याम, करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर ॥ ९ ॥ वृन्दावन के अन्दर रासमण्डल में बैठने वाले,

नत्वोवाच रमानाथो बद्धाञ्जलिपुटः पुरः ॥ ७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच—वन्दे वि॰ गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् ॥ अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम् ॥ ८ ॥ किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् ॥ नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥ ९ ॥ वृन्दावनवनाभ्यन्ते रासमण्डलसंस्थितम् ॥ लसत्पीतपटं सौम्यं त्रिभंगललिताकृतिम् ॥१०॥ रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतवाससमच्युतम् ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे ॥ पार्षदैः सत्कृतो विष्णुः स उवास तदाज्ञया ॥ १२ ॥ श्रीनारायण

पीतरङ्ग के पीताम्बर से शोभित, सौम्य, भौंह चढ़ाने से मस्तक में तीन रेखा पड़ी हुई सुन्दर आकृतिवाले ॥ १० ॥ रासलीला के स्वामी, रासलीला में रहने वाले, रासलीला करने में सदा उत्सुक, दो भुजावाले, मुरलीधर, पीतवस्त्रधारी, अच्युत ॥ ११ ॥ ऐसे भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ । इस प्रकार स्तुति करके भगवान् कृष्ण को नमस्कार कर पार्षदों द्वारा सत्कृत विष्णु रत्नसिंहासन पर कृष्ण की आज्ञा से बैठे ॥ १२ ॥ श्रीनारायण बोले। यह विष्णु का किया

हुआ स्तोत्र प्रातःकाल उठकर जो पढ़ता है उसके समस्त पाप नाश हो जाते हैं और खराब स्वप्न अच्छे फल का दाता हो जाता है ॥ १३ ॥ पुत्रपौत्रादि को बढ़ानेवाली भक्ति श्रीगोविन्द में होती है और अकीर्ति का नाश एवं सत्कीर्ति की वृद्धि होती है ॥ १४ ॥ तब भगवान् विष्णु बैठ गये और कृष्ण के आगे काँपते हुए अधिमास को कृष्ण के चरणकमलों

उवाच—इति विष्णुकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सत्फलप्रदः ॥ १३ ॥ भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥ अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥ १४ ॥ उपविष्टस्ततो विष्णुः श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥ नामयामास तं मासं वेपमानं तदग्रतः ॥ १५ ॥ तदा पप्रच्छ श्रीकृष्णः कोऽयं कस्मादिहागतः ॥ कस्माद्रुदति गोलोके न कश्चिद्दुःखमश्नुते ॥१६॥ गोलोकवासिनः सर्वे सदाऽऽनन्द परिप्लुताः ॥ स्वप्नेऽपि नैव शृण्वन्ति दुर्वार्तां च दुरन्वयाम् ॥१७॥ तस्मादयं कथं विष्णो मदग्रे दुःखितः स्थितः ॥ मुञ्चन्नश्रूणि नेत्राभ्यां वेपते च मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण उवाच—नवाम्बु-

में नमन कराते हुए ॥ १५ ॥ तदनन्तर कृष्ण विष्णु से पूछने लगे कि यह कौन है ? कहाँ से आया है ? क्यों रोता है ? इस गोलोक में तो कोई भी दुःखभागी होता नहीं है ॥ १६ ॥ इस गोलोक में रहनेवाले तो सदा आनन्द में मग्न रहते हैं ये लोग तो स्वप्न में भी खराब बात या दुःखभरा समाचार सुनते नहीं ॥ १७ ॥ अतः हे विष्णो ! यह कैसे

समान श्यामसुन्दर, गोलोक के नाथ का वचन सुन सिंहासन से उठकर महाविष्णु, मलमास के समग्र दुःख का वृत्तान्त कहते हुए ॥ १९ ॥ श्रीविष्णु बोले। हे वृन्दावन की शोभा के नाथ ! हे श्रीकृष्ण ! हे मुरलीधर ! इस अधिमास के दुःख को मैं आपके सामने कहता हूँ आप सुनें ॥ २० ॥ इसके दुःखित होने के कारण ही इस स्वामी रहित

दानीकमनोहरस्य गोलोकनाथस्य वचो निशम्य ॥ उवाच विष्णुर्मलमासदुःखं प्रोत्थाय सिंहासनतः समग्रम् ॥ १९ ॥ श्रीविष्णुरुवाच—वृन्दावनकलानाथ श्रीकृष्ण मुरलीधर ॥ श्रूयतामधिमासोऽयं दुःखं वच्मि तवाग्रतः ॥ २० ॥ तस्मादहमिहायातो गृहीत्वामुं निरीश्वरम् ॥ दुःखदावानलं तीव्रमेतदीयं निराकुरु ॥ २१ ॥ अयं त्वधिकमासोऽस्ति व्यपेतरविसंक्रमः ॥ मलिनोऽयमनर्होऽस्ति शुभकर्मणि सर्वदा ॥२२॥ न स्नानं नैव दानं च कर्तव्यं प्रभुवर्जिते ॥ एवं तिरस्कृतः सर्वैर्वनस्पतिलतादिभिः ॥ २३ ॥ मासैर्द्वादशभिश्चैव कलाकाष्ठलवादिभिः ॥ अयनैर्हायनैश्चैव स्वामिगर्वसमन्वितैः ॥२४॥ इति दुःखानलेनैव दग्धोऽयं

अधिमास को लेकर मैं आया हूँ इसकी दुःखरूप उग्र अग्नि को आप शान्त करें ॥ २१ ॥ यह अधिमास रवि की संक्रान्ति से रहित है, मलिन है, शुभकर्म में सदा वर्जित है ॥ २२ ॥ स्वामीरहित मास में स्नान, दान आदि नहीं करना चाहिये, ऐसा कहकर वनस्पति आदिकों ने इसका तिरस्कार किया है ॥ २३ ॥ द्वादश मास, कला, काष्ठा, क्षण, अयन, संवत्सर आदि सेश्वरों ने अपने अपने स्वामी के गर्व से इसका अत्यन्त तिरस्कार किया ॥ २४ ॥ इसी

दुःखाग्नि से जला हुआ यह मरने लगा, तब अन्य दयालु व्यक्तियों द्वारा प्रेरित होकर हमारे पास आया ॥ २५ ॥ हे हृषिकेश ! यह शरण चाहने की इच्छा से हमारे पास आया और काँपते २ घड़ी घड़ी रोते रोते अपना सब दुःखजाल इसने कहा ॥ २६ ॥ इसका यह बड़ा भारी दुःख आपके बिना हट नहीं सकता, अतः इस निराश्रय का हाथ पकड़कर

मर्तुमुन्मुखः ॥ अन्यैर्दयालुभिः पश्चात्प्रेरितो मसुपागतः ॥ २५ ॥ शरणार्थी हृषीकेश, वेपमानो रुदन्मुहुः ॥ सर्वं निवेदयामास दुःखजालमसंवृतम् ॥२६॥ एतदीय महद्दुःखमनिवार्यं भवद्दृते ॥ अतस्त्वामाश्रिता नूनं करे कृत्वा निराश्रयम् ॥ २७ ॥ परदुःखासहिष्णुस्त्वमिति वेदविदो जगुः ॥ अत एनं निरातङ्कं सानन्दं कृपया कुरु ॥ २८ ॥ त्वदीयचरणाम्भोजं गतो नैव विशोचते ॥ इति वेदविदो मिथ्या कथं भवति जगत्पते ॥ २९ ॥ मदर्थमपि कर्तव्यमेतद्दुःखनिवारणम् । सर्वं त्यक्त्वाहमायातो शान्तं मे सफलं कुरु ॥ ३० ॥ मुहुर्मुहुर्न वक्तव्यं कदापि प्रभुसन्निधौ ॥ वदन्त्येव महाप्राज्ञा नित्यं नीतिविशारदाः ॥ ३१ ॥ इति विज्ञ प्रभुमानं बद्धा-

आपकी शरण में लाया हूँ ॥ २७ ॥ 'दूसरों का दुःख आप सहन नहीं कर सकते हैं' ऐसा वेदविद् लोग कहते हैं, अतास्त्र इस दुःखित को कृपा करके सुखी करिये ॥ २८ ॥ 'आपके चरणकमलों में प्राप्त प्राणी शोक का भागी नहीं होता है' ऐसा विद्वानों का कहना है । हे जगत्पते ! कैसे मिथ्या हो सकता है ? ॥ २९ ॥ मेरे ऊपर कृपाकरके भी इसका दुःख

'बड़ी घड़ी स्वामी के सामने कभी भी कोई विषय न कहना चाहिये' ऐसा नीति के जाननेवाले बड़े बड़े पण्डित सदा कहा करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार अधिमास का सब दुःख भगवान् कृष्ण को कहकर हरि, कृष्ण के मुखकमल की ओर देखते हुए कृष्ण के पास ही हाथ जोड़ कर खड़े हो गये ॥ ३२ ॥ ऋषिलोग बोले। हे सूत! हे सूत! आप

ञ्जलिपुटो हरिः॥ पुरस्तस्थौ भगवतो निरीक्षंस्तन्मुखाम्बुजम्॥३२॥ ऋषय ऊचुः—सूत सूत वदान्योऽसि जीव त्वं शाश्वतीः समाः ॥ पिबामो यन्मुखात्सौम्यं हरिलीलाकथामृतम्॥३३॥ गोलोकवासिना सूत किमुक्तं किं कृतं वद॥ विष्णुश्रीकृष्णसंवादः सर्वलोकोपकारकः॥३४॥ विधिसुतः किमपृच्छदृषीश्वरं तदधुना वद सूत तपस्विनः॥ परमभागवतः स हरेस्तनुस्तदुदितं वचनं परमौषधम् ॥ ३५ ॥ इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे पुरुषोत्तमविज्ञप्तिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दाताओं में श्रेष्ठ हैं आपकी दीर्घायु हो यतः हम लोग आपके मुख से भगवान् की लीला के कथारूप अमृत का पान करते रहें ॥ ३३ ॥ हे सूत! गोलोकवासी भगवान् कृष्ण ने विष्णु के प्रति फिर क्या कहा? और क्या किया? इत्यादि लोकों का उपकारक विष्णु कृष्ण का संवाद सब आप हम लोगों से कहिये ॥३४॥ परम भगवद्भक्त नारद ने नारायण से क्या पूछा ? हे सूत! आप इस समय हम लोगों से कहिये। नारद के प्रति कहा हुआ भगवान् का वचन तपस्वियों के लिए परम औषध है ॥ ३५ ॥ इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

सूत बोले । हे तपोधनः ! आप लोगों ने जो प्रश्न किया है वही प्रश्न नारद ने नारायण से किया था सो नारायण ने जो उत्तर दिया वही हम आप लोगों से कहते हैं ॥ १ ॥ नारद बोले । विष्णु ने अधिमास का अपार दुःख निवेदन करके जब मौन धारण किया तब हे बदरीपते ! पुरुषोत्तम ने क्या किया ? सो इसे आप हमसे कहिये ॥ २ ॥

सूत उवाच ॥ भवद्भिर्यः कृतः प्रश्नस्तमर्च्चःकरदाशुगः ॥ यदुत्तरमुवाचेशस्तद्वदामि तपोधनाः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ विष्टरश्रवसि मौनमास्थिते सन्निवेद्य परदुःखमपारम् ॥ किं चकार पुरुषोत्तमः परस्तद्वदस्व बदरीपतेऽधुना ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गोलोकनाथो यदुवाच विष्णुं तदेव गुह्यं कथयामि वत्स ॥ वाच्यं सुभक्ताय सदास्तिकाय शुश्रूषवे दम्भविवर्जिताय ॥ ३ ॥ सुकीर्तिकृत् पुण्यकरं यशस्यं सत्पुत्रदं वश्यकरं च राज्ञाम् ॥ दारिद्र्यदावाग्निरनल्पपुण्यैः श्राव्यं तथा कार्यमनन्यभक्त्या ॥ ४ ॥ श्रीपुरुषोत्तम उवाच ॥

श्रीनारायण बोले । हे वत्स ! गोलोकनाथ कृष्ण ने विष्णु के प्रति जो कहा वह अत्यन्त गुप्त है परन्तु भक्त, आस्तिक, सेवक, दम्भरहित, अधिकारी पुरुष को कहना चाहिये अतः मैं सब कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ यह आख्यान सत्कीर्ति, पुण्य, यश, सपुत्र का दाता, राजा को वश में कराने वाला है और दरिद्रता को नाश करनेवाला एवं बड़े २ पुण्यात्माओं के

श्रीपुरुषोत्तम बोले। हे विष्णो! आपने बड़ा अच्छा किया जो मलमास को लेकर यहाँ आये इससे आप लोक में कीर्ति पावेंगे ॥ ५ ॥ आपने जो इस अधिमास को स्वीकार किया वह हमको भी स्वीकार है अतः इसको हम अपने समान सर्वोपरि करेंगे ॥ ६ ॥ गुणों से, कीर्ति के अनुभाव से, षड़ैश्वर्य से, पराक्रम से, भक्तों को वर देने से और भी जो मेरे

समीचीनं कृतं विष्णो यदत्रागतवान् भवान् ॥ मलमासं करे कृत्वा लोके कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ ५ ॥
यस्त्वयोरीकृतो जीवःस मयैवोररीकृतः ॥ अत एनं करिष्यामि सर्वोपरि मया समम् ॥ ६ ॥
गुणैःकीर्त्याऽनुभावेन षड्भगैश्च पराक्रमैः ॥ भक्तानां वरदानेन गुणैरन्यैश्च मामकैः ॥ ७ ॥
अहमेतैर्यथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ तथाऽयमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥
अस्मै समर्पिताः सर्वे ये गुणा मयि संस्थिताः ॥ पुरुषोत्तमेति मन्नाम प्रथितं लोकवेदयोः ॥ ९ ॥
तदप्यस्मै मया दत्तं तव तुष्ट्यै जनार्दन ॥ अहमेवास्य सञ्जातः स्वामी च मधुसूदन ॥ १० ॥ एत-
न्नाम्ना जगत्सर्वं पवित्रं च भविष्यति ॥ मत्सादृश्यमुपागम्य मासानामधिपो भवेत् ॥ ११ ॥ जग-

गुण हैं, उनसे मैं पुरुषोत्तम जैसे लोक में प्रसिद्ध हूँ वैसे ही यह मलमास भी लोकों में पुरुषोत्तम करके प्रसिद्ध होगा ॥ ७-८ ॥ मेरे में जितने गुण हैं वे सब आज से मैंने इसे दिये। 'पुरुषोत्तम' जो मेरा नाम लोक तथा वेद में प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह भी आपको प्रसन्नता के अर्थ आज मैंने इसे दिया। हे मधुसूदन! आज से मैं इस अधिमास का स्वामी भी हुआ ॥ १० ॥ इसके 'पुरुषोत्तम' इस नाम से सब जगत् पवित्र होगा। मेरी समानता पाकर यह अधिमास सब

मासों का राजा होगा ॥ ११ ॥ यह अधिमास जगत्पूज्य एवं जगत् से वन्दना करवाने के योग्य होगा। इसकी पूजा और व्रत जो करेंगे उनके दुःख और दरिद्रता का नाश होगा ॥ १२ ॥ चैत्रादि सब मास सकाम हैं इसको हमने निष्काम किया है। इसको हमने अपने समान समस्त प्राणियों को मोक्ष देनेवाला बनाया है ॥ १३ ॥ जो प्राणी

त्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति ॥ पूजकानां च सर्वेषां दुःखदारिद्र्यखण्डनः ॥१२॥ सर्वे मासाः सकामाश्च निष्कामोऽयं मया कृतः ॥ मोक्षदः सर्वलोकानां मत्तुल्योऽयं मया कृतः ॥१३॥ अकामः सर्वकामो वा योऽधिमासं प्रपूजयेत् ॥ कर्माणि भस्मसात्कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयम् ॥ १४ ॥ यदर्थं च महाभागा यतिनो ब्रह्मचारिणः ॥ तपस्यन्ति महात्मानो निराहारा दृढव्रताः ॥ फलपत्रानिलाहाराःकामक्रोधविवर्जिताः ॥ जितेन्द्रियचयाःसर्वे प्रावृट्काले निराश्रयाः ॥ १६ ॥ शीतातपसहाश्चैव यतन्ते गरुड़ध्वज ॥ तथापि नैव मे यान्ति परमं

सकाम अथवा निष्काम होकर अधिमास का पूजन करेगा वह कर्मों को भस्म कर निश्चय मुझको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ जिस परम पद प्राप्ति के लिए बड़े भाग्यवाले यति, ब्रह्मचारी लोग तप करते हैं और महात्मा लोग निराहार व्रत करते हैं एवं दृढ़ व्रती लोग फल, पत्ता वायु भक्षण कर रहते हैं और काम, क्रोध रहित जितेन्द्रिय जो रहते हैं वे सब और वर्षा काल में मैदान में रहनेवाले, जाड़े में शीत, गरमी में धूप सहन करने वाले—यत्न करते हैं, हे गरुड़ध्वज! तब भी वे मेरे अव्यय परम पद को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १५–१७ ॥ परन्तु पुरुषोत्तम के भक्त एक मास के ही व्रत से बिना

मेरे अव्यय परम पद को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १५–१७ ॥ परन्तु पुरुषोत्तम के भक्त एक मास के ही व्रत से बिना परिश्रम जरा, मृत्यु रहित उस परम पद को पाते हैं ॥ १८ ॥ यह अधिमासव्रत सम्पूर्ण साधनों में श्रेष्ठ साधन है और समस्त कामनाओं के फल की सिद्धि को देनेवाला है। अतः इस पुरुषोत्तम का व्रत करो ॥ १९ ॥ खेत में बोये हुए

पदमव्ययम् ॥ १७ ॥ पुरुषोत्तमस्य भक्तास्तु माससमात्रेण तत्पदम् ॥ अनायासेन गच्छन्ति जरामृत्युविवर्जितम् ॥ १८ ॥ सर्वसाधनतः श्रेष्ठः सर्वकामार्थसिद्धिदः ॥ तस्मात् संसेव्यतामेष मासोऽयं पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ सीतानिक्षिप्तबीजानि वर्धन्ते कोटिशो यथा ॥ तथा कोटिगुणं पुण्यं कृतं मे पुरुषोत्तमे ॥ २० ॥ चातुर्मास्यादिभिर्यज्ञैः स्वर्गं गच्छन्ति केचन ॥ तत्रत्यं भोगमासाद्य पुनर्गच्छन्ति भूतलम् ॥ २१ ॥ विधिवत् सेवते यस्तु पुरुषोत्तममादरात् ॥ कुलं स्वकीयमुद्धृत्य मामेवैष्यत्यसंशयम् ॥२२॥ मामुपेतोऽत्रसंसारं जन्ममृत्युभयाकुलम् ॥ आधिव्याधिजराग्रस्तं न पुनर्याति मानवः ॥ २३ ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं

बीज जैसे करोड़ों गुणा बढ़ते हैं वैसे ही मेरे पुरुषोत्तम मास में किया हुआ पुण्य करोड़ों गुणा अधिक होता है ॥ २० ॥ कोई चातुर्मास्यादि यज्ञ करने से स्वर्ग में जाते हैं परन्तु वह भी भोगों को भोग कर फिर पृथ्वी पर आते हैं ॥ २१ ॥ और जो पुरुष आदर से विधिपूर्वक अधिमास का व्रत करता है वह तो अपने कुल भर का उद्धार कर मेरे में मिल जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ मुझको प्राप्त होकर प्राणी फिर जन्म, मृत्यु, भय से युद्ध एवं आधि, व्याधि,

जरा में ग्रस्त संसार में नहीं जाता है ॥ २३ ॥ 'जहां जाकर फिर पतन नहीं होता' सो मेरा परम धाम है, ऐसा जो वेदों का वचन है वह सत्य है अतः असत्य कैसे हो सकता है ? ॥ २४ ॥ यह अधिमास और इसका स्वामी मैं ही हूं और मैंनेही इसे बनाया है और 'पुरुषोत्तम' जो मेरा यह नाम है सो भी मैंने इसे दे दिया है ॥२५॥ अतः इसकी और

मम ॥ इतिच्छन्दोवचः सत्यमसत्यं जायते कथम् ॥ २४ ॥ एतन्मासाधिपश्चाहं मयैवायं प्रतिष्ठितः ॥ पुरुषोत्तमेति मन्नाम तदप्यस्मै समर्पितम् ॥ २५ ॥ तस्मादेतस्य भक्तानां मम चिन्ता दिवानिशम् ॥ तद्भक्तकामनाः सर्वाः पूरणीया मयैव हि ॥ २६ ॥ कदाचिन्मम भक्तानामपराधोऽधिगण्यते ॥ पुरुषोत्तमभक्तानां नापराधः कदाचन ॥ २७ ॥ मदाराधनतो विष्णो मदीयाराधनं प्रियम् ॥ मद्भक्तकामनादाने विलम्बेऽहं कदाचन ॥ २८ ॥ मदीय-मासभक्तानां न विलम्बः कदाचन ॥ मदीयमासभक्ता ये ममैवातीव वल्लभाः ॥ २९ ॥ य एतस्मिन्महामूढा जपदानादिवर्जिताः ॥ सत्कर्मस्नानरहिता देवतीर्थद्विजद्विषः ॥ ३० ॥

अपने भक्तों की मुझे दिनरात चिन्ता रहती है । अपने भक्तों की मनःकामना मैं ही पूर्ण किया करता हूं ॥ २६ ॥ कभी मेरे भक्तों का अपराध भी गणना में आ जाता है परन्तु पुरुषोत्तम मास के भक्तों का अपराध मैं कभी नहीं गिनता ॥ २७ ॥ हे विष्णो ! मेरी आराधना से मेरे भक्तों की आराधना करना मुझे प्रिय है । मेरे भक्तों की कामना

मुझे कभी भी विलम्ब नहीं होता है । मेरे मासके जो भक्त हैं वे मेरे अत्यन्त प्यारे हैं ॥२९॥ जो मनुष्य इस अधिमास

मुझे कभी भी विलम्ब नहीं होता है। मेरे मासके जो भक्त हैं वे मेरे अत्यन्त प्यारे हैं ॥२९॥ जो मनुष्य इस अधिमास में जप, दान नहीं करते वे महामूर्ख हैं जो पुण्य कर्म रहित प्राणी स्नान भी नहीं करते एवं देवता तीर्थ द्विजों से द्वेष करते हैं ॥ ३० ॥ वे दुष्ट अभागी और दूसरे के भाग्य से जीवन चलानेवाले होते हैं ॥ जिस प्रकार खरगोश के सींग कदापि नहीं होते वैसे ही अधिमास में स्नानादिक न करनेवालों को स्वप्न में भी सुख प्राप्ति नहीं होता है ॥ ३१ ॥

जायन्ते दुर्भगा दुष्टाः परभाग्योपजीविनः ॥ न कदाचित्सुखं तेषां स्वप्नेऽपि शशशृङ्गवत् ॥३१॥
तिरस्कुर्वन्ति ये मूढा मलमासं मम प्रियम् ॥ नाचरिष्यन्ति ये धर्मं ते सदा निरयालयाः ॥ ३२ ॥
पुरुषोत्तममासाद्य वर्षे वर्षे तृतीयके ॥ नाचरिष्यन्ति धर्मं ये कुम्भीपाके पतन्ति ते ॥३३॥
इह लोके महद्दुःखं पुत्रपौत्रकलत्रजम् ॥ प्राप्नुवन्ति महामूढा दुःखदावानलस्थिताः ॥ ३४ ॥
ते कथं सुखमेधन्ते येषामज्ञानतो गतः ॥ श्रीमान् पुण्यतमो मासो मदीयः पुरुषोत्तमः ॥३५॥

जो मूर्ख मेरे प्रिय मलमास का तिरस्कार करते हैं और मलमास में धर्माचरण नहीं करते वे सदा नरकवासी होते हैं ॥ ३२ ॥ प्रति तीसरे वर्ष पुरुषोत्तम मास प्राप्त होने पर जो प्राणी धर्म नहीं करते वे कुम्भीपाक नरक में गिरते हैं ॥ ३३ ॥ और इस लोक में दुःख रूप अग्नि में बैठे स्त्री, पुत्र, पौत्र आदिकों से उत्पन्न बड़े भारी दुःखों को भोगते हैं ॥ ३४ ॥ और जिन प्राणियों को यह मेरा पुण्यतम पुरुषोत्तम मास अज्ञान से व्यतीत हो जाय वे प्राणी कैसे सुखों को

भोग सकते हैं ॥ ३५ ॥ जो भाग्यशालिनी स्त्रियाँ सौभाग्य और पुत्रसुख चाहन की इच्छा से अधिमास में स्नान, दान, पूजनादि करती हैं ॥ ३६ ॥ उन्हें सौभाग्य, समस्त सम्पत्ति और पुत्रादि यह अधिमास देता है । जिनका यह मेरे नामवाला पुरुषोत्तम मास दानादि से रहित बीत जाता है ॥ ३७ ॥ उनके अनुकूल मैं नहीं रहता और न उन्हें

याः स्त्रियः सुभगाः पुत्रसुखसौभाग्यहेतवे ॥ पुरुषोत्तमे करिष्यन्ति स्नानदानार्चनादिकम् ॥ ३६ ॥ तासां सौभाग्यसम्पत्तिसुखपुत्रप्रदो ह्यहम् ॥ यासां मासो गतः शून्यो मन्नामा पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥ न तासामनुकूलोऽहं न सुखं स्वामिजं भवेत् ॥ भ्रातृपुत्रधनानां च सुखं स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ॥ ३८ ॥ तस्मात् सर्वात्मना सर्वैः स्नानपूजाजपादिकम् ॥ विशेषेण प्रकर्तव्यं दानं शक्त्यनुसारतः ॥ ३९ ॥ येनाऽहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे ॥ धनपुत्रसुखं भुक्त्वापश्चाद्गोलोकवासभाक् ॥ ४० ॥ ममाज्ञया जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति मामकम् ॥ सर्वेषामपि मासानामुत्तमोऽयं मया कृतः ॥ ४१ ॥ अतस्त्वमधिमासस्य चिन्तां त्यक्त्वा

पतिसुख ही प्राप्त होता है, भाई, पुत्र, धनों का सुख तो उसे स्वप्न में भी दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ अतः विशेष करके सब प्राणियों को अधिमास में स्नान, पूजा, जप आदि और विशेष करके शक्ति के अनुसार दान आवश्यक कर्तव्य है ॥३९॥ जो मनुष्य इस पुरुषोत्तम मास में भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करते हैं वे धन, पुत्र और अनेक सुखों को भोग कर पीछे

इसे बनाया ॥ ४१ ॥ इसलिये अधिमास की चिन्ता त्याग कर [illegible] आप इस अतुलनीय पुरुषोत्तम मास का

इसे बनाया ॥ ४१ ॥ इसलिये अधिमास की चिन्ता त्याग कर हे रमापते ! आप इस अतुलनीय पुरुषोत्तम मास को साथ लेकर अपने वैकुण्ठ में जाओ ॥ ४२ ॥ श्रीनारायण बोले। इस प्रकार भगवान् कृष्ण के मुख से रसिक वचन

रमापते ॥ गच्छ वैकुण्ठमतुलं गृहीत्वा पुरुषोत्तमम् ॥ ४२ ॥ श्रीनायराण उवाच ॥ इति रसिकवचो निशम्य विष्णुः प्रबलमुदा परिगृह्य मासमेनम् ॥ नवजलदरुचं प्रणम्य देवं झटिति जगाम निजालयं खगेन ॥ ४३ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादेऽधिमासस्यैश्वर्यप्राप्तिर्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सुनकर विष्णु, परम प्रसन्नतापूर्वक इस मलमास को साथ लेकर और नूतन जलधर के समान 'श्याम को प्रणाम कर शीघ्र गरुड़ पर सवार हो वैकुण्ठ के प्रति जाते भए ॥ ४३ ॥

इति श्री बृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत बोले । हे तपोधनाः ! विष्णु और श्रीकृष्ण के संवाद को सुन कर सन्तुष्टमन नारद, नारायण से पुनः प्रश्न करने लगे ॥ १ ॥ नारद बोले । हे प्रभो ! जब विष्णु वैकुण्ठ चले गये तब फिर क्या हुआ । सो कहिये । आदि पुरुष कृष्ण और हरिसुत का जो संवाद है वह सब प्राणियों का हितकर है ॥ २ ॥ इस प्रकार प्रश्न सुन फिर भगवान्

सूत उवाच ॥ नारदः कृतवान् प्रश्नं पुनरेव तपोधनाः ॥ विष्णुश्रीकृष्णसंवादं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ वैकुण्ठं गतवति रुक्मिणीशे किं जातं तदनुवद प्रभो मे ॥ वृत्तान्तं हरिसुतकृष्णयोश्च सर्वेषां हितकरमादिपुंसोः ॥ २ ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो भगवान् बदरीपतिः ॥ उवाच पुनरेवामुं जगदानन्ददं बृहत् ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथ श्रीरुक्मिणीनाथो वैकुण्ठं गतवान् मुदा ॥ तत्र गत्वाऽधिमासं तं वासयामास नारद ॥ ४ ॥ तत्रत्यवसतिं प्राप्य मोदमानोऽभवत्तदा ॥ मासानामधिपो भूत्वा रमते विष्णुना सह ॥ ५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु मलमासं वरं प्रभुः ॥ विधाय मनसा तुष्टो बभूव प्रकृतिप्रियः ॥ ६ ॥

बदरीनारायण जगत् को आनन्द देनेवाला बृहत् आख्यान कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले । तदनन्तर विष्णु बड़े प्रसन्न हो कर वैकुण्ठ गये और वहाँ जाकर हे नारद ! अधिमास को अपने पासही बसा लिया ॥ ४ ॥ अधिमास वैकुण्ठ

में मलमास को श्रेष्ठ बनाकर विष्णु मन से सन्तुष्ट हुए ॥ ६ ॥ हे मुने ! अनन्तर भक्तों के ऊपर कृपा करनेवाले भगवान्

में मलमास को श्रेष्ठ बनाकर विष्णु मन से सन्तुष्ट हुए ॥ ६ ॥ हे मुने ! अनन्तर भक्तों के ऊपर कृपा करनेवाले भगवान् युधिष्ठिर और द्रौपदी की ओर देखते हुए, कृपा करके अर्जुन से यह बोले ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण बोले । हे राजशार्दूल ! हमको मालूम होता है कि तपोवन में आकर आप लोगों ने दुःखित होने के कारण पुरुषोत्तम मास का आदर (व्रत) नहीं

अथार्जुनमुवाचेदं भगवान् भक्तवत्सलः ॥ युधिष्ठिरं च पाञ्चालीं निरीक्षन् कृपया मुने ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ जानेऽहं राजशार्दूल तपोवनमुपागतैः ॥ भवद्भिर्दुःखसंमग्नैर्नादृतः पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ वृन्दावनकलानाथवल्लभः पुरुषोत्तमः ॥ प्रमादाद्गतवान् मासो भवतां काननौकसाम् ॥ ९ ॥ युष्माभिर्नैव विज्ञातो भयद्वेषसमन्वितैः गाङ्गेयद्रोणकर्णेभ्यो भयसन्त्रस्तमानसैः ॥ १० ॥ कृष्णद्वैपायनादाप्तविद्याराधनतत्परे ॥ इन्द्रकीलं गतवति बीभत्सौ रणशालिनि ॥ ११ ॥ तद्वियोगपरिक्लिष्टैर्न ज्ञातः पुरुषोत्तमः ॥ युष्माभिः किं प्रकर्तव्यमदृष्टमवलम्ब्यताम् ॥ १२ ॥ अदृष्टं यादृशं पुंसां तादृशं भासते सदा ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यम-

किया ॥ ८ ॥ वृन्दवन की शोभा के नाथ भगवान् का प्रियपात्र पुरुषोत्तममास आप वनवासियों के प्रमाद से व्यतीत हो गया ॥ ९ ॥ भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण के भय से संत्रस्तमन आप सब लोगों ने भय और द्वेष से युक्त होने के कारण प्राप्त पुरुषोत्तम मास का स्मरण नहीं किया ॥ १० ॥ कृष्णद्वैपायन व्यासदेव से प्राप्त विद्या के आराधन में तत्पर रणवीर अर्जुन के इन्द्रकील पर्वत पर चले जाने पर ॥ ११ ॥ उसके वियोग से दुखित आप लोगों ने पुरुषोत्तममास को नहीं जाना अब यदि

आप यह पूछें कि हम क्या करें ? तो मैं यही कहूँगा कि भाग्य का अवलम्बन करो ॥ १२ ॥ पुरुषों का जैसा अदृष्ट होता है वैसा ही सदा भासता है। भाग्य से उत्पन्न जो फल है वह अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥ १३ ॥ सुख, दुःख, भय, कुशलता इत्यादि भाग्यानुसार ही मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, अतः अदृष्ट पर विश्वास रखनेवाले आप लोगों को अदृष्ट ही पर निर्भर रहना चाहिये ॥ १४ ॥ अब इसके बाद आप लोगों के दुःख का दूसरा कारण और बड़ा आश्चर्यजनक

दृष्टजनितं फलम् ॥ १३ ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेममदृष्टात् प्राप्यते जनैः ॥ तस्माददृष्टनिष्ठैश्च भवद्भिः स्थीयतां सदा ॥ १४ ॥ अथापरं प्रवक्ष्यामि भवतां दुःखकारणम् ॥ सेतिहासं महाराज श्रूयतां मन्मुखाद्धो ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—पाञ्चालीयं महाभागा पूर्वजन्मनि सुन्दरी ॥ मेधाविद्विजमुख्यस्य पुत्री जाता सुमध्यमा ॥ १६ ॥ कालेन गच्छता राजन् सञ्जाता दशवार्षिकी ॥ रूपलावण्यललिता नयनापाङ्गशालिनी ॥ १७ ॥ चातुर्यगुणसम्पन्ना पितुरेकैव पुत्रिका ॥ वल्लभातीव तेनेयं चतुरा गुणसुन्दरी ॥ १८ ॥ लालिता

इतिहास के सहित कहते हैं—हे महाराज! हमारे मुख से कहा हुआ सुनो ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण बोले। यह भाग्यशालिनी द्रौपदी पूर्व जन्ममें बड़ी सुन्दरी मेधावी ऋषिके घरमें उत्पन्न हुई थी, समय व्यतीत होनेपर जब १० वर्षकी होकर रजोयोगकी प्राप्त तब हुई हेराजन्! रूप और लावण्यसे युक्त अति सुन्दरी नयन कटाक्षशालिनी ॥ १६–१७ ॥ चातुर्य गुणसे युक्त पिताकी एकमात्र

तरह इस मानो कभी भी झिड़की नहीं ...

तरह इस मानी कभी भी झिड़का नहीं। यह भी साहित्यशास्त्र में पण्डिता और नीतिशास्त्र में [illegible]
इसकी माता इसकी छोटी अवस्था में ही मर गयी थी, पिता ने ही प्रसन्नतापूर्वक इसे पाला था। पास में रहनेवाली अपनी सखी के पुत्र पौत्रादि सुख को देख इसको भी स्पृहा हुई ॥ २० ॥ और तब यह विचारने लगी कि मुझको भी यह सुख क्या होंगे ? गुण और भाग्य का निधि, सुख देनेवाला पति और सत्पुत्र कैसे होंगे ? ॥ २१ ॥ इस प्रकार

पुत्रवन्नित्यं न कदाचित् प्रलम्भिता ॥ साहित्य-शास्त्रकुशला नीतावपि विशारदा ॥१९॥ तन्माता स्वर्गतापूर्वं पित्रा सा पोषिता मुदा ॥ पार्श्वस्थालिसुखं दृष्ट्वा पुत्रपौत्रसुखस्पृहा ॥२०॥ तर्कयन्ती तदा बाला मामेवं च कथं भवेत् ॥ गुणभाग्यनिधिर्भर्ता सुखदः सत्सुताः कथम् ॥२१॥ एवं मनोरथं चक्रे दैवेन ध्वंसितं पुरा ॥ किं कृत्वा किं विदित्वाऽहं कमुपास्ये सुरेश्वरम् ॥२२॥ किं वा मुनिमुपातिष्ठे किं वा तीर्थमुपाश्रये ॥ मम भाग्यं कथं सुप्तं भर्ता कोऽपि न वाञ्छति ॥ २३ ॥ पण्डितोऽपि पिता मूढो मम भाग्यवशादहो ॥ विवाहकाले

मनोरथ विचारती हुई और सोचने लगी कि पहले मेरा विवाह उपस्थित था, परन्तु भाग्य ने बिगाड़ दिया अब क्या करने से अथवा किसको जानने से एवं किस देवता की उपासना करने से ॥ २२ ॥ या किसी मुनि की शरण में जाने से अथवा किसी तीर्थ का आश्रय लेने से मनोकामना पूर्ण होगी। मेरा भाग्य कैसे सो गया है, क्योंकि कोई भी पति मुझको ग्रहण नहीं करता है ॥ २३ ॥ पण्डित भी मेरा पिता मेरे भाग्य से मूर्ख हो गया है बड़ा आश्चर्य है विवाह का समय उपस्थित

होने पर भी मेरे समान वर को पिता ने नहीं दिया ॥ २४ ॥ मैं अपनी सहेलियों के बीच में अध्यक्षा हूँ, परन्तु कुमारी होने के कारण पति दुःख से पीड़ित हूँ। जैसे मेरी सखियाँ पतिसुख को भोगनेवाली हैं वैसे मैं नहीं हूँ ॥ २५ ॥ मेरी भाग्यवती माता क्यों पहिले मर गयी। इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल कन्या, मनोरथ रूप समुद्र के ॥ २६ ॥ जल में

सम्प्राप्ते न दत्ता सदृशे वरे ॥ २४ ॥ अध्यक्षाहं सखीमध्ये कुमारी दुःखपीडिता ॥ नाहं स्वामिसुखाभिज्ञा यथा चालिगणो मम ॥ २५ ॥ मम भाग्यवती माता कथं स्वर्गं गता पुरा ॥ एवं चिन्ताकुला बाला मनोरथमहोदधौ ॥ २६ ॥ निमग्ना मोहसलिले शोकमोहोर्मिपीडिता ॥ मेधावी ऋषिराजोऽसौ विचचार महीतले ॥ २७ ॥ कन्यादाननिमित्तं च विचिन्वन् सदृशं वरम् ॥ तादृशं वरमप्राप्य निराशः स्वमनोरथे ॥ २८ ॥ सुतास्वकीयभाग्याभ्यां भग्नसङ्कल्पपञ्जरः ॥ अवाप दैवयोगेन ज्वरं तीव्रं सुदारुणम् ॥ २९ ॥ स्फुटत्सर्वाङ्गसम्भिन्नतापज्वालासमाकुलः ॥ श्वासोच्छ्वाससमायुक्तो महादारुणमूर्च्छया ॥ ३० ॥

निमग्न शोकमोहरूप लहरों से पीड़ित होती हुई और यह मेधावी ऋषि पृथवी भर पर विचरण करते हुए ॥ २७ ॥ कन्यादान के लिये कन्या के समान वर खोजने के लिये निकले, परन्तु कन्या के अनुरूप वर न मिलने से अपने मनोरथ में निराश हुए ॥ २८ ॥ कन्या के और अपने भाग्य से कन्यादानरूप सङ्कल्प के न होने से दैवयोग के कारण [illegible]
ज्वर की ज्वाला से व्याकुल हुए [illegible] मदिरा पान कर उन्मत्त की तरह

ज्वर की ज्वाला से व्याकुल हुए श्वासोच्छ्वास लेते महादारुण मूर्च्छा से ॥ ३० ॥ मदिरा पान कर उन्मत्त की तरह पैर लड़खड़ाते भूमि में गिरते पड़ते घर में आये और आते ही पृथ्वी पर गिर गये ॥ ३१ ॥ भय से विह्वल कन्या जब तक पिता को देखने आवे कि तब तक कन्या को स्मरण करते हुए मेधावी मुनि मरणासन्न हो गये । भाग्य के फलरूप बल से एकाएक काँपने लगे और कन्यादान प्रसङ्ग से उठा हुआ जो महोत्सव था वह जाता रहा ॥ ३२–३३ ॥ तदनन्तर

प्रस्खलन्निपतन्भूमौ मदिरामत्तवद् भृशम् ॥ आगच्छन्नेव भवनं स पपात धरातले ॥३१॥
यावत्सुता समायाता पितरं भयविह्वला ॥ तावन्मुमूर्षुः सञ्जातो भूसुरस्तामनुस्मरन् ॥३२॥
भाविनार्थबलेनैव सहसा जातवेपथुः ॥ कन्यादानप्रसङ्गोत्थमहोत्सवविवर्जितः ॥३३॥ अथ प्राचीनगार्हस्थ्यकृतधर्मपरिश्रमात् ॥ संसारवासनां त्यक्त्वा हरौ चित्तमधारयत् ॥३४॥ सस्मार श्रीहरिं तूर्णं मेधावी पुरुषोत्तमम् ॥ इन्दीवरदलश्यामं त्रिभङ्गललिताकृतिम् ॥ ३५ ॥ रासेश राधारमण प्रचण्डदोर्दण्डदूराहतनिर्जरारे ॥ अत्युग्रदावानलपानकर्तः कुमारिकोत्तारितव

पहिले किये हुए गृहस्थाश्रमधर्म के परिश्रम के प्रभाव से संसारवासना को त्याग कर भगवान् में चित्त को लगाते हुए ॥३४॥ वो मुमूर्षु मेधावी ऋषि शीघ्र ही नीलकमल के समान श्याम, त्रिभङ्ग सुन्दर आकृतिवाले श्रीपुरुषोत्तम हरि का स्मरण करने लगे ॥ ३५ ॥ हे रास के स्वामी ! हे राधारमण ! हे प्रचण्ड भुजदण्ड से दूर से ही निर्जरारि (देवताओं के शत्रु) दैत्य को मारनेवाले ! हे अति उग्र दावानल (अग्नि) को पान कर जानेवाले ! हे कुमारी गोपिकाओं के

उतारे हुए वस्त्रों को हरण करनेवाले ! ॥ ३६ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे मुरारे ! हे राधेश ! हे दामोदर ! हे दीननाथ ! मुझ संसार में निमग्न की रक्षा कीजिये। इन्द्रियों के ईश्वर आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मेधावी के वचनों को दूर से ही सुनकर भगवान् के दूत चटपट मुकुन्द लोक से आते हुए और उस मरे हुए मुनि को हाथ पकड़ कर ईश्वर के चरणकमलों में ले आये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अपने पिता के प्राणों को निकलते देख वह

स्त्रहर्तः ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे राधेश दामोदर दीननाथ ॥ मां पाहि संसार-समुद्रमग्नं नमो नमस्ते हृषिकेश्वराय ॥ ३७ ॥ इति मुनिवचनं निशम्य दूराज्झटिति ययुश्च चरा मुकुन्दलोकात् ॥ तदनुमृतमुनिं करे गृहीत्वा चरणसरोरुहमीयुरीश्वरस्य ॥ ३८ ॥ प्राणोत्क्रमणमालोक्य हाहेति सा सुताऽरुदत् ॥ अङ्के कृत्वा पितुर्देहं विललाप सुदुःखिता ॥ ३९ ॥ कुररीव चिरं सा तु विलप्य भृशदुःखिता ॥ उवाच पितरं बाला जीवन्तमिव विह्वला ॥ ४० ॥ बालोवाच—हा हा पितः कृपासिन्धो आत्मजानन्ददायक ॥ कस्याङ्के मां निधायाऽद्य गतो-ऽसि वैष्णवं पुरम् ॥ ४१ ॥ पितृहीनां च मां तात को वा सम्भावयिष्यति ॥ न भ्राता नैव

कन्या हाय-हाय करके रोने लगी और पिता के शरीर को अपनी गोद में रखकर अति दुःख से विलाप करने लगी ॥ ३९ ॥ चील्ह पक्षी की तरह बहुत देर तक विलाप करके अत्यन्त दुःख से विह्वल हुई और पिता को जीवित की तरह समझ कर बोली ॥ ४० ॥ बाला बोली। हाय हाय हे पितः ! हे कृपासमुद्र ! हे अपनी कन्या को सुख देने वाले ! मुझे आज किसके पास छोड़ करके आप वैकुण्ठ सिधारे हैं ॥ ४१ ॥ [illegible] की चिन्ता है तात ! कौन

भाई, बन्धु, माता आदि कोई भी नहीं है । मेरे भोजन, वस्त्र की चिन्ता हे तात ! कौन करेगा ? कैसे मैं रहूँगी, इस शून्य, वेदध्वनि रहित ।। ४२–४३ ।। आपके निर्जन वन की तरह घर में हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं मर जाऊँगी ऐसे जीने में क्या रक्खा है ।। ४४ ।। हे कन्या में प्रेम रखनेवाले पिता ! हे तात विवाहविधि बिना

बन्धुश्च न मे माता तपस्विनी ।। ४२ ।। भोजनाच्छादने चिन्तां को मे तात करिष्यति ।। कथं तिष्ठाम्यहं शून्ये वेदध्वनिविवर्जिते ।। ४३ ।। आश्रमे ते मुनिश्रेष्ठ अरण्य इव निर्जने ।। अतः परं मरिष्यामि जीवने किं प्रयोजनम् ।।४४।। असम्पाद्यैव वैवाहं विधिं दुहितृवत्सल ।। क्व गतोऽसि पितस्तात इहागच्छ तपोनिधे ।। ४५ ।। वाणीं वद सुधाकल्पां कथं तूष्णीमवस्थितः ।। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे तात चिरं सुप्तोऽसि साम्प्रतम् ।। ४६ ।। इत्युक्त्वाऽश्रुमुखी बाला विललाप मुहुर्मुहुः ।। मुक्तकण्ठं रुरोदार्ता कुररीव सुदुःखिता ।। ४७ ।। तत्सुतारोदनं श्रुत्वा विप्रास्तद्वनवासिनः ।। अतीव करुणं को वा रोदित्यस्मिंस्तपोवने ।।४८।। मेधाऋषेः सुता-

किये ही आप कहाँ चले गये ? हे तपोनिधे अब यहाँ आइये ।।४५।। और अमृत के समान मधुर भाषण कीजिये क्यों अब चुप हो गये हो ? हे तात ! बहुत देर से आप सोये हुए हैं अब उठिये ।।४६।। ऐसा कहकर आँसू बहाती हुई घड़ी घड़ी कन्या, विलाप करने लगी और पिता के मरने में दुःखित हुई आर्ता चिल्ह पक्षी की तरह मुक्तकण्ठ से रोने लगी ।।४७।। उस लड़की का रोदन सुन उस वन में रहनेवाले ब्राह्मण आपस में कहने लगे कि इस तपोवन में अत्यन्त करुण शब्द से कौन रो रहा है ।।४८।। ऐसा कह कर

सब तपस्वी चुप होकर 'यह मेधावी ऋषि की कन्या का शब्द है' ऐसा निश्चय कर संभ्रमयुक्त हुए हाहाकार करते मेधावी के घर में आये ॥४९॥ और वहाँ आकर सबने कन्या के गोद में मरे हुए मेधावी ऋषि को देखा और देख कर उस वन के रहनेवाले सब मुनि भी रोने लगे ॥५०॥ और कन्या की गोद से शव को लेकर शिवमन्दिर के पास श्मशान पर गये। वहाँ काष्ठ की चिता लगाकर अन्त्येष्टि

शब्दं शनैर्निश्चित्य तापसाः ॥ ससम्भ्रमाः समाजग्मुर्हाहाकारसमन्विताः ॥ ४९ ॥ आगत्य ददृशुः सर्वे सुताङ्कस्थं मृतं मुनिम् ॥ ततः संरुरुदुः सर्वे मुनयः काननौकसः ॥५०॥ सुतोत्सङ्गाच्छवं नीत्वा श्मशाने शिवसन्निधौ ॥ अन्त्येष्टिं विधिना कृत्वा तेऽदहन काष्ठवेष्टितम् ॥५१॥ ततः कन्यां समाश्वास्य सर्वे ते स्वगृहान् ययुः ॥ कन्या धैर्यं समालम्ब्य यथाशक्त्यकरोद्व्ययम् ॥५२॥ इत्यौर्ध्वदेहिकविधिं प्रणिधाय पित्र्यं पुत्री निवासमकरोच्च तपोवनेऽस्मिन् ॥ सा विव्यथे पितृजदुःखदवाग्निदग्धा रम्भेव वत्समरणात् सुरभीव बाला ॥५३॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कुमारीविलापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

विधि से उसका दाह करते हुए ॥५१॥ तदनन्तर कन्या को समझाकर सब ऋषि अपने २ घर गये। इधर कन्या भी धैर्य धारण कर यथा शक्ति क्रिया के लिये द्रव्य खर्च करती हुई ॥५२॥ इस प्रकार पिता की मरण-क्रिया को करके कन्या, इसी तपोवन में निवास करने लगी और पिता के मरणरूप दुःखाग्नि से जली हुई एवं बछड़े के मर जाने से जैसे गौ चिल्लाती है और खाती नहीं दुर्बल

सूत बोले। तदनन्तर विस्मयान्वित नारद मुनि ने मेधावी ऋषि की कन्या का अद्भुत वृत्तान्त पूछा ॥ १ ॥ नारद बोले। हे मुने! उस तपोवन में मेधावी की कन्या ने बाद में क्या किया और किस मुनिश्रेष्ठ ने उसके साथ विवाह किया ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले। अपने पिता को स्मरण करते २ और बराबर शोक करते २ उस घर में कुछ काल उस

सूत उवाच—ततस्तं विस्मयाविष्टः पप्रच्छ नारदो मुनिः ॥ मेधाविद्विजवर्यस्य सुता-वृत्तान्तमद्भुतम् ॥ १ ॥ नारद उवाच—मुने मुनिसुता तत्र किं चकार तपोवने ॥ को वा मुनिवरस्तस्याः पाणिग्रहमचीकरत् ॥२॥ श्रीनारायण उवाच—निवसन्त्यास्ततस्तस्याः कियान् कालो विनिर्गतः ॥ स्मारं स्मारं स्वपितरं शोचन्त्याश्च मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥ शून्यस-द्मनि संविष्टां यूथभ्रष्टां मृगीमिव ॥ गलद्बाष्पौघनयनां ज्वलद्धृदयपङ्कजाम् ॥४॥ विनिः श्वासपरां दीनां संरुद्धामुरगीमिव ॥ चिन्तयन्तीमपश्यन्तीं दुःखपारं कृशोदरीम् ॥ ५ ॥ तामाससाद भगवान् भविष्यद्बलनोदितः ॥ यदृच्छया वने तस्मिन् परमः कोपनो मुनिः ॥६॥

कन्या का व्यतीत हुआ ॥ ३ ॥ यूथ से भ्रष्ट हुई हरिणी की तरह घबड़ाई हुई, शून्य घर में रहनेवाली, दुःखरूप अग्नि से उठी हुई भाप द्वारा बहते हुए अश्रुनेत्र वाली, जलते हुए हृत्कमल वाली ॥ ४ ॥ दुःख से प्रतिक्षण गरम श्वास लेनेवाली, अतिदीना, घिरी हुई सर्पिणी की तरह अपने घरमें संरुद्ध, अपने दुःख को सोचती और दुःखनिवृत्ति काल को न देखती हुई उस कृशोदरी को ॥ ५ ॥ उसके शुभ भविष्यत् के बल से सान्त्वना देने के लिये उस वन में अपनी इच्छा से ही

परमक्रोधी, जिनको देखने से ही इन्द्र भी त्रसित होते हैं ऐसे, जटा लपेटे, साक्षात् शङ्कर के समान भगवान् दुर्वासा ऋषि आये ॥ ६–७ ॥ हे नारद ! भगवान् कृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे राजेन्द्र ! वह दुर्वासा आये जिसको कि आपकी माता कुन्ती ने बालपन में प्रसन्न किया तब उन सुपूजित महर्षि ने देवताओं को आकर्षण करने वाली विद्या उन्हें दी और हे भूपाल ! जिन्होंने सब देवताओं से नमस्कार किये जानेवाले मुझको भी रुक्मिणी के साथ रथ में बैलों

यद्विलोकनमात्रेण त्रस्येदपि शतक्रतुः ॥ जटाकलापसञ्छन्नः साक्षादिव सदाशिवः ॥ ७ ॥
यस्त्वज्जनन्या राजेन्द्र शैशवेऽतिप्रसादितः॥ त्रिदशाऽऽकर्षिणीं विद्यां ददावस्यै सुपूजितः॥८॥
येनाहमपि भूपाल सर्वदेवनमस्कृतः ॥ रथे संयोजितः साक्षाद्रुक्मिण्या सह नारद ॥ ९ ॥
उभाभ्यां चालिते मार्गे रथे दुर्वाससान्विते ॥ अत्युग्रया तृषा शुष्यत्ताल्वोष्ठपुटयाऽनया ॥१०॥
सूचितोऽहं जलार्थिन्या स्कन्धस्थयुगया पुरा ॥ गच्छन्नेव पदाग्रेण सम्पीड्य वसुधातलम्॥११॥
आनीतवान् भोगवतीं प्रियाप्रेमपरिप्लुतः ॥ सैवोर्ध्वगामिनी भूत्वा तावन्मात्रेण वारिणा ॥१२॥

को जगह जोता ॥ ८–९ ॥ दुर्वासा को बैठाकर खींचते हुए जब हम दोनों मार्ग चलने लगे तब चलते २ मार्ग में अति तीव्र प्यास से सूख गये थे तालु और ओष्ठ जिस रुक्मिणी के ऐसी जल चाहने वाली रुक्मिणी ने जब मुझे सूचित किया तब कन्धे पर रथ की जोत को रखे हुए चलते २ ही पाँव के अग्र भाग से पृथ्वी को दबा कर ॥ १०–११ ॥ रुक्मिणी

जल से ॥ १२ ॥ हे महाराज ! रुक्मिणी की प्यास का मन बुझाया इस प्रकार रुक्मिणी का प्यास बुझाना देखउसी क्षण अग्नि की तरह दुर्वासा क्रोध से जलने लगे ॥ १३ ॥ और प्रलय की अग्नि के समान उठ कर दुर्वासा ने शाप दिया। बोले बड़ा आश्चर्य है हे श्रीकृष्ण ! रुक्मिणी तुमको सदा अत्यन्त प्रिय है ॥ १४ ॥ यतः स्त्री के प्रेम से युक्त तुमने मेरी

न्यवारयन्महाराज रुक्मिणीतृषमुल्बणाम् ॥ तद्दृष्ट्वा तत्क्षणोद्भूतक्रोधेन प्रज्वलन्निव ॥१३॥ प्रलयाग्निरिवोत्तिष्ठन् शशाप कोपनो मुनिः ॥ अहो श्रीकृष्ण तेऽत्यन्तं वल्लभा रुक्मिणी सदा ॥ १४ ॥ यद्भवान् मामवज्ञाय प्रियाप्रेमपरिप्लुतः ॥ पाययामास पानीयं माहात्म्यंदर्शयन् स्वकम् ॥ १५ ॥ दम्पत्योरुभयोरेव वियोगोऽस्तु युधिष्ठिर ॥ इति यो दत्तवान् शापं स एव मुनिसत्तमः ॥ १६ ॥ साक्षाद्रुद्रांशसम्भूतः कालरुद्र इवापरः ॥ अत्रेरुग्रतपःकल्पवृक्षदिव्यफलं महत् ॥ १७ ॥ पतिव्रताशिरोरत्नाऽनुसूयागर्भसम्भवः ॥ दुर्वासानाम मेधावी यथा वै मूर्तिमत्तपः ॥ १८ ॥ नैकतीर्थ जलक्लिन्नजटाभूषितसच्छिराः ॥ तमालोक्य समायान्तं कुमारी

अवज्ञा कर अपना महत्त्व दिखलाते हुए इस प्रकार से उसे पानी पिलाया ॥ १५ ॥ अतः 'तुम दोनों का वियोग होगा' इस प्रकार जिन्होंने शाप दिया था। हे युधिष्ठिर ! वही यह दुर्वासा मुनि हैं ॥ १६ ॥ साक्षाद् रुद्र के अंश से उत्पन्न, महर्षि अत्रि के उग्र तपरूप कल्पवृक्ष के दिव्य फल ॥ १७ ॥ पतिव्रताओं के सिर के रत्न, अनुसूया भगवती के गर्भ से उत्पन्न, अत्यन्त मेधायुक्त दुर्वासा नाम के ऋषि, जैसे तप की ही मूर्ति ॥ १८ ॥ अनेक तीर्थों के जल से भींगी हुई जटा

से जिनका सिर भूषित है ऐसे दुर्वासा ऋषि को आते हुए देखकर कन्या ने शोकसागर से ॥ १९ ॥ निकल कर धैर्य से मुनि के चरणों में वन्दना की। वन्दना करने के बाद जैसे वाल्मीकि ऋषि को जानकी अपने आश्रम में लाई थीं वैसे ही यह भी दुर्वासा को अपने घर में लायी ॥ २० ॥ अर्घ्य, पाद्य और विविध प्रकार के जङ्गली फलों और पुष्पों से

शोकसागरात् ॥ १९ ॥ उन्मज्ज्योत्थाय धैर्येण ववन्दे चरणौ मुनेः ॥ नत्वा स्वाश्रममानीय जानकी वाल्मिकिं यथा ॥ २० ॥ अर्घ्यपाद्यैर्वन्यफलैः पुष्पैश्च विविधैर्मुनिम् ॥ स्वागतम् पृच्छ्य सा बाला पूजयामास सादरम् ॥ ततः सविनया राजन्नुवाच मुनिकन्यका ॥ २१ ॥ बालोवाच—नमस्तेऽस्तु महाभाग अत्रिगोत्रदिवाकर ॥ कुतोऽधिगमनं साधो दुर्भगाया ममाश्रमे ॥ मम भाग्योदयो जातस्तवागमनतो मुने ॥ २२ ॥ अथवा मत्पितुः पुण्यप्रवाह-प्रेरितो भवान् ॥ सम्भावयितुं मामेव ह्यागतो मुनिसत्तम ॥२३॥ भवादृशां पादरजस्तीर्थरूपं

स्वागत के लिये आज्ञा लेकर आदर पूर्वक पूजन कर तदनन्तर हे राजन्! बोली ॥ २१ ॥ कन्या बोली। हे महाभाग! हे ऋषि कुल के सूर्य! आपको नमस्कार है। हे साधो! मेरी अभाग्य के घर में आज आपका शुभागमन कैसे हुआ? हे मुने! आपके आगमन से आज मेरा भाग्योदय हुआ है ॥ २२ ॥ अथवा मेरे पिता के पुण्य के प्रभाव से प्रेरित मुझे

है उस रज को शुभ्र स्पर्श करने वाली का आज जन्म सफल है व्रत सब सफल हैं ॥ २४ ॥ आप ऐसे पुण्यात्मा के जो, मुझे आज दर्शन हुए अतः, आज मेरा उत्पन्न होना और मेरा पुण्य सफल है ॥ २५ ॥ ऐसा कहकर वह कन्या दुर्वासा के सामने चुप-चाप खड़ी हो गयी । तब भगवान् शङ्कर के अंश से उत्पन्न दुर्वासा मुनि मन्द हास्य युक्त यह बोले ॥२६॥

महात्मनान् ॥ स्पृशन्त्याः सफलं जन्म सफलं चाद्य मे व्रतम् ॥ २४ ॥ अद्य मे सफलं पुण्यमद्य मे सफलो भवः ॥ भवादृशा महापुण्या यन्मे दृष्टिपथं गताः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वा च सा बाला तस्थौ तूष्णीं तदग्रतः ॥ सस्मितं मुनिराहेदं दुर्वासाः शङ्करांशजः ॥२६॥ दुर्वासा उवाच—साधु साधु द्विजसुते कुलमभ्युद्धृतं पितुः ॥ मेधाऋषेः सुतपसः फलमेतादृशी सुता ॥ २७ ॥ कैलासादहमागच्छं ज्ञात्वा ते धर्मशीलताम् ॥ त्वदाश्रममनुप्राप्तस्त्वया सम्पूजितोऽस्म्यहम् ॥ २८ गमिष्यामि वरारोहे शीघ्रं बदरिकाश्रमम् ॥ द्रष्टुं नारायणं देवं सनातनमुनीश्वरम् ॥२९॥ तपश्चरन्तमेकाग्रमत्युग्रं लोकहेतवे ॥ बालोवाच—ऋषे त्वद्दर्शनादेव

दुर्वासा बोले—हे द्विज सुते ! तू बड़ी अच्छी है तूने अपने पिता के कुल को तार दिया । यह मेधावी ऋषि के तप का फल है । जो तेरे ऐसी कन्या उत्पन्न हुई ॥ २७ ॥ तेरी धर्म में तत्परता जान कैलास से मैं यहाँ आया और तेरे घर में आय कर तेरे द्वारा मेरा पूजन हुआ ॥ २८ ॥ हे वरारोहे ! मैं शीघ्रही बदरिकाश्रम में सनातन, नारायण, देव, प्राणियों के हित के लिये एकाग्र उग्र तप करते हुए मुनीश्वर के दर्शन करने के अर्थ जाऊँगा । कन्या बोली—हे ऋषे ! आपके

दर्शन-से ही मेरा शोकसागर सूख गया ॥ २९–३० ॥ अब इसके बाद मेरा भाविष्य उज्ज्वल है यतः आपने मुझे सान्त्वना दी, हे मुने ! मेरी उस प्रादुर्भूत बड़ी भारी ज्वाला युक्त दुःख रूप अग्नि को क्या आप नहीं जानते हैं ? हे दया सिन्धो ! हे शङ्कर ! दुःखाग्नि को शान्त करिये । मेरे विचार से हर्ष का कारण मुझे कुछ भी दिखलाई नहीं

शुष्को मे शोकसागरः ॥ ३० ॥ अतः परं शुभं भावि यस्मात् सम्भाविता त्वया ॥ समुद्भूतबृहज्ज्वालदावहव्यभुजं मुने ॥ ३१ ॥ किं न वेत्सि दयासिन्धो तन्निर्वापय शङ्कर ॥ हर्षहेतुर्न मे कश्चिद् दृश्यते सुविचारतः ॥३२॥ न माता न पिता भ्राता यो मे धैर्यं प्रयच्छति ॥ कथङ्कारमहं जीवे दुःखसागरपीडिता ॥ ३३ ॥ यां यां दिशं प्रपश्यामि सा सा शून्या विभाति मे ॥ मम दुःखप्रतीकारं कुरु शीघ्रं तपोनिधे ॥ ३४ ॥ न मां कामयते कश्चित् पाणिग्रहणहेतवे ॥ अतः परं भविष्यामि वृषलीति महद्भयम् ॥ ३५ ॥ तस्मान्न जायते निद्रा

देता ॥ ३१–३२ ॥ मुझको माता, पिता, भाई कोई भी धैर्य देने वाला दीखता नहीं है अतः दुःखसागर से पीड़ित मैं कैसे जी सकती हूँ ॥ ३३ ॥ जिस २ दिशा में मैं देखती हूँ वह २ दिशा मुझे शून्य ही प्रतीत होती है अतः हे तपोनिधे ! मेरे दुःख का निस्तार आप शीघ्र करें ॥ ३४ ॥ मेरे साथ विवाह करने के लिये कोई भी तैयार नहीं होता है इदानीं

आती है और न भोजन में मेरा [illegible] होता है [illegible] ! [illegible] मैं शीघ्रही मरने वाली हूँ यह मेरी इस [illegible]

आती है और न भोजन में मेरी रुचि होती है हे ब्रह्मन् ! अब मैं शीघ्र ही मरने वाली हूँ यह मेरा इस समय निश्चय है ॥ ३६ ॥ ऐसा कह कर आँसू बहाती हुई कन्या दुर्वासा के सामने चुप हो गयी तब दुर्वासा कन्या के दुःख दूर

न रुचिर्भोजने मम ॥ ब्रह्मन् मुमूर्षुरस्म्येव इति मे निश्चयोऽधुना ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखी बाला विरराम तदग्रतः ॥ दुर्वासास्तदुपायार्थं विचारमकरोत्तदा ॥ ३७ ॥ श्रीनारायण उवाच—इति मुनितनयावचो निशम्य बहुलतमा मुनिराड् विचार्य छन्दः ॥ अतिशयकृपया विलोक्य बालां किमपि हितं निजगाद सारभूतम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये दुर्वासस्तपोवनगमनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

होने का उपाय सोचने लगे । श्रीनारायण बोले—इस प्रकार मुनिकन्या के बचन सुन कर और इसका अभिप्राय समझ कर बड़े क्रोधी मुनिराज दुर्वासा ने उस कन्या का कुछ हित विचार पूर्ण कृपा से उसे देखकर सारभूत उपाय बतलाया ॥३८॥

इति श्रीबृहन्नारदीये पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

नारद बोले। हे तपोनिधे! परम क्रोधी दुर्वासा मुनि ने विचार करके उस कन्या को क्या उपदेश दिया सो आप मुझसे कहिये॥ १॥ सूतजी बोले। हे द्विजो! नारद का वचन सुन समस्त प्राणियों का हितकर दुर्वासा का गुह्य वचन बदरीनारायण बोले॥ २॥ श्री नारायण बोले—हे नारद! मेधावी ऋषि की कन्या के दुःख को दूर करने के अर्थ

नारद उवाच—किं विचार्य बृहद्धामा परमः कोपनो मुनिः॥ अब्रवीदृषिकन्यां तां तन्मे ब्रूहि तपोनिधे॥१॥ सूत उवाच – नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच बदरीपतिः॥ दुर्वासोवचनं गुह्यं सर्वेषां हितकृद् द्विजाः॥ २॥ श्रीनारायण उवाच—शृणु नारद वक्ष्येऽहं यदुक्तं मुनिना तदा॥ मेधावितनयादुःखमपनेतुं कृपालुना॥ ३॥ दुर्वासा उवाच—शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत्॥ आख्येयं नैव कस्यापि त्वदर्थं तु विचारितम्॥ ४॥ न विस्तरं करिष्यामि समासेन ब्रवीमि ते॥ इतस्तृतीयः सुभगे मासस्तु पुरुषोत्तमः॥ ५॥ तस्मिन् स्नातो नरस्तीर्थे मुच्यते भ्रूणहत्यया॥ एतत्तुल्यो न कोऽप्यन्यः कार्तिकादिषु

कृपालु दुर्वासा मुनि ने जो कहा वह हम तुम से कहते हैं सुनो॥ ३॥ दुर्वासा बोले। हे सुन्दरि! गुप्त से भी गुप्त उपाय मैं तुझसे कहता हूँ सुन यह विषय किसी से भी कहने योग्य नहीं है तथापि तेरे लिये तो मैंने विचार ही लिया॥४॥ मैं विस्तार पूर्वक न कहकर तुझसे संक्षेप में कहता हूँ। हे सुभगे! इस मास से तीसरा मास जो आवेगा वह पुरुषोत्तम

मासों में इस पुरुषोत्तम मास के बराबर कोई भी नहीं है॥ ६॥ जितने मास तथा पक्ष और पर्व हैं यह सब पुरुषोत्तम

मासों में इस पुरुषोत्तम मास के बराबर कोई भी नहीं है ॥ ६ ॥ जितने मास तथा पक्ष और पर्व है यह सब पुरुषोत्तम मास की सोलहवीं कला के बराबर नहीं हैं ॥ ७ ॥ वेदोक्त साधन और भी जो परमपद प्राप्ति के साधन हैं वे भी इस मास की सोलहवीं कला के समान नहीं हैं ॥ ८ ॥ बारह हजार वर्ष गङ्गास्नान करने से जो फल है वह सिंहस्थ गुरु में

सुन्दरि ॥ ६ ॥ सर्वे मासास्तथा पक्षाः पर्वाण्यन्यानि यानि च ॥ पुरुषोत्तममासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ७ ॥ साधनानि समस्तानि निगमोक्तानि यानि च ॥ मासस्यैतस्य नार्हन्ति कलामपि च षोडशीम् ॥ ८ ॥ द्वादशाब्दसहस्राणि गङ्गास्नानेन यत्फलम् ॥ गोदावरीसकृत्स्नानाद्यत्फलं सिंहगे गुरौ ॥ ६ ॥ तदेव फलमाप्नोति मासे वै पुरुषोत्तमे ॥ सकृत् सुस्नानमात्रेण यत्र कुत्रापि सुन्दरि ॥१०॥ श्रीकृष्णवल्लभो मासो नाम्ना च पुरुषोत्तमः ॥ तस्मिन् संसेविते बाले सर्वं भवति वाञ्छितम् ॥ ११ ॥ तस्मान्निषेवयाशु त्वं मासं तं पुरुषोत्तमम् ॥ मयापि सेव्यते सोऽयं पुरुषोत्तमवन्मुदा ॥ १२ ॥ एकदा भस्मसात्कर्तुमम्बरीषं

गोदावरी पर एक बार स्नान करने से मिलता है ॥ ९ ॥ हे सुन्दरि ! वह फल जहां कहीं भी पुरुषोत्तम मास में एक दफे स्नान मात्र के करने से मिलता है ॥ १० ॥ हे बाले ! यह मास श्रीकृष्ण का अत्यन्त प्यारा है और नाम से भी यह भगवान् का स्मारक है इस मास में पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा, पूजा करने से समस्त कामना सिद्ध होती हैं ॥११॥ अतः उस पुरुषोत्तम मास का तू शीघ्र व्रत कर । पुरुषोत्तम भगवान् की तरह प्रसन्नता पूर्वक मैंने भी इस मास की सेवा

की है ॥ १२ ॥ एक समय क्रोध से मैंने अम्बरीष राजा को भस्म करने के अर्थ कृत्या भेजी थी सो हे बाले ! तब हरि ने जलता हुआ सुदर्शन चक्र ॥ १३ ॥ मुझको ही भस्म करने के लिये उसी समय मेरे पास भेजा तब पुरुषोत्तम मास के व्रत प्रभाव से ही वह चक्र हट गया ॥ १४ ॥ हे सुन्दरि ! वह चक्र त्रैलोक्य को भस्म करने की सामर्थ्य रखने वाला

क्रुधा मया ॥ मुक्ता कृत्या तदा बाले सुनाभं हरिणा ज्वलत् ॥ १३ ॥ मामेव भस्मसात्कर्तुं तदानीं प्रेरितं मयि ॥ पुरुषोत्तमव्रतादेव तच्चक्रं संन्यवर्तत ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं समर्थं तच्च सुन्दरि । मय्यकिञ्चित्करं जातं तदा मे विस्मयोऽभवत् ॥ १५ ॥ तस्माद्भजस्व सुभगे श्रीमन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो विरराम मुनेः सुताम् ॥१६॥ श्रीकृष्ण उवाच—दुर्वासोवचनं श्रुत्वा बाला मूढधियाऽवदत् ॥ भाविना प्रेरिता राजन्नसूयाप्रेरिता सती ॥ १७ ॥ दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं मनसि क्रोधसंयुता ॥ बालोवाच—न मह्यं रोचते ब्रह्मन् यदुक्तं भवता मुने ॥ १८ ॥ कथं माघादयो मासा अकिञ्चित्करतां गताः ॥ कथं कार्तिक-

जब मेरे पास आकर खाली चला गया तब मुझे बड़ा विस्मय हुआ ॥१५॥ तस्मात् हे सुभगे ! तू श्री पुरुषोत्तम मास का व्रत कर इस प्रकार मुनि की कन्या को कहकर दुर्वासा ऋषि ने विराम लिया ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! दुर्वासा ऋषि का वचन सुन भावी से प्रेरित एवं असूया (गुण में दोष बुद्धि) से प्रेरित सती वह कन्या मूढ़ बुद्धि से मन

माघादि मास कैसे कुछ भी फल देने वाले नहीं हैं ? 'कार्तिक मास कम है' ? ऐसा आप कैसे कहते हैं ? सो कहिये ॥१९॥ वैशाख मास सेवित हुआ क्या इच्छित कामों को नहीं देता है ? सदाशिव आदि से लेकर सब देवता सेवा करने पर क्या फल नही देते हैं ? ॥ २० ॥ अथवा पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देव सूर्य और जगत् की माता देवी क्या सब कामनाओं को देने

मासं त्वमूनं वदसि तद्वद ॥१९॥ वैशाखः सेवितः किं वा न दास्यति सुकामितम् ॥ सदाशिवादयो देवाः फलदाः किं न सेविताः ॥२०॥ अथवा भुवि मार्तण्डो देवः प्रत्यक्षदर्शनः ॥ स किं न दाता कामानां देवी च जगदम्बिका ॥ २१ ॥ गणेशः सेविता किं वा न संयच्छति कामितम् ॥ व्यतीपातादिकान् योगान् देवान् शर्वादिकानपि ॥ २२ ॥ सर्वानुल्लङ्घ्य वदतस्त्रपा किं ते न जायते ॥ अयं तु मलिनो मासः सर्वकर्मविगर्हितः ॥ २३ ॥ असूर्यसङ्क्रमः श्रेष्ठः क्रियते च कथं मुने ॥ वेदाहं सर्वदुःखानां पारदं श्रीहरिं परम् ॥ २४ ॥ नान्यं पश्यामि भूदेव चिन्तयन्ती दिवानिशम्॥ रामाद्वा जानकीजानेः शङ्करात् पार्वतीपतेः ॥२५॥

वाले नहीं हैं ? ॥ २१ ॥ श्रीगणेश सेवा पाय क्या इच्छित वर नहीं देते हैं ? व्यतीपात आदि योगों को और शर्व आदि देवताओं को भी ॥२२॥ सबको उल्लङ्घन करके पुरुषोत्तममास की प्रशंसा करते क्या आपको लज्जा नहीं आती है ? यह मास तो बड़ा मलिन और सब काम में वर्जित है ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस सूर्य की संक्रान्ति से रहित को आप श्रेष्ठ कैसे कह रहे हैं ? सब दुखों से छुड़ाने वाले परम हरि को मैं जानती हूँ ॥ २४ ॥ हे भूदेव ! दिन रात हरि की चिन्तन

करती मैं जानकीपति राम और पार्वतीपति शङ्कर के सिवाय और किसी को नहीं देखती हूँ ॥ २५ ॥ हे विप्रेन्द्र ! अन्य कोई भी ऐसा देवता नहीं है जो मेरे दुःख को दूर करे अतः हे मुने ! इस सर्व फलदाताओं को छोड़कर कैसे इस मलमास की स्तुति आदि करूँ ? ॥ २६ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणकन्या का कहा हुआ सुनकर दुर्वासा मुनि शरीर से एक दम जाज्व-ल्यमान हो गये और क्रोध से नेत्र लाल हो गये ॥ २७ ॥ इस प्रकार क्रोध आने पर भी मित्र की कन्या को कृपा

नान्यः कोऽपि महान् देवो यो मे दुःखं व्यपोहति ॥ एतान् विहाय विप्रेन्द्र कथं स्तौषि मलं मुने ॥ २६ ॥ एवमुक्तस्तया विप्र पुत्र्या स क्रोधनो मुनिः ॥ जाज्वल्यमानो वपुषा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२७॥ तथापि न शशापैनां मित्रजां कृपयान्वितः ॥ मूढेयं नैव जानाति हिताहितमपूर्णधीः ॥ २८ ॥ पुरुषोत्तममाहात्म्यं दुर्ज्ञेयं विदुषामपि ॥ किमुताल्पधियां पुंसां कुमारीणां विशेषतः ॥२९॥ पित्रहीना कुमारीयं बाला दुःखाग्निभर्जिता ॥ अतीवोग्रतरं शापं मदीयं सहते कथम् ॥ ३० ॥ इत्येवं कृपया क्रोधं सञ्जहार मनःस्थितम् ॥ स्वस्थो भूत्वा मुनिः प्राह

करके शाप नहीं दिया और सोचने लगे कि यह मूर्खा है हित अनहित को नहीं जानती है अभी बुद्धि इसकी अपूर्ण है ॥ २८ ॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य का विद्वानों को भी पता नहीं है तो थोड़ी बुद्धि वाले पुरुषों एवं विशेष करके कुमारियों को तो हो ही कहाँ से सकता है ॥ २९ ॥ यह कुमारी कन्या माता पिता से रहित दुःखाग्नि से भुनी हुई है

किया और स्वस्थ होकर दुर्वासा मुनि उस अति विह्वल कन्या से बोले ॥ ३१ ॥ दुर्वासा बोले—हे ब्राह्मणि ! हे

किया और स्वस्थ होकर दुर्वासा मुनि, उस अति विह्वल कन्या से बोले ॥ ३१ ॥ दुर्वासा बोले—खेद से बोले ! हे मित्रजे ! तेरे ऊपर मेरा कुछ भी क्रोध नहीं है निर्भाग्ये ! जो तेरे मन में आवे वैसा ही कर ॥ ३२ ॥ हे बाले ! और तेरा कुछ भविष्य कहता हूँ सुन । पुरुषोत्तम मास का जो तू ने अनादर किया है ॥ ३३ ॥ उसका फल तुझे अवश्य

तां बालामतिविह्वलाम् ॥ ३१ ॥ दुर्वासा उवाच—अहो बाले न मे कोपो मित्रजे त्वयि कश्चन ॥ यत्ते मनसि निर्भाग्ये यथारुचि तथा कुरु ॥ ३२ ॥ अपरं श्रूयतां बाले भविष्यं किञ्चिदुच्यते ॥ पुरुषोत्तममासस्य यत्त्वयाऽनादरः कृतः ॥ ३३ ॥ सर्वथा तत्फलं भात्रि इह वा परजन्मनि ॥ अतः परं गमिष्यामि नरनारायणालयम् ॥ ३४ ॥ नच शप्ता मया भीरु मन्मित्रं ते पिता यतः ॥ हिताहितं न जानासि बालभावाच्छुभाशुभम् ॥ ३५ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि मास्तु कालात्ययो मम ॥ शुभं शुभेतरं भावि न केनाप्यनुलङ्घ्यते ॥३६॥ श्रीकृष्ण उवाच—इत्युदीर्य जगामाशु तामसस्तापसो मुनिः ॥ तत्क्षणं निष्प्रभा साऽभूत्

मिलेगा इस जन्म में मिले अथवा दूसरे जन्म में मिले । अब मैं नर नारायण के आश्रम में जाऊँगा ॥ ३४ ॥ तेरा पिता मेरा मित्र था इस लिये मैंने डरकर शाप नहीं दिया है तू बालभाव के कारण शुभाशुभ तथा हिताहित नहीं जानती है ॥ ३५ ॥ शुभाशुभ भविष्य को कोई भी हटा नहीं सकता है अच्छा हमारा बहुत समय व्यतीत हो गया अब हम जाते हैं तेरा कल्याण हो ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण बोले । ऐसा कह कर महाक्रोधी दुर्वासा मुनि शीघ्र चले गये । दुर्वासा

ऋषि के जाते ही पुरुषोत्तम की अवलेहना करने के कारण कन्या निष्प्रभा हो गयी ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बहुत देर तक कन्या ने विचार कर यह निश्चय किया कि देवताओं के भी देवता, तत्काल फल को देनेवाले, पार्वतीपति शिव को तपद्वारा आराधना करूँगी ॥ ३८ ॥ हे नृप ! मेधावी ऋषि की कन्या ने मन से इस प्रकार निश्चय करके अपने आश्रम

पुरुषोत्तमहेलया ॥ ३७ ॥ विमृश्य सुचिरं कालं तत्कालफलदं शिवम् ॥ आराधयामि देवेशं तपसा पार्वतीपतिम् ॥ ३८ ॥ इति निश्चित्य मनसा मेधावितनया नृप ॥ दुष्करं तत्तपः कर्तुमियेष स्वाश्रमे स्थिता ॥ ३९ ॥ सूत उवाच—आर्षेयी प्रबलमुनेर्वचो विनिन्द्य प्रोद्युक्तान्धकरिपुसेवने वने स्वे॥लक्ष्मीशं बहुलफलप्रदं विहाय सावित्रीपतिमपि तादृशं निरस्य॥४०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कुमारीशिवाराधनोद्योगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

में ही रहकर भगवान् शङ्कर के दुष्कर तप करने को उद्यत हो गयी ॥ ३९ ॥ सूत बोले—कि बहुत फलों के दाता लक्ष्मीपति को वैसे ही सावित्रीपति ब्रह्मा को छोड़कर एवं दुर्वासा के प्रबल वचन की निन्दा कर वह ऋषिकन्या अपने आश्रम में ही अन्धक को मारनेवाले शङ्कर की सेवा के लिये उद्यत हो गयी ॥ ४० ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

नारद बोले—सब मुनियों को भी जो दुष्कर कर्म (तप) है ऐसा बड़ा भारी तप जो इस कुमारी ने किया वह हे महामुने ! हमसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले। अनन्तर ऋषिकन्या ने भगवान् शिव, शान्त, पञ्चमुख सनातन महादेव को चिन्तन करते परम दारुण तप प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ सर्पों का आभूषण पहिरे, देव, नन्दी भृङ्गी से सेवित

नारद उवाच—अचीकरत् कुमारीयं महत्कर्म सुदुष्करम् ॥ मुनीनामपि सर्वेषां तन्मे वद महामुने ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथारभत कल्याणी तपः परमदारुणम् ॥ चिन्तयन्ती शिवं शान्तं पञ्चवक्त्रं सनातनम् ॥ २ ॥ भुजङ्गभूषणं देवं नन्दिभृङ्गिनिषेवितम् ॥ चतुर्विंशतितत्त्वैश्च गुणैस्त्रिभिरभिष्टुतम् ॥ ३ ॥ महासिद्धिभिरष्टाभिः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ चन्द्रखण्डलसद्भालं जटाजूटविराजितम् ॥ ४ ॥ चचार दुश्चरं बाला तमुद्दिश्य परंतपः ॥ पञ्चाग्नीनां च मध्ये सा स्थायिनी ग्रीष्मगे रवौ ॥ ५ ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव शीतवार्यन्तरस्थिता ॥ व्यक्तवक्त्रा तथा रेजे जलस्थं कमलं यथा ॥ ६ ॥ शिरोऽधःप्रसृतश्यामनोलालक-

चौबीस तत्त्वों और तीनों गुणों से युक्त ॥ ३ ॥ अष्ट महासिद्धियों तथा प्रकृति और पुरुष से युक्त, अर्ध चन्द्र से शोभित मस्तकवाले, जटाजूट से विराजित ॥ ४ ॥ भगवान् के प्रीत्यर्थ उस बाला ने परम तप प्रारम्भ किया। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य होने पर पञ्चाग्नि के बीच में बैठकर ॥ ५ ॥ हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में ठण्डे जल में बैठकर, खुले हुए मुख वाली, जल में खिले हुए कमल की तरह शोभित होने लगी ॥ ६ ॥ सिर के नीचे फैली हुई काली और नीली अलकों से ढकी

हुई वह जल में ऐसी मालूम होने लगी जैसे कीचड़ की लताओं के समूह से घिरी हुई हो ॥ ७ ॥ शीत के कारण नासिका से निकलती हुई शोभित धूमराशि इस तरह दिखाई देने लगी यथा कमल के मकरन्द पान करके जाती हुई भ्रमरपङ्क्ति ॥ ८ ॥ वर्षा काल में आसन से युक्त स्थण्डिल (चौतरे) पर बिना छाया से सोती थी और वह कोमलाङ्गी

विगुण्ठिता ॥ जम्बालवल्लरीपुञ्जैर्वेष्टितेवाबभौ जले ॥ ७ ॥ ब्रह्मरन्ध्रोद्गतश्रीमद्धूमराजिर्व्य-दृश्यत ॥ नलिनं सेव्यमानेव मिलिन्दालिः प्रसर्पिणी ॥ ८ । वर्षास्वनावृता शेते स्थण्डिले बृसिकान्विते ॥ सन्ध्ययोरुभयोस्तन्वी धूमपानमचीकरत् ॥ ९ ॥ पुरन्दरः परां चिन्तामवा-पाश्रुत्य तत्तपः ॥ दुर्धर्षा दिविजैः सर्वैः स्पृहणीया महर्षिभि ॥ १० ॥ एवं तपसि वृत्तायां-मार्षेय्यां नृपनन्दन ॥ गतान्यब्दसहस्राणि नव राजन्यभूषण ॥ ११ ॥ सन्तुष्टस्तपसा तस्या भगवान् पार्वतीपतिः ॥ दर्शयामास बालायै निजं रूपमगोचरम् ॥ १२ ॥ तद् दृष्ट्वा सह-सोत्तस्थौ देहः प्राणमिवागतम् ॥ तपःकृशापि सा बाला हृष्टपुष्टा तदाऽभवत् ॥ १३ ॥ भूरि-

प्रातः सायं धूमपान करके रहती थी ॥९॥ उस कन्या के इस प्रकार के कठिन तप को सुनकर इन्द्र बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुए । सब देवताओं से दुष्प्रधर्षा और ऋषियों से स्पृहणीया ॥ १० ॥ उस ऋषिकन्या के तप में लगी रहने पर हे नृप-नन्दन ! हे क्षत्रियभूषण ! नौ हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ११ ॥ उस बाला के तप से भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर

सहसा खड़ी हो गई और तप से दुर्बल होने पर भी वह बाला उस समय हृष्ट पुष्ट हो गया ॥ १३ ॥ बहुत वायु और

सहसा खड़ी हो गई और तप से दुर्बल होने पर भी वह बाला उस समय हृष्ट पुष्ट हो गयी ॥ १३ ॥ बहुत वायु और घाम से क्लेश पाई हुई वह भगवान् शङ्कर को बहुत अच्छी लगी और उस कन्या ने झुककर पार्वतीपति शिव को नमस्कार किया ॥ १४ ॥ उन विश्ववन्दित भगवान् का मानसिक उपचारों से पूजन करके और भक्तियुक्त चित्त से जगत् के नाथ की स्तुति करने लगी ॥ १५ ॥ कन्या बोली । हे पार्वतीप्रिय ! हे प्राणनाथ ! हे प्रभो ! भर्ग ! भूतेश !

वातातपक्लिष्टा देवमीढा गरीयसी ॥ सा बालाऽवनता भूत्वा ववन्दे गिरिजापतिम् ॥१४॥
मानसैरुपचारैस्तं सम्पूज्य विश्ववन्दितम् ॥ तुष्टाव जगतां नाथं भक्तियुक्तेन चेतसा ।१५॥
बालोवाच—अये शैलजावल्लभ प्राणनाथ प्रभो भर्ग भूतेश गौरीश शम्भो ॥ तमः सोमसूर्याग्निदिव्यत्रिनेत्र मदाधार मुण्डास्थिमालिन्नमस्ते ॥ १६ ॥ नरोऽनेकतापाभिभूताङ्गपीडः परे घोरसंसारवार्धौ निमग्नः ॥ खलव्यालकालोग्रदंष्ट्राभिदष्टो विमुच्येद्भवन्त शरण्यं प्रपन्नः ॥१७।
विभो येन बाणः स्वकीयीकृतश्च मृता जीवितालर्कभूपालपत्नी ॥ दयानाथ भूतेश चण्डीश

गौरीश ! शम्भो ! सोमसूर्याग्निनेत्र ! हे तमः ! हे मेरे आधार ! हे मुण्डास्थिमालिन् ! आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ अनेक तापों से जिसके अङ्गों में पीड़ा व्याप्त है ऐसा, तथा परम घोर संसाररूपी समुद्र में डूबा हुआ, दुष्ट सर्पों तथा काल के तीक्ष्ण दांतों से डसा हुआ मनुष्य भी यदि आप की शरण में आ जाए तो मुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥ हे विभो ! जिन आपने बाणासुर को अपनाया और मरी हुई अलर्क राजा की पत्नी को जिलाया ऐसे आप हे दयानाथ ! भूतेश !

चण्डीश ! भव्य ! भवत्राण ! मृत्युञ्जय ! प्राणनाथ ! ॥ १८ ॥ आप दक्षप्रजापति के मख को ध्वंस करने वाले हैं, समस्त शत्रुओं के नाशक, सदा भक्तों को संसार से छुड़ानेवाले, जन्म के हर्ता, प्रथम ही सृष्टि के कर्ता और हे प्राणनाथ ! अपने सेवकों की रक्षा कीजिये, आप पापों को हरण करनेवाले हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे नृप ! बड़ी भाग्यवती

भव्य भवत्राय मृत्युञ्जय प्राणनाथ ॥ १८ ॥ मखध्वंसकर्तः समस्तारिहर्तः सदा सेवकानां भवध्वंसकर्तः ॥ नमो जन्महर्तः पुरा सृष्टिकर्तस्त्वदीयानव प्राणनाथाघहर्तः ॥ १९ ॥ इत्येवं मनसा वाचा शिवं स्तुत्वा तपस्विनी ॥ विरराम महाभागा मेधावितनया नृप ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण उवाच—तत्कृतं स्तोत्रमाकर्ण्य तपसोग्रतरेण च ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजस्तामुवाच सदाशिवः ॥ २१ ॥ शिव उवाच—वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वाञ्छितः ॥ प्रसन्नोऽस्मि महाभागे मा मा खिद तपस्विनि ॥ २२ ॥ तदाकर्ण्य कुमारीयं महानन्दपरिप्लुता ॥ उवाच वचनं राजन् सुप्रसन्नं सदाशिवम् ॥ २३ ॥ बालोवाच—दीनानाथ दयासिन्धो प्रसन्नश्चेन्ममोपरि ॥

मेधावी की कन्या इस प्रकार मन से और वाणी से वह तपस्विनी शिव की स्तुति करके चुप हो गयी ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले । कन्या की की हुई स्तुति सुनकर और उसके किये हुए उग्रतप से प्रसन्न मुखकमल सदाशिव कन्या से बोले ॥२१॥ हे तपस्विनि ! तेरा कल्याण हो, तेरे मन में जो अभिप्रेत हो वह वर तू मांग, हे महाभागे ! मैं प्रसन्न हूँ तू खेद मत

शिव से बोले ॥ २३ ॥ कन्या बोली—हे दीननाथ ! हे दयासिन्धो ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो हे प्रभो ! मेरी कामना पूर्ण करने में देर न करें ॥ २४ ॥ हे महादेव ! मुझको पति दीजिये, पति दीजिये, पति दीजिये, मैं पति चाहती हूँ पति दीजिये, मैंने हृदय में और कुछ नहीं सोचा है ॥ २५ ॥ वह ऋषिकन्या इस प्रकार महादेव से कह कर चुप

तदा मत्कामितं देहि मा विलम्बं कुरु प्रभो ॥२४॥ पतिं देहि पतिं मह्यं पति पतिमहं वृणे ॥ पतिं देहि महादेव नान्यन्मे चिन्तितं हृदि ॥२५॥ एवमुक्त्वा तदाऽऽर्षेयी विरराम कपर्दिनम् ॥ तदाऽऽकर्ण्य महादेवो जगाद मुनिकन्यकाम् ॥२६॥ शिव उवाच—त्वया यत्स्वमुखेनोक्तं तदस्तु मुनिकन्यके ॥ पञ्चकृत्वस्त्वया यस्मात् पतिः सम्प्रार्थितोऽधुना ॥२७॥ तस्मात् पञ्च भविष्यन्ति पतयस्तव सुन्दरि ॥ शूराः सकलधर्मज्ञाः साधवः सत्यविक्रमाः ॥ २८॥ यज्वानः स्वगुणख्याताः सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ त्वन्मुखप्रेक्षकाः सर्वे राजन्या गुणशालिनः ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—इत्याकर्ण्य वचस्तस्य धूर्जटेरनतिप्रियम् ॥ उवाचावनता भूत्वा बाला वाक्यविशारदा

हो गयी तब यह सुनकर महादेव उससे बोले ॥ २६ ॥ शिव बोले—हे मुनिकन्यके ! तूने जैसा अपने मुख से कहा है वैसाही होगा क्योंकि तूने अब ५ बार पति माँगा है ॥ २७ ॥ अतः हे सुन्दरी ! तेरे ५ पति होगें और वे पाँचो वीर, सर्वधर्मवेत्ता, सज्जन, सत्यपराक्रमी ॥ २८ ॥ तज्ञ करनेवाले, अपने गुणों से प्रसिद्ध, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, तेरा मुख देखने वाले, सभी क्षत्रिय, और गुणवान् होगें ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण बोले। महादेव के अप्रिय बचन को सुनकर बोलने में

चतुरा कन्या झुककर बोली ॥ ३० ॥ बाला बोली । हे गिरिजाकान्त ! सदाशिव ! संसार में एक स्त्री का एकही पति होता है अतः ५ पति का वर देकर लोक में मेरी हँसी न करवाइये ॥ ३१ ॥ एक स्त्री ५ पतिवाली न देखी गयी और न सुनी गयी है, हाँ एक पुरुष की पाँच स्त्रियाँ तो हो सकती हैं ॥ ३२ ॥ हे शम्भो ! हे कृपानिधे ! आपकी सेविका मैं

॥३०॥ बालोवाच–एवं मे गिरिजाकान्त मास्तु लोकेऽतिकौतुकम् ॥ एकस्या एक एवास्ति भर्ता नार्याः सदाशिव ॥ ३१ ॥ न दृष्टा न श्रुता क्वापि नार्येका पञ्च भर्तृका ॥ एकस्य पञ्च पत्न्यस्तु पुरुषस्य भवन्ति हि ॥ ३२ ॥ त्वदीयाहं कथं शम्भो भवेयं पञ्चभर्तृका ॥ नैवार्हसि वचस्त्वेवं मयि वक्तुं कृपानिधे॥३३॥ तवैव जायते लज्जा त्वदीयाहं यतः प्रभो ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः शङ्करः प्राह तां पुनः ॥ ३४ ॥ शिव उवाच–मास्तु तेऽस्मिन् भवे भीरु भव्यं तत्पर जन्मनि ॥ अयोनिसम्भवा तत्र भविष्यसि तपोबलात् ॥ ३५ ॥ भर्तृजं सुखमासाद्य ततो गन्त्री परं पदम् । दुर्वासा मे प्रिया मूर्तिः स त्वयाऽवमतः पुरा ॥ ३६ ॥ स चेत्

५ पतियोंवाली कैसे हो सकती हूँ आपको मेरे लिये ऐसा कहना उचित नहीं है ॥३३॥ आपकी सेविका होने के कारण जो लज्जा मुझे हो रही है वह आप अपने को ही समझिये । कन्या का यह वचन सुन कर शङ्कर पुनः उससे बोले ॥३४॥ शङ्कर बोले—हे भीरु ! इस जन्म में तुझे पतिसुख नहीं मिलेगा दूसरे जन्म में जब तू तपोबल से बिना योनि के उत्पन्न

पहिले अपमान किया है ॥ ३६ ॥ हे सुभ्रु ! वह दुर्वासा यदि क्रोध करें तो तीनों भुवनों को जला सकते हैं सो तूने अभिमान वश ब्रह्मतेज का मर्दन किया है ॥ ३७ ॥ जिस अधिमास को भगवान् कृष्ण ने अपना ऐश्वर्य दे दिया उस भगवान् के प्रिय पुरुषोत्तममास का व्रत तूने नहीं किया ॥ ३८ ॥ मैं, ब्रह्मा से आदि लेकर सब देवता, नारद से आदि

कोपावृतः सुभ्रु निर्दहेद्भुवनत्रयम् ॥ त्वया गर्वातिरेकेण ब्रह्मतेजः प्रमर्दितम् ॥ ३७ । पुरुषोत्तमस्त्वया मासो न कृतो भगवत्प्रियः ॥ यस्मिन्नर्पितमैश्वर्यं श्रीकृष्णेनात्मनः स्वकम् ॥३८॥ अहं ब्रह्मादयो देवा नारदाद्यास्तपस्विनः ॥ यदादेशकरा बाले तदाज्ञां को विलङ्घयेत् ॥३९॥ स मासो न त्वया मूढ़े पूजितो लोकपूजितः । अतस्ते पञ्च भर्तारो भविष्यन्ति द्विजात्मजे ॥४०॥ नान्यथा भावि तद्बाले पुरुषोत्तमखण्डनात् ॥ यो वै निन्दति तं मासं स याति घोररौरवम् ॥ ४१ ॥ विपरीतं भवेत्तस्य न कदाप्यन्यथा भवेत् ॥ पुरुषोत्तमस्य ये भक्ताः पुत्रपौत्रधनान्विताः ॥ ४२ ॥ ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं याता यास्यन्ति यान्ति च ॥ वयं सर्वेऽपि

लेकर सब तपस्वी जो आदेश करते हैं हे बाले ! उस आज्ञा को कौन उल्लङ्घन करता है ? ॥ ३९ ॥ लोकपूजित पुरुषोत्तम मास की दुर्वासा की आज्ञा से भी तूने पूजा नहीं की है हे मूढ़े ! हे द्विजात्मजे ! इसी लिये तेरे ५ पति होंगे ॥ ४० ॥ हे बाले ! पुरुषोत्तम के अनादर करने से अब अन्यथा नहीं हो सकता है । जो उस पुरुषोत्तम की निन्दा करता है वह रौरव नरक गामी होता है ॥ ४१ ॥ पुरुषोत्तम का अपमान करने वाले को विपरीत ही फल होता है यह बात कभी भी अन्यथा नहीं हो सकती है । पुरुषोत्तम के जो भक्त हैं वे पुत्र, पौत्र धनवाले होते हैं ॥४२॥ इस लोक की तथा परलोक

की सिद्धि को प्राप्त तथा इन सिद्धियों को प्राप्त होने वाले एवं इन सिद्धियों के लिये जो प्रयत्नशील हैं वह सब और हम सब देवता लोग भी पुरुषोत्तम की सेवा करने वाले हैं ॥४३॥ जिस पुरुषोत्तममास में व्रतादिक करने से पुरुषोत्तम प्रसन्न होते हैं उस सेवा करने योग्य मास को हे सुमध्यमे ! हम लोग कैसे न भजें ॥ ४४ ॥ सद् असद्वादी, अनुकरणीय

गीर्वाणाः पुरुषोत्तमसेविनः ॥ ४३ ॥ यस्मिन् संसेविते शीघ्रं प्रीयते पुरुषोत्तमः ॥ सेवनीयं कथं मासं न भजामः सुमध्यमे ॥ ४४ ॥ अत्युत्कटानां महतां वचो मिथ्या कथं वद॥ अनुनेया हि मुनयः सदसद्वादवादिनः ॥४५॥ वदन्नेवं नीलकण्ठः क्षिप्रमन्तर्दधे हरः ॥ चकिता साऽभवद्बाला यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥ ४६ ॥ सूत उवाच—शशाङ्कलेखाङ्कितभालदेशे सदाशिवे शैवदिशं प्रयाते ॥ चिन्ता बबाधे मुनिराजकन्यां हत्या यथा वृत्रहणं मुनीशाः॥४७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये शिववाक्यं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

जो मुनि हैं उन अति उत्कट श्रेष्ठ पुरुषों का वचन कैसे मिथ्या हो सकता है ? कहो ॥४५॥ इस प्रकार कथन करते हुए भगवान् नीलकण्ठ शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये और यह बाला यूथ से भ्रष्ट मृगी की तरह चकितसी हो गयी ॥ ४६ ॥ सूत बोले । हे मुनीशाः रेखासदृश चन्द्रमा से युक्त मस्तक वाले सदाशिव जब उत्तर दिशा के प्रति चले गये तब वृत्रासुर को मार कर जैसे इन्द्र को चिन्ता हुई थी उसी प्रकार मुनिराज की कन्या को चिन्ता बाधा करने लगी ॥ ४७ ॥

नारद बोले। जब भगवान् शङ्कर चले गये तब हे नाथ! वह शुद्ध बाला ने क्या किया सो मुझ विनीत को शुश्रूषा धर्मसिद्धि के लिये कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले। इसी प्रकार राजा युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से पूछा था सो भगवान् ने राजा के प्रति जो कहा सो हम तुमसे कहते हैं सुनो ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले। हे राजन्! इस प्रकार जब शिव

नारद उवाच—शितिकण्ठे गते नाथ बाला किमकरोच्छुचा॥ तन्मे वद विनीताय शुश्रूषा-धर्मसिद्धये ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच–एवमेव पुरा पृष्टः श्रीकृष्णः पाण्डुसूनुना ॥ यदुवाच वचो राज्ञे तन्मे निगदतः शृणु ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—एवं गते शिवे राजन् सा बाला विगतप्रभा ॥ निःश्वासपरमा भीता साश्रुनेत्रा कृशोदरी॥३॥ हृदयाग्निलसज्ज्वालाज्वलिताङ्गी कुमारिका ॥ दावाग्निदग्धपत्रा सा लतेवासीत्तपस्विनी ॥४॥ दुःखमोर्ष्यामाप्तवत्यामेवं कालो महान् गतः ॥ असौ तामवचस्कन्द् तादृशीं तापसीं प्रभुः ॥५॥ सहसा तां समापन्नां फणी-वाखुनिवेशनम् ॥ इति कालेन बलिना वशं नीता तपस्विनी ॥ ६ ॥ प्रावृण्मेघावृते व्योम्नि

चले गये तब वह बाला प्रभारहित हो गयी और लम्बे श्वास लेती हुई बड़ी डरी और वह कृशोदरी अश्रुपात पूर्वक रोने लगी ॥ ३ ॥ हृदयाग्नि से उठी हुई ज्वाला से जलते हुए अङ्गवाली वह कन्या वनाग्नि से जले हुए पत्ते वाली लता की तरह वह तपस्विनी होगयी ॥ ४ ॥ दुःख और ईर्ष्या को प्राप्त उस कन्या का बहुत समय व्यतीत हो गया। जिस प्रकार चूहे के बिल में घुसकर आक्रमण करके सर्प उसे वश में कर लेता है उसी प्रकार उपर्युक्त शोचनीय अवस्था को प्राप्त उस

तपस्विनी पर उस काल प्रभु ने आक्रमण कर उसे वश में कर लिया ॥ ५-६ ॥ वर्षा ऋतु में मेघ से घिरे हुए आकाश में विजली चमक कर जैसे नष्ट हो जाती है उसी प्रकार तपस्या से जले हुए पापवाली वह कन्या अपने आश्रम में मर गयी ॥ ७ ॥ उसी समय धर्मिष्ठ यज्ञसेन नामक राजा ने बड़ी सामग्रियों से युक्त उत्तम यज्ञ किया ॥ ८ ॥ उस यज्ञकुण्ड

विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ तथाऽऽश्रमे स्वके नष्टा तपसा दग्धकल्मषा ॥ ७ ॥ तदानीमेव धर्मिष्ठो यज्ञसेना नराधिपः ॥ बृहत्सम्भारसम्पन्नमकरोद्यज्ञमुत्तमम् ॥ ८ ॥ तद्यज्ञकुण्डादुद्भूता कुमारी कनकप्रभा ॥ सेयं द्रुपदशार्दूलतनया प्रथिता भुवि ॥९॥ द्रौपदी सर्वलोकेषु ह्यार्षेयी या पुराऽभवत् ॥ सेयं स्वयंवरे राजन् मत्स्यवेधे कृते सति ॥ १० ॥ लब्धार्जुनेन पाञ्चाली चुभिते राजमण्डले ॥ तृणीकृत्य नृपान् सर्वान् भीष्मकर्णादिकान् बहून् ॥ ११ ॥ सेयं कच-ग्रहं प्राप्ता दुष्टदुःशासनान्मुने ॥ वचांसि कर्णशूलानि श्राविता वरवर्णिनी ॥ १२ ॥ मया

से सुवर्ण के समान प्रभाववाली एक लड़की उत्पन्न हुई। वही कुमारी द्रुपद राजा की कन्या के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई ॥ ९ ॥ पहिले जो मेधावी ऋषि की कन्या थी वही सब लोकों में द्रौपदी नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी को स्वयम्वर में मछली को वेधकर ॥ १० ॥ भीष्म, कर्ण आदि बहुत राजाओं के तृण समान कर क्षुभित राजमण्डल में अर्जुन ने

विदीर्ण करने वाले वचन सुनाये गये ॥ १२ ॥ पूर्वजन्म का अनादर करने के कारण मन भी उसकी उपेक्षा की जब

विदीर्ण करने वाले वचन सुनाये गये ॥ १२ ॥ पुरुषोत्तम की अवहेलना करने के कारण मन भी उसकी उपेक्षा की जब मेरे में स्नेह करके मेरे नाम बारबार लेने लगी ॥ १३ ॥ हे दामोदर ! हे दयासिन्धो ! हे कृष्ण ! हे जगत्पते ! हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे केशव ! हे क्लेशनाशन ! ॥ १४ ॥ मेरा माता, पिता, भ्रातृवर्ग, सहेलियां, बहिन, भाञ्जे, बन्धु,

चोपेक्षिता राजन् पुरुषोत्तमहेलनात् ॥ यदा मयि कृतस्नेहा मन्नामान्यवदन्मुहुः ॥ १३ ॥ दामोदर दयासिन्धो कृष्ण कृष्ण जगत्पते ॥ हे नाथ हे रमानाथ केशव क्लेशनाशन ॥१४॥ न माता न तातो न च भ्रातृवर्गो न सख्यो न जामिर्न वै भागिनेयः ॥ न बन्धुर्न चेष्टो न वै प्राणनाथो हृषीकेश सर्वं भवानेव मेऽस्ति ॥ १५ ॥ गोविन्द गोपिकानाथ दीनबन्धो दयानिधे ॥ दुःशासनपराभूतां किं न जानासि मां प्रभो ॥ १६ ॥ दुःशासनपराभूता तदा द्रुपदनन्दिनी ॥ मदीयं स्मरणं प्राप्ता विस्मृताऽपि मया पुरा॥१७॥शीघ्रं गरुडमारुह्य तत्राऽऽगत्य स्थितेन वै ॥ पूरित नि मया राजन्नस्यै वासांस्यनेकशः ॥१८॥ सदा मयि कृतस्नेहा मत्प्राणा

इष्ट, पति आदि कोई भी नहीं है । हे हृषीकेश ! मेरे तो आपही सब कुछ हैं ॥ १५ ॥ हे गोविन्द ! गोपिकानाथ ! दीन-बन्धो ! दयानिधे ! प्रभो ! दुःशासन से तिरस्कृत मुझे क्या आप नहीं जानते ॥ १६ ॥ पहिले मुझसे विस्मृत की गयी द्रौपदी ने दुःशासन से पराभूत होकर जब मेरा स्मरण किया ॥१७॥ तब गरुण पर चढ़ शीघ्र वहाँ पहुँच कर मैंने हे राजन् ! उसे बहुत से वस्त्रों से परिपूर्ण कर दिया ॥ १८ ॥ सदा मेरे में स्नेह करने वाली, मैं ही हूँ प्राण जिसके ऐसी सदा मेरे

भजन में परायण, मेरी अत्यन्त प्रिया, सती, सखी, मुझको प्राणों के समान होने पर भी पुरुषोत्तम की अवहेलना करने के कारण मुझसे उपेक्षित की गयी। पुरुषोत्तम का तिरस्कार करनेवाले का मैं पतन कर देता हूँ ॥ १९–२० ॥ यह पुरुषोत्तम मुनियों और देवताओं से भी सेव्य है तब समस्त कामनाओं को देने वाला यह पुरुषोत्तम मनुष्यों द्वारा तो सेव-

मत्परायणा ॥ ममातिवल्लभा साध्वी सखी मे प्राणसन्निभा ॥१९॥ तथाप्युपेक्षितेयं सा पुरुषोत्तम हेलनात् ॥ पुरुषोत्तम् तिरस्कारकर्तारं पातयाम्यहम् ॥ २० ॥ सर्वथा मुनिदेवानां सेव्योऽयं पुरुषोत्तमः ॥ किं पुनर्मानुषाणां तु सर्वार्थफलदायकः ॥२१ ॥ तस्मादाराधयस्वैनमागामिपुरुषोत्तमम् ॥ वर्षे चतुर्दशे पूर्णे सर्वं ते भविता शुभम् ॥ २२ ॥ व्यलोकि चिकुरव्रातो यैरस्याः पाण्डुनन्दन ॥ तन्नारीणामहं राजन्निर्वपिष्येऽलकान् रुषा ॥ २३ ॥ सुयोधनादिभूपालान् सर्वान्नेष्ये यमक्षयम् ॥ सर्वशत्रुक्षयं कृत्वा त्वं च राजा भविष्यसि ॥ २४ ॥ न मे क्षीरोदतनया प्रिया नापि हलायुधः ॥ न तथा देवकी देवी प्रद्युम्नो नापि सात्यकिः ॥२५॥

नीय है ही ॥२१॥ अतः आगामी पुरुषोत्तम की आराधना करो चौदहे वर्षके सम्पूर्ण होनेपर तुम्हारा कल्याण होगा ॥२२॥ हे पाण्डुनन्दन ! जिन पुरुषों ने द्रौपदी के बालों को खींचते हुए देखा है हे महाराज ! उनके स्त्रियों की अलकों को मैं क्रोध से काटूँगा ॥ २३ ॥ सुयोधन आदि राजाओं को यमराज के भवन को पहुँचायेंगे बाद तुम समस्त शत्रुओं का नाश कर राजा होगे ॥ २४ ॥ न मेरे को [illegible]

देवकी देवी, प्रद्युम्न, न सात्यकि प्रिय हैं ॥ २५ ॥ जैसे मेरे को भक्त प्रिय हैं वैसा कोई प्रिय नहीं है जिसने मेरे भक्तों को पीड़ित किया उससे मैं सदा पीड़ित रहता हूँ ॥ २६ ॥ हे पाण्डव ! उसके समान मेरा दूसरा कोई शत्रु नहीं है उसके अपराध का फल देने वाला यमराज है क्योंकि वह दुष्ट दण्ड देने के लिये भी मेरे से देखने के योग्य नहीं है ॥ २७ ॥

यादृशा मे प्रिया भक्तास्तादृशो नास्ति कश्चन । येन मे पीडिता भक्तास्तेनाहं पीडितः सदा ॥ २६ ॥ द्वेष्यो मे नास्ति तत्तुल्यो यमस्तस्य फलप्रदः ॥ नाऽवलोक्यो मया दुष्टो दण्डार्थमपि पाण्डव ॥ २७ ॥ श्रीनारायण उवाच—श्रीकृष्णस्तान् समाश्वास्य पाण्डवान् द्रौपदीं तथा ॥ कुशस्थलीं जिगमिषुरुवाच मधुसूदनः ॥ २८ ॥ राजन्नद्य गमिष्यामि द्वारकां विरहाकुलाम् ॥ वसुदेवो महाभागो बलदेवो ममाग्रजः ॥ २९ ॥ मन्माता देवकी देवी गदसाम्बादयोऽपरे ॥ आहुकाद्याश्च यदवो रुक्मिण्याद्याश्च याः स्त्रियः ॥ ३० ॥ सर्वे तेऽनिमिषैर्नेत्रैर्मदागमनकाङ्क्षिणाः ॥ मामेव चिन्तयन्त्येवं मद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच—इत्युक्तवन्तं देवेशं कथञ्चि-

श्रीनारायण बोले—श्रीकृष्ण ने उन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरादिकों को और द्रौपदी को समझा-कर द्वारका जाने की इच्छा से बोले ॥ २८ ॥ हे राजन् ! वियोग से व्याकुल द्वारका पुरी को आज जाऊँगा जहाँ पर महाभाग वसुदेव जी हमारे बड़े भाई बलदेवजी ॥ २९ ॥ हमारी माता देवकी देवी तथा गद, साम्ब आदि और आहुक आदि यादव, रुक्मिणी आदि जो स्त्रियाँ हैं ॥ ३० ॥ वे सब हमारे आगमन की इच्छा से दर्शन की उत्कण्ठा वाले टकटकी लगाकर हमारा ही चिन्तन

करते होंगे ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण बोले । इस प्रकार कहते हुए देवेश श्रीकृष्ण के गमन को जानकर पाण्डु–पुत्र किसी प्रकार गद्‌गद कण्ठ से बोले ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार जल में रहने वालों का जीवन जल है उसी तरह हम लोगों के जीवन तो आप ही हैं । हे जनार्दन ! थोड़े ही दिनों के बाद फिर दर्शन हों ॥ ३३ ॥ पाण्डवों के नाथ हरि हैं और तीनों लोक

त्पाण्डुनन्दनाः ॥ हरिप्रयाणमालक्ष्य तमूचुर्गद्‌गदाक्षरम् ॥ ३२ ॥ जीवनं नो भवानेव यथा वारिजलौकसाम् ॥ पुनर्दर्शनमल्पेन कालेनाऽस्तु जनार्दन ॥ ३३ ॥ पाराडवानां हरिर्नाथो नान्यः कश्चिज्जगत्त्रये ॥ इत्थं सर्वे वदन्त्यद्धा तस्मान्नः पाहि सर्वदा ॥ ३४ ॥ न विस्मार्या वयं सर्वे त्वदीया जगदीश्वर ॥ अस्मच्चेतोमिलिन्दानां जीवनं त्वत्पदाम्बुजम् ॥ ३५ ॥ अवलम्बनमेवाऽस्तु प्रार्थयामोमुहुर्मुहुः ॥ असकृत्पाण्डुपुत्रेषु गृणत्स्वेवं यदूद्वहः ॥ ३६ ॥ मन्दं मन्दं समारुह्य रथं प्रेमपरिप्लुतः ॥ ययौ द्वारवतीमेतान् परकृत्यानुगच्छतः ॥ ३७ ॥ श्रीनारायण

में दूसरा कोई नहीं है इस प्रकार सामने ही सब लोग कहते हैं अतः हम लोगों की हमेशा रक्षा करें ॥ ३४ ॥ हे जगदीश्वर ! हम लोग आपके हैं भूलियेगा नहीं । भ्रमरों को कमल की तरह हमारे चित्त को आपके चरण–कमल जीवन हैं ॥३५॥ आपही हमारे आधार हैं इसलिये बारबार हम सब प्रार्थना करते हैं । इस तरह पाण्डुपुत्रों के बारबार कहने पर श्रीकृष्ण-चन्द्र ॥ ३६ ॥ प्रेमानन्द में मग्न होकर धीरे धीरे रथ पर सवार होकर पीछे चलते हुए पाण्डुपुत्रों को लौटाकर द्वारका

पुरी को गये ॥ ३७ ॥ श्रीनारायण बोले । इसके बाद श्रीद्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारका पुरी जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों के साथ तप करते हुये तीर्थों में भ्रमण करते भये ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! नारद! भगवान् के प्रिय पुरुषोत्तम मास में मन लगा कर और श्रीकृष्णचन्द्र के वचनों का स्मरण करते हुए अपने छोटे भाइयों से तथा द्रौपदी

उवाच—अथ श्रीद्वारकानाथे गते द्वारवतीं तदा ॥ राजापि सानुजस्तप्यंस्तीर्थानि विचचार ह ॥ ३८ ॥ पुरुषोत्तमे मनः कृत्वा ब्रह्मन् श्रीभगवत्प्रिये ॥ अनुजानाह कृष्णां च विष्वक्सेनवचः स्मरन् ॥ ३९ ॥ अहो श्रुतमतीवोग्रं माहात्म्यं पौरुषोत्तमम् ॥ कथं सुखानि लभ्यन्ते नाभ्यर्च्य पुरुषोत्तमम् ॥ ४० ॥ स धन्यो भारते वर्षे स पूज्यः श्रेष्ठ एव सः ॥ विविधैर्नियमैर्यस्तु पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥ एवं सर्वेषु तीर्थेषु भ्रमन्तः पाण्डुनन्दनाः ॥ पुरुषोत्तममासाद्यव्रतं चेरुर्विधानतः ॥ ४२ ॥ तदन्ते राज्यमतुलमवापुर्गतकण्टकम् ॥ पूर्णे चतुर्दशे वर्षे

से राजा युधिष्ठिर बोले ॥ ३९ ॥ अहो! अत्यन्त उग्र पुरुषोत्तम मास में होने वाले पुरुषोत्तम का माहात्म्य सुना है! पुरुषोत्तम भगवान् के पूजन किये बिना सुख किस तरह मिलेंगे? ॥४०॥ इस भारत वर्ष में वह धन्य है वह पूज्य है वही श्रेष्ठ है जो अनेक प्रकार के नियमों से पुरुषोत्तम भगवान् को पूजता है ॥ ४१ ॥ इस तरह समस्त तीर्थों में भ्रमण करते हुए पाण्डु पुत्र पुरुषोत्तम मास के आने पर विधिपूर्वक व्रत करते भये ॥ ४२ ॥ व्रत के अन्त में हे मुने! नारद! चौदह

वर्ष के पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण भगवान् की कृपा से अतुल निष्कण्टक राज्य को प्राप्त होते हुये ॥ ४३ ॥ प्रथम सूर्यवंश में होने वाला दृढधन्वा नाम का राजा पुरुषोत्तम मास के सेवन से बड़ी लक्ष्मी ॥ ४४ ॥ पुत्र, पौत्र का सुख और अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर योगियों को भी अगम्य अर्थात् दुर्लभ जो भगवान् का वैकुण्ठ लोक है वहाँ गया ॥ ४५ ॥

श्रीकृष्णकृपया मुने ॥४३॥ दृढधन्वा नृपः पूर्वं सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ पुरुषोत्तममासस्य सेवना-
न्महतीं श्रियम् ॥ ४४ ॥ पुत्रपौत्रसुखं चैव भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ जगाम भगवल्लोक-
मगम्यं योगिनामपि ॥ ४५ ॥ एतन्मासस्य माहात्म्यमतुलं मुनिसत्तम ॥ नाहं वक्तुं समर्थो-
ऽस्मि कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४६ ॥ सूत उवाच—पुरुषोत्तममासस्य कृष्णद्वैपायनादहम् ॥
माहात्म्यं श्रुतवान् विप्राः सोऽपि वक्तुं शशाक नो ॥ ४७ ॥ अस्य माहात्म्यमखिलं वेत्ति

हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद ! इस पुरुषोत्तम मास के अतुल माहात्म्य को करोड़ों कल्प समय मिलने पर भी मैं कहने को समर्थ नहीं हूँ ॥ ४६ ॥ सूत जी बोले । हे विप्र लोग ! पुरुषोत्तम मास का माहात्म्य कृष्णद्वैपायन (व्यास जी) से मैंने सुना है तथापि कहने को मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ ४७ ॥ इस पुरुषोत्तम मास के अखिल माहात्म्य को स्वयं नारायण जानते हैं

या साक्षात् वैकुण्ठवासी हरि भगवान् जानते हैं ॥४८॥ परन्तु ब्रह्मादि देवताओं से नमस्कार किये जाने वाले जिनके चरण

नारायणः स्वयम् ॥ अथवा भगवान् साक्षाद्वैकुण्ठनिलयो हरिः ॥४८॥ ब्रह्मादिदेवानतपादपीठ-
गोलोकनाथेन स्वकीकृतस्य ॥ सर्वं माहात्म्यं पुरुषोत्तमस्य देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥४९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे
पुरुषोत्तमव्रतोपदेशो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

पीठ हैं ऐसे गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्र भी अपनाये हुये पुरुषोत्तम मास का सम्पूर्ण माहात्म्य नहीं जानते हैं तो मनुष्य कहाँ से जान सकता है ? ॥ ४९ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे
पुरुषोत्तमव्रतोपदेशो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ऋषि लोग बोले। हे सूत! हे सूत! हे महाभाग! हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! पुरुषोत्तम के सेवन से राजा दृढधन्वा शोभन राज्य, पुत्र, पौत्र आदि तथा पतिव्रता स्त्री को किस तरह प्राप्त करता हुआ और योगियों को भी दुर्लभ भगवान् के लोक को किस तरह प्राप्त हुआ॥ १—२॥ हे तात! आपके मुखकमल से बराबर कथासार सुनने वाले हम लोगों

ऋषयः ऊचुः—सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर॥ दृढधन्वा कथं प्राप पुरुषोत्तम-सेवनात्॥ १॥ सौराज्यं पुत्रपौत्रादीन् ललनां च पतिव्रताम्॥ कथं च भगवल्लोकमवाप योगिदुर्लभम्॥ २॥ शृण्वतां ते मुखाम्भोजात् कथासारं मुहुर्मुहुः॥ अलं बुद्धिर्न नस्तात यथा पीयूषपानतः॥ ३॥ अतो विस्तरतो ब्रूहि इतिहासं पुरातनम्॥ अस्मद्भाग्यबलेनैव धात्रा संदर्शितो भवान्॥ ४॥ सूत उवाच—सनातनमुनिर्विप्रा नारदाय पुरातनम्॥ इति-हासमुवाचेमं स एव प्रोच्यतेऽधुना॥ ५॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे चरित्रं पापनाशनम्॥ यथा-धीतं गुरुमुखाद्राज्ञो वै दृढधन्वनः॥ ६॥ श्रीनारायण उवाच—शृणु राजन् प्रवक्ष्येऽहं

को अमृत-पान करनेवालों के समान कथामृत-पान से तृप्ति नहीं होती है॥ ३॥ इस कारण से पुरातन इतिहास को विस्तार पूर्वक कहिये। हमारे भाग्य के बल से ही ब्रह्मा ने आपको दिखलाया है॥ ४॥ सूतजी बोले। हे विप्र लोग! सनातन मुनि नारायण ने इस पुरातन इतिहास को नारद जी के प्रति कहा है वही इतिहास इस समय मैं आप लोगों से कहता हूँ॥ ५॥ सब मुनि लोग अपना जैसा गुरु के मुख से राजा दृढधन्वा का पापनाशक चरित्र पढ़ा है॥ ६॥

श्रीनारायण बोले। ब्रह्मन्! नारद! सुनिये। मैं पवित्र करने वाली गङ्गा के समान राजा दृढ़धन्वा की सुन्दर तथा प्राचीन कथा कहूँगा ॥ ७ ॥ हैहय देश का रक्षक श्रीमान् बुद्धिमान् तथा सत्यपराक्रमी चित्रधर्मा नाम का राजा भया ॥ ८ ॥ उसका दृढ़धन्वा नाम से प्रसिद्ध अतितेजस्वी, सब गुणों से युक्त, सत्य बोलनेवाला धर्मात्मा और पवित्र आचरणवाला पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ कान तक फैले हुये नेत्रवाला,

भूपस्य दृढ़धन्वनः ॥ कथां पुरातनीं रम्यां स्वर्धुनीमिव पावनीम् ॥ ७ ॥ आसीद्धैहयदेशस्य गोप्ता श्रीमान् महीपतिः ॥ चित्रधर्मेति विख्यातो धीमान् सत्यपराक्रमः ॥ ८ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दृढ़धन्वेति विश्रुतः ॥ स सर्वगुणसम्पन्नः सत्यवाग्धार्मिकः शुचिः ॥ ९ ॥ आकर्णान्तविशालाक्षः पृथुवक्षा महाभुजः ॥ अवर्धत महातेजाः सार्धं गुणगणैरसौ ॥१०॥ अधीत्य साङ्गान्निगमांश्चतुरश्चतुरो मुदा ॥ सकृन्निगदमात्रेण प्रागधीतानिव स्फुटम् ॥११॥ दक्षिणां गुरवे दत्त्वा सम्पूज्य विधिवच्च तम् ॥ गुरोरनुज्ञया धीमान् पितुः पुरमजीगतम् ॥१२॥ जनयन्नयनानन्दं निजपत्तनवासिनाम् ॥ चित्रधर्माऽपि तं पुत्रं दृष्ट्वा लेभे परां मुदम् ॥१३॥ युवानं सर्वधर्मज्ञं प्रजानां पालने क्षमम् ॥ अतः परं किमत्रास्ति संसारे सार-

चौड़ी छातीवाला, महा तेजस्वी वह राजा दृढ़धन्वा प्रशस्त गुण समूहों के साथ बढ़ता भया ॥१०॥ वह चतुर राजा दृढ़धन्वा प्रसन्नता के साथ गुरु के मुख से एक बार कहने मात्र से पूर्व में पढ़े हुये के समान व्याकरण आदि छ अङ्गों के साथ चार वेदों का शुद्ध अध्ययनकर ॥ ११ ॥ गुरु को दक्षिणा देकर और विधिपूर्वक उन गुरु की पूजा कर बुद्धिमान् राजा गुरु की आज्ञा से पिता चित्रधर्मा के पुर को गया ॥ १२ ॥ अपने नगर में वास करने वाले प्रजावर्ग के नेत्रों को आनन्दित करता हुआ। जिस पुत्र को देखकर राजा चित्रधर्मा भी

अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ पुत्र जवान, सम्पूर्ण धर्म को जानने वाला और प्रजापालन में समर्थ है ऐसा जानकर सारशून्य संसार में इससे बढ़कर क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ अब मैं दो भुजावाले, मुरली (वंशी) का धारण करने वाले, प्रसन्न मुख वाले, शान्त तथा भक्तों को अभय देने वाले श्रीकृष्णचन्द्र का आराधन करता हूँ ॥ १५ ॥ जिस तरह ध्रुव, अम्बरीष, शर्याति, ययाति प्रमुख राजा, और शिवि, रन्तिदेव, शशविन्दु, भगीरथ ॥ १६ ॥ भीष्म, विदुर, दुष्यन्त और भरत, पृथु, उत्तानपाद, प्रह्लाद (प्रहलाद),

वर्जिते ॥१४॥ आराधयामि श्रीकृष्णं द्विभुजं मुरलीधरम् ॥ प्रसन्नवदनं शान्तं भक्तानाम-भयप्रदम् ॥१५॥ ध्रुवाम्बरीषशर्यातिययातिप्रमुखा नृपाः ॥ शिविश्च रन्तिदेवश्च शशबिन्दु-र्भगीरथः ॥१६॥ भीष्मश्च विदुरश्चैव दुष्यन्तो भरतोऽपि वा ॥ पृथुरुत्तानपादश्च प्रह्ला-दोऽथ विभीषणः ॥ १७ ॥ एते चान्ये च राजानस्त्यक्त्वा भोगाननेकशः ॥ अध्रुवेण ध्रुवं प्राप्ता आराध्य पुरुषोत्तमम् ॥१८॥ अतो मयापि कर्तव्यमरण्ये हरिसेवनम् ॥ छित्वा स्नेहमयं पाशं दारागारसुतादिषु ॥ १६ ॥ इति निश्चित्य मनसा समर्थे दृढधन्वनि ॥ धुरं न्यस्य जगामाशु विरक्तः पुलहाश्रमम् ॥ २० ॥ तत्र गत्वा तपस्तेपे श्रीकृष्णं मनसा

विभीषण ॥ १७ ॥ ये सब राजा तथा और अन्य भी राजा लोग अनेकों भोगों का त्याग कर इस अनित्य शरीर से पुरुषोत्तम भगवान् का आराधन करने से नित्य (सदा रहने वाले) विष्णुपद को चले गये ॥ १८ ॥ इससे स्त्री, मकान पुत्र आदि में स्नेहमय बन्धन को तोड़कर वन में जाकर हरि का सेवन करना हमारा भी कर्तव्य है ॥ १९ ॥ ऐसा मन में निश्चयकर समर्थ राजा दृढ़धन्वा को राज्य का भार देकर स्वयं विरक्त हो शीघ्र ... कामनाओं से निस्पृह हो और

भार देकर स्वयं विरक्त हो श्रीर पुलह ऋषि के आश्रम को चला गया ॥ २० ॥ वहाँ जाकर सम्पूर्ण कामनाओं से निस्पृह हो और भोजन त्याग कर हर समय मन से श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करता हुआ तप करने लगा ॥ २१ ॥ कुछ समय तक तप करके वह राजा चित्रधर्मा हरि भगवान् के परम धाम को चला गया। राजा दृढ़धन्वा भी अपने पिता की वैष्णवी गति को सुनता भया ॥ २२ ॥ उस समय पिता के परमधाम गमन से हर्ष और वियोग होने से शोक युक्त राजा दृढ़धन्वा पितृभक्ति से विद्वानों के वचन में स्थित

स्मरन् ॥ निस्पृहः सर्वकामेभ्यो निराहारो निरन्तरम् ॥ २१ ॥ कियत्कालं तपस्तप्त्वा हरेर्धाम जगाम सः ॥ दृढधन्वापि शुश्राव स्वपितुर्वैष्णवीं गतिम् ॥ २२ ॥ हर्षशोकसमाविष्टो ह्यकरोदौर्ध्वदैहिकम् ॥ पितृभक्त्या महीपालो विद्वज्जनवचःस्थिति ॥ २३ ॥ पुष्करावर्तके पुण्ये नगरेऽत्यन्तशोभिते ॥ राज्यं चकार भूपालो नीतिशास्त्रविशारदः ॥ २४ ॥ तस्य शीलवती भार्या नाम्ना या गुणसुन्दरी ॥ विदर्भराजतनया रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ २५ ॥ पुत्रान् सा सुषुवे दिव्यांश्चतुराञ्छुभान् ॥ पुत्री चारुमतीं नाम सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ २६ ॥ चित्रवाक् चित्रवाहश्च मणिमांश्चित्रकुण्डलः ॥ सर्वे ते मानिनः शूरा विख्याता नामभिः पृथक् ॥ २७ ॥ दृढधन्वा गुणैः ख्यातः शान्तो दान्तो दृढव्रतः ॥ रूपवान् गुणवाञ्छूरः

होकर पारलौकिक क्रिया को करता भया ॥ २३ ॥ नीतिशास्त्र में विशारद (चतुर) राजा अत्यन्त शोभित पवित्र पुरुष्करावर्तक नगर में राज्य करने लगा ॥ २४ ॥ उसकी स्त्री शील रखने वाली गुणसुन्दरी नामक थी, पृथ्वी पर रूप में उसके समान दूसरी स्त्री नहीं ऐसी वह विदर्भराज की कन्या थी ॥ २५ ॥ वह गुणसुन्दरी सुन्दर, चतुर, शुभ आचरण वाले चार पुत्रों को पैदा करती हुई और सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त चारुमती नामक कन्या को पैदा करती भयी ॥ २६ ॥ वे सब मान करने वाले शूरवीर, चित्रवाक्, चित्रवाह, मणिमान और

चित्रकुण्डल नाम से पृथक् विख्यात होते भये ॥ २७ ॥ राजा दृढ़धन्वा गुणों करके प्रसिद्ध, शान्त, दान्त, सत्यप्रतिज्ञा वाला रूपवान्, गुणवान्, शूरवीर श्रीमान्, स्वभाव से सुन्दर ॥ २८ ॥ चार वेद और व्याकरण आदि ६ अङ्गों को जानने वाला, वाग्मी (वाक्चतुर), धनुविद्या में निपुण, अच्छी तरह से अरिषड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को जीतने वाला, और शत्रु-समुदाय का नाश करने वाला ॥ २९ ॥ क्षमा में पृथ्वी के समान, गम्भीरता में समुद्र के समान, समता (सम व्यवहार) में पितामह (ब्रह्मा)

श्रीमान् प्रकृतिसुन्दरः ॥ २८ ॥ वेदवेदाङ्गविद्वाग्मी धनुर्विद्याविशारदः ॥ सुनिर्जितारिषड्वर्गः शत्रुसङ्घविदारणः ॥२९॥ क्षमया पृथिवीतुल्यो गाम्भीर्ये सागरोपमः ॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ ३० ॥ एकपत्नीव्रतधरो रघुनाथ इवापरः ॥ अत्युग्रवीर्यः सद्धर्मी कार्तवीर्य इवापरः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच—एकदा निशि सुप्तस्य चिन्ताऽऽसीत्तस्य भूपतेः ॥ अहोऽयं वैभवः केन पुण्येन महताऽभवत् ॥ ३२ ॥ न मया च तपस्तप्तं न दत्तं न हुतं क्वचित् ॥ कमिदं परिपृच्छामि मम भाग्यस्य कारणम् ॥ ३३ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य रजनी विरतिं गता ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥३४॥

के समान, प्रसन्नता में शङ्कर के समान ॥ ३० ॥ एकपत्नी व्रत (एक ही स्त्री से विवाह करने का व्रत) को करने वाले दूसरे रामचन्द्र के समान, अत्यन्त उग्र पराक्रमशाली दूसरे कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) के समान था ॥ ३१ ॥ नारायण बोले। एक समय रात्रि में शयन किये हुए उस राजा दृढ़धन्वा को चिन्ता हुई कि अहो ! यह वैभव (सम्पत्ति) किस महान पुण्य के कारण भया है ॥ ३२ ॥
न तो मैंने तप किया, न तो दान [illegible]

पूछूँ ॥ ३३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते ही राजा दृढ़धन्वा की रात्रि बीत गई प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर विधिपूर्वक स्नान कर ॥ ३४ ॥ उदय को प्राप्त सूर्यनारायण का उपस्थान कर भगवान् की कला का पूजा कर अर्थात् देवमन्दिरों में जाकर देवता का पूजन कर ब्राह्मणों को दान देकर तथा नमस्कार करके घोड़े पर सवार हो गया ॥ ३५ ॥ उसके बाद शिकार खेलने की इच्छा से शीघ्र वन को गया वहाँ पर बहुत से मृग, वराह (सूअर), सिंह और गवय (चवरी गाय) को मारता भया ॥ ३६ ॥ उसी समय राजा

उपस्थायार्कमुद्यन्तं सन्तर्प्य भगवत्कलाः ॥ दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो नमस्कृत्वाऽश्वमारुहत् ॥३५॥ ततोऽरण्यं जगामाशु मृगयासक्तमानसः ॥ मृगान् वराहान् शार्दूलाञ्जघान गवयान्बहून् ॥ ३६ ॥ कश्चिन्मृगो हतोऽरण्ये बाणेन दृढधन्वना ॥ वनाद्वनान्तरं यातो बाणमादाय सत्वरम् ॥ ३७ ॥ शोणितस्रुतिमार्गेण राजाऽप्यनुययौ मृगम् ॥ मृगः कुत्रापि संलीनो राजा बभ्राम तद्वनम् ॥ ३८ ॥ तृषाक्रान्तः स कासारं ददर्श सागरोपमम् ॥ तत्र गत्वाशु पीत्वाऽसौ पानीयं तीरमागतः ॥३९॥ ततो ददर्श न्यग्रोधं घनच्छायं महातरुम् ॥ तज्जटायां निबद्ध्याश्वं निषसाद महीपतिः ॥४०॥ तत्रागमत् खगः कश्चित् कीरः परम-

दृढ़धन्वा के बाण से घायल होकर कोई बाण सहित शीघ्र एक वन से दूसरे वन को चला गया ॥ ३७ ॥ रुधिर के गिरे हुए मार्ग से राजा भी मृग के पीछे गया परन्तु मृग कहीं झाड़ी वगैरह में छिप गया और राजा उस वन में भ्रमण करता हुआ ॥ ३८ ॥ वह राजा पिपासा से व्याकुल समुद्र के समान एक तालाब को देखा वहाँ जल्दी से गया और पानी पीकर तीर भाग में आया ॥ ३९ ॥ वहाँ घन छाया वाले एक विशाल बट वृक्ष को देखा। उस वृक्ष की जटा में घोड़े को बाँधकर राजा बैठ गया ॥ ४० ॥ उसी समय वहाँ पर

कोई एक परम सुन्दर कीर (सुग्गा) राजा को मोहित करने वाली तुलना रहित मनुष्य वाणी को बोलता हुआ आया ॥ ४१ ॥ अकेले राजा दृढ़धन्वा को बैठे देख उनका सम्बोधित करता हुआ एक ही श्लोक को बार बार पढ़ने लगा ॥ ४२ ॥ कि इस पृथ्वी पर विद्यमान अतुल सुख को देख कर तू तत्व (आत्मा) का चिन्तन नहीं करता है तो इस संसार के पार को कैसे जायगा ? ॥ ४३ ॥ बार बार इस श्लोक को राजा दृढ़धन्वा के सामने पढ़ने लगा। राजा उसके वचन को सुनकर प्रसन्न होता हुआ मोहित हो गया ॥ ४४ ॥ कि

शोभनः ॥ मानुषीमीरयन् वाणीमतुलां नृपमोहिनीम् ॥४१॥ शुकः पपाठ सुश्लोकमेकमेव पुनः पुनः ॥ सम्बोध्य दृढधन्वानमेकाकिनमुपस्थितम् ॥४२॥ विद्यमानातुलसुखमालोक्याऽतीव भूतले ॥ न चिन्तयसि तत्त्वं त्वं तत्कथं पारमेष्यसि ॥४३॥ वारं वारमिदं पद्यं पपाठ नृपतेः पुरः ॥ श्रुत्वा तस्य वचो राजा मुमुदे मुमुहेऽपि च ॥ ४४ ॥ किमेतदुक्तवान् कीर एकं पद्यं पुनः पुनः । नारिकेलमिवागम्यं दुर्बोधं सारसम्भृतम् ॥४५॥ किं वा नायं भवेत् कृष्णद्वैपायनसुतः परः ॥ श्रीकृष्णसेवकं मूढं मग्नं संसारसागरे ॥४६॥ विष्णुरातमिवोद्धर्तुं कृपया मां समागतः ॥ इति चिन्तयतस्तस्य तत्सेना समुपागता ॥ ४७ ॥ कीरस्त्वदर्शनं

यह शुक पक्षी ने दुःख से जानने योग्य, सार से भरे हुए नारिकेल फल के समान अगम्य एक ही श्लोक को बार बार पढ़ता हुआ क्या कहा ? ॥ ४५ ॥ क्या ये कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) के श्रेष्ठ पुत्र शुकदेवजी तो नहीं हैं ? श्रीकृष्णचन्द्र के सेवक, मूढ़ मुझको इस संसारसागर में डूबे हुये देखकर ॥ ४६ ॥ राजा परीक्षित के समान कृपा कर उद्धार करने की इच्छा से मेरे पास आये हैं क्या ? इस तरह चिन्ता करते हुये राजा दृढ़धन्वा की सेना समीप आ गई ॥ ४७ ॥ ... शुक ... देकर स्वयं अन्तर्धान (अलक्षित)

तरह चिन्ता करते हुये राजा दृढ़धन्वा की सेना समीप आ गई ॥ ४७ ॥ शुक पक्षी राजा को उपदेश देकर स्वयं अन्तर्धान (अलक्षित)

हो गया। राजा अपने पुर को आकर उस शुकपक्षी के वचन का स्मरण करता हुआ ॥ ४८ ॥ बोलाने पर भी नहीं बोलता है और निद्रा रहित हो भोजन को भी त्याग दिया तब एकान्त में उसकी रानी आकर राजा से पूछती भई ॥ ४९ ॥ गुणसुन्दरी बोली। हे पुरुषों में श्रेष्ठ! यह मन में मलिनता क्यों हुई ? हे भूपाल! पृथिवी के रक्षक! उठिये उठिये। भोगों को भोगिये और वचन बोलिये ॥५०॥

प्रासो बोधयित्वा नराधिपम्। राजा स्वपुरमागत्य कीरवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥ वाच्यमानोऽपि नावोचद्विनिद्रस्त्यक्तभोजनः ॥ राज्ञी रहः समागत्य राजानं पर्यपृच्छत ॥ ४९ ॥ गुणसुन्दर्युवाच—भो भो पुरुषशार्दूल! दौर्मनस्यमिदं कुतः ? ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भूपाल! भुङ्क्ष्व भोगान् वचो वद ॥ ५० ॥ एवं स्त्रियाऽनुनीतोऽपि न किञ्चिदवदन्नृपः ॥ स्मरन् शुकवचस्तथ्यं दुर्ज्ञेयममरैरपि ॥ ५१ ॥ साऽपि बाला विनिःश्वस्य भर्तृदुःखातिपीडिता ॥ न बुबोध निजस्वामिचिन्ताकारणमुत्कटम् ॥ ५२ ॥ एवं चिन्तानिमग्नस्य राज्ञः कालः कियान् गतः ॥ सन्देहसागरोत्तारे हेतुं नैवाभिपश्यत ॥ ५३ ॥ नारद उवाच—इति चिन्तयतो

देवताओं से भी दुःख से जानने योग्य उस शुक पक्षी के सत्य वचन का स्मरण करता हुआ राजा दृढ़धन्वा इस प्रकार रानी गुणसुन्दरी के प्रार्थना करने पर भी कुछ नहीं बोला ॥ ५१ ॥ पति के दुःख से अत्यन्त पीड़ित वह रानी भी दीर्घ श्वास लेकर अपने स्वामी के चिन्ता का उत्कट कारण को नहीं जान सकी ॥ ५२ ॥ इस प्रकार चिन्ता में मग्न राजा के कितने ही समय बीत गये, परन्तु सन्देह-सागर से पार करने वाला कोई भी कारण नहीं देखा ॥ ५३ ॥ नारद जी बोले। हे मुने! इस तरह चिन्ता को करते हुये पृथिवीपति

राजा दृढ़धन्वा का क्या हुआ सो आप कहें। हे मुने! थोड़ा भी निर्मल वैष्णव चरित्र सुनने से पापों का नाश हो जाता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढ़धन्वोपाख्याने दृढ़धन्वनो मनःखेदो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

———:०:———

धरापतेर्वद जातं दृढ़धन्वनश्च किम् ? ॥ विमलं चरितं हि वैष्णवं कलुषं हन्ति मनाक्छ्रुतं मुने ॥ ५४ ॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढ-धन्वोपाख्याने मनःखेदो नाम त्रयोदशोऽध्याय :॥ १३ ॥

श्रीनारायण उवाच—अथ चिन्तातुरस्यास्य गृहं वाल्मीकिराययौ ॥ यो रामचरितं दिव्यं चकार परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ दूरादालोक्य भूपालः समुत्थाय ससम्भ्रमम् ॥ अनीन-मत्तच्चरणौ दण्डवद्भक्तिसंयुतः ॥२॥ सम्पूज्य स्थापयामास तमृषिं परमासने ॥ पादावङ्कगतौ कृत्वा कराभ्यां समलालयत् ॥ ३ ॥ पादावनेजनीरापः शिरसा धारयन्मुदा ॥ उवाच

श्रीनारायण जी बोले। इसके बाद चिन्ता से राजा दृढ़धन्वा के घर वाल्मीकि मुनि आये जिन्होंने परम अद्भुत तथा सुन्दर रामचन्द्र जी का चरित्र वर्णन किया है ॥ १ ॥ राजा दृढ़धन्वा दूर से वाल्मीकि मुनि को आते हुए देख कर घबड़ाहट के साथ जल्दी से उठ कर भक्ति के साथ उन वाल्मीकि मुनि के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करता भया ॥ २ ॥ भली भाँति पूजा कर उत्तम आसन पर

से धारण कर शुक पक्षी की बात स्मरण करता हुआ राजा दृढ़धन्वा मधुर वचन से कहता भया ॥ ४ ॥ दृढ़धन्वा बोला। हे भगवन्! इस समय मैं कृतकृत्य हूँ। भाग्यवान् हूँ। आज मेरा जन्म सफल हुआ हे प्रभो! आज मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥ आज आप के प्रत्यक्ष दर्शन से मेरा शास्त्रादिकों का सुना हुआ सफल हुआ। हे जगत् के पावन करनेवालों के भी पावन! आज मैं बड़े भाग्य का

स्निग्धया वाचा स्मरन् कीरवचो नृपः ॥ ४ ॥ दृढधन्वोवाच—भगवन्कृतकृत्योऽहं भाग्यवानस्मि साम्प्रतम् ॥ अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ ५ ॥ श्रुतं मे सफलं जातं यद्भवानक्षिगोचरः ॥ किं वर्ण्यं मे महद्भाग्यं जगत्पावनपावन ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच—इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं विरराम स भूपतिः ॥ वाल्मीकिरपि तं दृष्ट्वा राजानं विनयान्वितम् ॥ ७ ॥ उवाच परमप्रीती हर्षयन् जनतां मुनिः ॥ वाल्मीकिरुवाच—साधु साधु नृपश्रेष्ठ त्वय्येतदुपपद्यते ॥ ८ ॥ चिन्तातुरः कथं राजन् वद सर्वं मनोगतम् ॥ किञ्चिद्वक्तुं स्पृहा तेऽस्ति तद्वदस्व महामते ॥ ९ ॥ दृढधन्वो-वाच—भवदीयपदाम्भोजकृपया मे सुखं सदा ॥ परन्त्वेको महान् विद्वन् सन्देहो हृदये मम ॥ १० ॥ तमपाकुरु

क्या वर्णन करूँ? ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले। इस तरह वाल्मीकि मुनि को कहकर वह राजा चुप हो गया, बाद वाल्मीकि मुनि उस राजा को विनययुक्त देखकर ॥ ७ ॥ बड़े प्रसन्न वाल्मीकि मुनि जनता को हर्ष उत्पन्न करते हुए बोले। वाल्मीकि मुनि बोले। हे नृपश्रेष्ठ! ठीक है ठीक है, तुममें यह बात युक्त होती है ॥ ८ ॥ हे राजन्! तुम चिन्ता से आतुर क्यों हो सो सब मन की बात कहो। तुम्हारी कुछ कहने की इच्छा है हे महामते! उसे कहो ॥ ९ ॥ राजा दृढ़धन्वा बोला। आपके चरणकमल की कृपा से हमेशा

सुख है। परन्तु हे विद्वन्! हमारे हृदय में एक बड़ा सन्देह है ॥ १० ॥ वन में रहने वाले शुक पक्षी के मुख से निकले हुए बाण के समान उस बचन को दूर करे किसी समय शिकार खेलने के लिये मैं गहन वन में गया ॥ ११ ॥ वहाँ भ्रमण करता हुआ एक तालाब देखा उसका जल पीया बाद थकावट दूर करने लिये वटबृक्ष के नीचे बैठ गया ॥ १२ ॥ अत्यन्त घन तथा सुन्दर मन, और नेत्र को

शल्यं त्वं वन्यकोरमुखोद्गतम् ॥ कदाचिन्मृगयाकामो गतोऽहं गहने वने ॥११॥ भ्रमन्न-
पश्यं कासारं तत्र पातं जलं मया ॥ श्रमापनोदनाकाङ्क्षी महान्यग्रोधमाश्रितः ॥ १२ ॥
स्निग्धच्छायं सुनिबिडं मनोनयननन्दनम् ॥ तत्रापेश्यं स्थितं कीरं मनोमोदविधायकम्
॥ १३ ॥ दत्तदृष्टिरहं यावज्जातस्तस्मिन् पतत्रिणि ॥ तावन्मां सम्मूखीभूय श्लोकमेकं
पपाठ ह ॥१४॥ विद्यमानातुलसुखमालोक्यातीव भूतले ॥ न चिन्तयसि तत्त्वं त्वं तत्कथं
पारमेष्यसि ? ॥ १५ ॥ इति वाचः शुकेनोक्ता आकर्ण्याहं सुविस्मितः ॥ न तज्जानाम्यहं
ब्रह्मन् किमुवाच हारच्छदः ॥१६॥ इमं मे हार्दसन्देहं भवानुच्छेत्तुमर्हति ॥ मम राज्यसुखं
पुत्राश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥१७॥ पत्नी पतिव्रता रम्या गजाश्वरथपत्तयः ॥ समृद्धिरतुला

आनन्द देने वाले उस बृक्ष पर बैठे भये देखने में सुन्दर शुक पक्षी को देखा ॥ १३ ॥ जब उस शुक पक्षी पर हमारी दृष्टि गई तब वह पक्षी हमारे सन्मुख होकर एक श्लोक को पढ़ता भया ॥ १४ ॥ कि इस पृथिवी पर विद्यमान अतुल सुख को देखकर तू तत्त्व (आत्मा) का चिन्तन नहीं करता है तो इस संसार के पार को कैसे जायेगा ? ॥ १५ ॥ मैं इस प्रकार शुक पक्षी के बचन को सुनकर विस्मित हो

हमारा राज्य सुख तथा सुन्दर चार पुत्र ॥ १७ ॥ सुन्दर पतिव्रता स्त्री, हाथी, घोड़ा, रथ, सेना, हे ब्रह्मन्! ये सब अतुल समृद्धि इस समय किस पुण्य से हैं? ॥ १८ ॥ यह सब विचार कर संक्षेप में कहने को आप योग्य हैं। राजा दृढ़धन्वा के वचन को वाल्मीकि मुनि सुनकर ॥ १९ ॥ प्राणायाम कर एक मुहूर्त तक ध्यान में मग्न हो हाथ में रखे हुये आँवले के फल के समान विश्व (संसार) के भूत, भविष्यत् और जो वर्तमान विषय हैं ॥ २० ॥ उनका हृदय में निश्चय कर वह वाल्मीकि मुनि राजा से बोले। वाल्मीकि मुनि

ब्रह्मन् केन पुण्येन मेऽधुना ? ॥ १८ ॥ एतत्सर्वं समासेन विचार्य वक्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वा वाक्यानि भूपस्य वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ॥१९॥ प्राणायामपरो भूत्वा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ करामलकवद्विश्वं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥२०॥ विलोक्य हृदि निश्चित्य राजानं प्रत्युवाच सः ॥ वाल्मीकिरुवाच—शृणु भूपतिशार्दूल प्राग्जन्मचरितं तव ॥ २१ ॥ पुराजन्मनि राजेन्द्र भवान् द्रविडदेशजः ॥ द्विजः कश्चित् सुदेवाख्यस्ताम्रपर्णीतटे वसन् ॥ २२ ॥ धार्मिकः सत्यवादी च यथालाभेन तोषवान् ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नो विष्णुभक्तिपरायणः ॥ २३ ॥ अग्निहोत्रादियागैश्च तोषयामास तं हरिम् ॥ सदैवं वर्तमानस्य भार्याऽऽसीद्वर-वर्णिनी ॥ २४ ॥ गौतमीति सुविख्याता गौतमस्य सुता शुभा ॥ पतिं पर्यचरत् प्रेम्णा

बोले। हे राजाओं में श्रेष्ठ! अपने पूर्वजन्म का चरित्र तुम सुनो ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! पूर्वजन्म में आप द्रविड़ देश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे वास करने वाले सुदेव नामक ब्राह्मण थे ॥ २२ ॥ धार्मिक, सत्यवादी, जो कुछ मिले उसी में प्रसन्न, वेदाध्ययन में सम्पन्न, विष्णु भक्ति में परायण होकर ॥ २३ ॥ अग्निहोत्र आदि यज्ञों के द्वारा हरि भगवान को प्रसन्न किया। इस प्रकार रहते हुये

तुमको गुणवती स्त्री थी ॥ २४ ॥ वह गौतम ऋषि की सुन्दर कन्या गौतमी नाम से प्रसिद्ध शङ्कर की सेवा में तत्पर पार्वती के समान तुम्हारी प्रेम से सेवा करती थी ॥ २५ ॥ गृहस्थाश्रम के धर्म में धर्मपूर्वक वास करते बहुत समय बीत गया परन्तु तुमको सन्तति नहीं हुई ॥ २६ ॥ एक दिन अपने स्त्री से सेवित आसन पर बैठा हुआ दुःखित ब्राह्मण गद्गद स्वर से बोला ॥ २७ ॥ अयि सुन्दरि !

भवानीव भवं प्रभुम् ॥२५॥ गृहमेधविधौ तस्य वर्त्तमानस्य धर्मतः ॥ व्यतीतः सुमहान् कालः प्रापसौ सन्ततिं न हि ॥२६॥ एकदाऽऽसनसंविष्टः सेव्यमानः स्वकान्तया ॥ उवाच वचनं विप्रो विषण्णो गद्गदाक्षरम् ॥२७॥ अयि सुन्दरि संसारे सुखं नास्ति सुतात्परम् ॥ लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ॥ २८ ॥ सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ तमप्राप्य वरं पुत्रं जीवितं मम निष्फलम् ॥ २९ ॥ न लालितो मया पुत्रो वेदार्थो न प्रबोधितः ॥ नोद्वाहश्च कृतस्तस्य वृथा जन्म गतं मम ॥३०॥ सद्यो मे मृति-रेवास्तु न ह्यायुश्च प्रियं मम ॥ इत्थं प्रियवचः श्रुत्वा सुन्दरी खिन्नमानसा ॥३१॥ समा-श्वासयितुं धीरा प्रियवाक्यविशारदा ॥ अवावदद्वचः सौम्यं प्रियप्रेमपरिप्लुता ॥ ३२ ॥

संसार में पुत्र से बढ़कर दूसरा सुख नहीं है और तप दान से उत्पन्न पुण्य दूसरे लोक में सुख देने वाला होता है ॥ २८ ॥ शुद्ध वंश में होने वाली सन्तति इस लोक तथा परलोक में कल्याण करने वाली होती है उस श्रेष्ठ पुत्र के न मिलने से मेरा जीवन निष्फल है ॥२९॥ न तो मैंने पुत्र का प्यार किया और न वेद पढ़ने के लिये सोने से जगाया न तो उसका विवाह किया इस लिये मेरा जन्म व्यर्थ में [illegible] ॥ ३० ॥ [illegible]

खिन्नमन हुई ॥ ३१ ॥ बाद धैर्य को अवलंबन करती हुई, प्रिय वचन बोलने में चतुर प्रिय पति के प्रेम में मग्न वह स्त्री अपने पति को समझाने के लिये सुन्दर वचन बोली ॥ ३२ ॥ गौतमी बोली—हे प्राणेश्वर ! अब इस तरह तुच्छ वचनों को न कहिये । आपके समान भगवद्भक्त विद्वान् लोग मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ हे विभो ! आप सत्यधर्म में तत्पर रहने वाले हो । आपने स्वर्ग को जीत लिया है । हे सुव्रत ! अर्थात् हे सुन्दर व्रत करने वाले ! आप ज्ञानी को पुत्रों से सुख की प्राप्ति कैसी ? अर्थात् ज्ञानी पुरुष पुत्रों से होने

गौतम्युवाच—मा मा प्राणेश्वर ब्रूहि तुच्छवाक्यानि साम्प्रतम् ॥ भवद्विधा भागवता नैव मुह्यन्ति सूरयः ॥ ३३ ॥ सत्यधर्मपरोऽसि त्वं जितः स्वर्गस्त्वया विभो ॥ कथं पुत्रैः सुखावाप्तिर्ज्ञानिनस्तव सुव्रत ! ॥ ३४ ॥ चित्रकेतुः पुरा ब्रह्मन् पुत्रशोकेन तापितः ॥ स नारदेनाङ्गिरसाऽभ्येत्य सन्तारितोऽभवत् ॥३५॥ तथाङ्गराजो दुष्पुत्राद्वनाद्वनमगान्निशि ॥ तथा ते सन्ततिः स्वामिन् दुःखदा च भविष्यति ॥ ३६ ॥ तथापि तव सत्पुत्रलालसा चेत्तपोधन ॥ आराधय जगन्नाथं हरिं सर्वार्थदं मुदा ॥ ३७ ॥ यमाराध्य पुरा ब्रह्मन् कर्दमः पुत्रमाप्तवान् ॥ सांख्याचार्यं स्तुतं देवं कपिलं योगिनां वरम् ॥ ३८ ॥ धर्मपत्न्या वचश्चेत्थं

१०

वाले सुख की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! पहले चित्रकेतु नामक राजा पुत्र शोक से सन्तप्त हुआ तब नारद और अङ्गिरा ऋषि के आने पर पुत्रशोक से मुक्त हो संसार से उद्धार को प्राप्त हुआ ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार राजा अङ्ग वेन नामक दुष्ट पुत्र के कारण रात्रि के समय वन को चला गया । इसी तरह हे स्वामिन ! आपको भी सन्तति दुःख देने वाली होगी ॥ ३६ ॥ फिर भी हे तपोधन ! यदि आपको सत्पुत्र की लालसा है तो जगत् के नाथ, समस्त अर्थों के दाता, हरि भगवान् की आराधना प्रसन्नता के साथ कर ॥३७॥

हे ब्रह्मन् ! पहले कर्दम ऋषि ने जिनकी आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया जो कि पुत्र सांख्याचार्यों से प्रशंसित, योगियों में श्रेष्ठ कपिलदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ इस प्रकार अपनी धर्मपत्नी के वचन सुनकर तथा निश्चय कर उस अपनी गौतमी स्त्री के साथ ताम्रपर्णी नदी के तट पर गया ॥ ३९ ॥ बाद वहाँ जाकर उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर अत्यन्त श्रेष्ठ तप करता भया । पाँच पाँच दिन के बाद सूखे पत्ते तथा जल का आहार करता था ॥ ४० ॥ इस प्रकार तप करते उस तपोनिधि सुदेव ब्राह्मण को

श्रुत्वा विप्रशिरोमणिः ॥ निश्चित्यैवं तया सार्धं ताम्रपर्णीतटं गतः ॥ ३९ ॥ स्नात्वाऽथ विरजे पुण्ये चचार परमं तपः ॥ शुष्कपर्णजलाहारः पञ्चमे पञ्चमे दिने ॥४०॥ चत्वार्यब्द-सहस्राणि गतान्येवं तपोनिधेः ॥ तस्यैतत्तपसां ब्रह्मंस्त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥ ४१ ॥ अत्युग्रं तत्तपो दृष्ट्वा भगवान् भक्तवत्सलः ॥ प्रादुर्बभूव तरसा गरुडोपरि संस्थितः ॥ ४२ ॥ श्रीनारायण उवाच—तं दृष्ट्वा नवजलदोपमं मुरारिं दोर्दण्डैर्जगदवनक्षमैश्चतुर्भिः ॥ संलक्ष्य मुदितमुखं सुदेवशर्मा साष्टाङ्गं नतिमकरोन्मुदा मुकुन्दम् ॥४३॥ इति श्रीबृहन्नार-दीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

चार हजार वर्ष व्यतीत हो गये हे ब्रह्मन् ! उसके इस तपस्या से तीनों लोक काँप उठे ॥ ४१ ॥ भक्तवत्सल भगवान् उस सुदेव ब्राह्मण के अत्यन्त उग्र तपस्या को देखकर जल्दी से गरुड़ पर सवार होकर प्रगट भये ॥ ४२ ॥ श्रीनारायण बोले । नवीन मेघ के समान, जगत् की रक्षा करने में समर्थ चार भुजा वाले, प्रसन्न मुरारि को देखकर सुदेवशर्मा ब्राह्मण हर्ष के साथ मुकुन्द भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ इति श्री[illegible] [illegible]दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारायण बोले। बाद सुदेव शर्मा ब्राह्मण हाथ जोड़कर गद्‌गद स्वर से भक्तवत्सल श्रीकृष्ण देव की स्तुति करता हुआ ॥ १ ॥ हे देव ! हे देवेश ! हे त्रैलोक्य का अभय देने वाले ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार है। हे सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार है मैं आपकी शरण आया हू ॥ २ ॥ हे परमेशान ! हे शरणागतवत्सल ! मेरी रक्षा करो। हे जगत् के समस्त प्राणियों से नमस्कार किये जाने वाले ! हे शरण में आये हुए लोगों के भय को नाश करने वाले ! आपको नमस्कार है ॥ ३ ॥ आप जय के स्वरूप हो, जय के देनेवाले हो,

श्रीनारायण उवाच—ततस्तुष्टाव तं देवं श्रीकृष्णं भक्तवत्सलम् ॥ बद्धाञ्जलिपटो भूत्वा सुदेवो गद्‌गदाक्षरम् ॥ १ ॥ नमस्ते देव देवेश त्रैलोक्याभयद प्रभो ॥ सर्वेश्वर नमस्तेऽस्तु त्वामहं शरणं गतः ॥ २ ॥ पाहि मां परमेशान शरणागतवत्सल ॥ जगद्वन्द्य नमस्तेऽस्तु प्रपन्न भयभञ्जन ॥ ३ ॥ जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम् ॥ विश्वाधारं विश्वसंस्थं विश्वकारणकारणम् ॥ ४ ॥ विश्वकरक्षकं दिव्यं विश्वघ्नं विश्वपञ्जरम् ॥ फलबीजं फलाधारं फल मूलं फल प्रदम ॥ ५ ॥ तेजः स्वरूपं तेजोदं सर्व तेजस्विनी वरम् ॥ कृष्णं विष्णु वासुदेवं वन्देऽहं दीनवत्सलम् ॥ ६ ॥ न त्वां ब्रह्मादयो देवाः स्तोतुं शक्ता जगत्प्रभो ॥ कथं

जय के मालिक हो, जय के कारण हो, विश्व के आधार हो, विश्व के एक रक्षक हो, दिव्य हो, विश्व के स्थान हो, फलों के बीज हो, फलों के आधार हो, विश्व में स्थित हो, विश्व के कारण के कारण हो ॥ ४ ॥ फलों के मूल हो, फलों के देनेवाले हो ॥ ५ ॥ तेजःस्वरूप हो, तेज के दाता हो सब तेजस्वियों में श्रेष्ठ हो कृष्ण (हृदयान्धकार के नाशक) हो, बिष्णु (व्यापक) हो, वासुदेव (देवताओं के वासस्थान अथवा वसुदेव के पुत्र) हो, दीनवत्सल हो ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥ हे जगत्प्रभो ! आपकी स्तुति करने

में ब्रह्मादि देवता भी समर्थ नहीं हैं। हे जनार्दन! मैं तो अल्पबुद्धि वाला, मन्द, मनुष्य होकर किस तरह स्तुति करने में समर्थ हो सकता हूँ ॥ ७ ॥ अत्यन्त, दुःखी, दीन, और आपका भक्त होने पर भी मेरी उपेक्षा (त्याग) करते हो। हे प्रभो! संसार में वह आपकी लोकबन्धुता क्यों व्यर्थ में नष्ट हो गई ॥ ८ ॥ वाल्मीकि ऋषि बोले। सुदेवशर्मा ब्राह्मण इस प्रकार विष्णु भगवान् की स्तुति कर हरि के

मन्दो मनुष्योऽहमल्पबुद्धिर्जनार्दन ॥ ७ ॥ अतिदुःखतरं दीनं त्वद्भक्तं मामुपेक्षसे ॥ तत्कथं लोकबन्धुत्वं प्रभो लोके वृथा गतम् ॥ ८ ॥ वाल्मीकिरुवाच—इत्यभिष्टूय भूमानं द्विजस्तस्थौ हरेः पुरः ॥ तदाकर्ण्य हरिर्वाक्यमुवाच जलदस्वनः ॥ ९ ॥ श्री हरिरुवाच—सम्यक् सम्पादितं वत्स यत्त्वया चरितं तपः ॥ किमिच्छसि महाप्राज्ञ तपोधन वदस्व मे ॥ १० ॥ तत्तेऽहं वितरिष्यामि सन्तुष्टस्तपसा तव ॥ एतादृशं महत्कर्म न केनापि कृतं पुरा ॥११॥ सुदेव उवाच—यदि प्रीतोऽसि हेनाथ दीनबन्धो दयानिधे ॥ सत्पुत्रं देहि मे विष्णो पुराण पुरुषोत्तम ॥१२॥ हरे पुत्रं बिना शून्यं गार्हस्थ्यं मे न रोचते ॥ इति विप्रवचः श्रुत्वा जगाद हरिरीश्वरः ॥१३॥ श्री हरिरुवाच—

सामने खड़ा हो गया। हरि भगवान् उसके वचन सुनकर मेघ के समान गम्भीर वचन से बोले ॥९॥ श्रीहरि बोले। हे वत्स! तुमने जो तप किया वह बहुत अच्छी तरह से किया। हे महाप्राज्ञ! हे तपोधन! क्या चाहते हो? सो मुझसे कहो ॥१०॥ तुम्हारे तप से प्रसन्न मैं इस वर को तुम्हारे लिए दूँगा क्योंकि आज के पहले ऐसा बड़ा भारी कर्म किसी ने भी नहीं किया ॥११॥ सुदेवशर्मा बोले। हे नाथ!

पुत्र के विना सूना यह गृहस्थाश्रम—धर्म मुझको प्रिय नहीं लगता । इस इस प्रकार हरि भगवान् सुदेवशर्मा ब्राह्मण के वचन को सुनकर बोले ॥१३॥ श्रीहरि भगवान बोले । हे द्विज ! पुत्र को छोड़ कर बाकी जो न देने के योग्य हैं उनको भी तुम्हारे लिये दूँगा । क्योंकि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिये पुत्र का सुख नहीं लिखा है ॥१४॥ मैंने तुम्हारे भालदेश में होने वाले समस्त अक्षरों को देखा उसमें सात जन्म तक तुमको पुत्र का सुख नहीं है ॥१५॥ इस प्रकार वज्रप्रहार के समान निष्ठुर हरि भगवान् के वचन को सुनकर जड़ के कट जाने से

अदेयमपि ते सर्वं दास्ये पुत्रं विना द्विज ॥ तव पुत्रसुखं वत्स विधात्रा नैव निर्मितम् ॥१४॥ त्वदीयभालफलके वर्णाः सर्वे मयेक्षिताः ॥ तत्र नैवास्ति ते पुत्रसुखं सप्तसु जन्मसु ॥१५॥ इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यं वज्रनिर्घातनिष्ठुरम् ॥ स पपात महीपृष्ठे छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१६॥ पतिं पतितमालोक्य प्रमदाऽत्यन्तदुःखिता ॥ पश्यन्ती स्वामिनं पुत्रस्पृहाशून्यमरूरुदत् ॥१७॥ पश्चाद्धैर्यं समालम्ब्य साऽवोचत् पतितं पतिम् ॥ गौतम्युवाच—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे नाथ किं न स्मरसि मे वचः ॥१८॥ विधात्रा लिखितं भाले तल्लभेत सुखासुखम् ॥ किं करोति रमानाथः स्वकृतं भुञ्जते नराः ॥१९॥ अभाग्यस्य कृतोद्योगो मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ तस्य

वृक्ष के समान वह सुदेव शर्मा ब्राह्मण पृथिवी तल पर गिर गया ॥१६॥ पति को गिरे हुए देखकर गौतमी स्त्री अत्यन्त दुःखित हुई और पुत्र की अभिलाषा से वञ्चित अपने स्वामी को देखती हुई रोदन करने लगी ॥१७॥ बाद धैर्य का आश्रय लेकर गौतमी स्त्री गिरे हुए पति से बोली । गौतमी बोली—हे नाथ ! उठिये उठिये क्या मेरे वचन का स्मरण नहीं करते हैं ? ॥१८॥ ब्रह्मा ने भालदेश में जो सुख दुःख लिखा है वह मिलता है । रमानाथ क्या करते हैं ? मनुष्य अपने किये कर्म का फल भोगता है ॥१९॥ अभागी पुरुष का उद्योग

मरणासन्न पुरुष को औषध देने के समान निष्फल हो जाता है। जिसका भाग्य प्रतिकूल (उलटा) है उसका किया हुआ सब उद्योग व्यर्थ होता है ॥२०॥ समस्त वेदों में यज्ञ, दान, तप, सत्य, व्रत आदिकों से हरि भगवान् का सेवन श्रेष्ठ कहा है परन्तु उससे भी भाग्यबल श्रेष्ठ है ॥२१॥ इसलिये हे भूसुर ! सर्वत्र से विश्वास को हटाय कर उठिये और शीघ्र दैव का ही आश्रय लीजिये। इसमें हरि का क्या काम है ? ॥२२॥ इस प्रकार उस गौतमी के अत्यन्त शोक से युक्त वचन को सुन कर दुःख से काँपते हुए गरुड़जी विष्णु भग-

सर्वं भवेद्व्यर्थं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥२०॥ क्रतुदानतपःसत्यव्रतेभ्यो हरिसेवनम् ॥ श्रेष्ठं सर्वेषु वेदेषु ततो दैवबलंवरम् ॥२१॥ तस्मात् सर्वत्र विश्वासं विहायोत्तिष्ठ भूसुर ॥ दैव-मेवावलम्ब्याशु हरिणा किं प्रयोजनम् ॥२२॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्यास्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ वैनतेयोऽवदद्विष्णुं क्षोभसञ्जातवेपथुः ॥२३॥ गरुड़उवाच—शोकसागरसंमग्नां ब्राह्मणीं वीक्ष्य हे हरे ॥ तथैव ब्राह्मणं नेत्रगलद्बाष्पकलाकुलम् ॥२४॥ दीनबन्धो दयासिन्धो भक्ता-नामभयङ्कर ॥ भक्तदुःखासहिष्णोस्ते दयाऽद्यक्व गता प्रभो ॥२५॥ अहो ब्रह्मण्य देवस्त्वं त्वद्धर्मः क्व गतोऽधुना ॥ त्वद्भक्तस्य चतुर्धाऽपि मुक्तिः करतले स्थिता ॥२६॥ अहो

वान् से बोले ॥२३॥ गरुड़जी बोले हे हरे ! शोकरूपी समुद्र में डूबी हुई ब्राह्मणी को और उसी तरह नेत्र से गिरते हुए आश्रुधारा से व्याकुल ब्राह्मण को देखकर ॥२४॥ हे दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! हे भक्तों के लिये अभय करने वाले ! हे प्रभो ! भक्तों के दुःख नहीं सहने वाले ! आपकी आज दया कहाँ चली गई ? ॥२५॥ अहो आप ब्रह्मण्यदेव हो ! उस समय आपका धर्म कहाँ गया ? । अपने भक्त

चतुर्विध मुक्ति की इच्छा नहीं करते हैं और उनके सामने आठ सिद्धियाँ दासी के समान स्थित रहती हैं ॥२७॥ इस प्रकार आपके आराधन का माहात्म्य सर्वत्र प्रसिद्ध है। तब इस ब्राह्मण के पुत्र की इच्छा पूर्ण करने में आपको क्या परिश्रम है ? ॥२८॥ हाथी दान करने वाले पुरुष को अङ्कुश दान करने में क्या परिश्रम है ? अब आज से कोई भी आपके चरणकमल का सेवा नहीं करेगा। ॥२९॥ जो पुरुष के भाग्य में होता है वही निश्चय रूप से मिलता है। इस बात की प्रथा आज से संसार में चली और आपकी भक्ति को रसा-

तथापि नेच्छन्ति विहाय भक्तिमुत्तमाम् ॥ तदग्रे सिद्धयश्चाष्टौ किङ्करीभूयसंस्थिताः ॥२७॥
त्वदाराधनमाहात्म्यमेवं सर्वत्र विश्रुतम् ॥ तर्हि विप्रस्य पुत्रेच्छापूरणेकः परिश्रमः ॥२८॥
गजमर्पयतः पुंसो ह्यङ्कुशे कः परिश्रमः अतः परं न केनापि सेव्यते ते पदाम्बुजम् २९॥
यदहृष्टगतं पुंसस्तदेव भविता ध्रुवम् ॥ इति लोके प्रथा जाता त्वद्भक्तिर्विलयं गता ॥३०॥
कर्तुमकर्तुं सामर्थ्यं तव सर्वत्र विश्रुतम् ॥ तदेवाद्य गतं नाथ न चेदस्मै सुतप्रदः ॥३१॥
अतस्त्वं सर्वथा देहि पुत्रमेकं द्विजन्मने ॥ सुदामा त्वा समाराध्य लेभे वैभवमुत्तमम् ॥३२॥
सान्दीपिनिमृतं पुत्रमवाप कृपया तव ॥ इति ते शरणं प्राप्तौ दम्पती पुत्रलालसौ ॥३३॥

तल को चली गई अर्थात् गायब हो गई ॥३०॥ हे नाथ ! आप करने तथा न करने में स्वतन्त्र हैं यह आपका सामर्थ्य सर्वत्र प्रसिद्ध है आज वह सामर्थ्य इस ब्राह्मण को पुत्रप्रदान न करने से नष्ट होता है ॥३१॥ इसलिये आप इस ब्राह्मण के लिए अवश्य पुत्र दीजिये। सुदामा ब्राह्मण ने आपकी आराधना कर उत्तम वैभव को प्राप्त किया ॥३२॥ आपकी कृपा से सान्दपिनि गुरु ने मृत पुत्र को प्राप्त किया। इन कारणों से पुत्र की लालसा करनेवाले ये दोनों स्त्री पुरुष आपकी शरण में आये हुए हैं ॥३३॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार विष्णु

भगवान् गुरुड़ के अमृत के समान वचन को सुनकर गरुड़ जी से बोले । अयि ! पक्षिश्रेष्ठ ! हे वनतेय ! इस ब्राह्मण को अभिलषित एक पुत्र शीघ्र दीजिये ॥३४॥ इस प्रकार अपने अनुकूल हरि भगवान् के वचन को सुनकर गरुड़ जी अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर उस पृथिवी के देवता दुःखित ब्राह्मण के लिये अनुरूप सुन्दर पुत्र को जल्दी से दे दिया ॥३५॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने श्रीनारायणनारदसंवादे सुदेववरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

नारायण उवाच—इति गरुडवचो निशम्य विष्णुर्वचनमुवाच खगं सुधोपमानम् ॥ अयि ! खगवर ! पुत्रमेकमस्मै वितर मनोगतमाशु वैनतेय ॥३४॥ इति हरिवचनं निजानुकूलं झटिति निशम्य खगोऽतिहृष्टचेताः ॥ अददतिविषण्णमानसाय सुतमनुरूपमिलासुराय रम्यम् ॥३५॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने श्रीनारायणनारदसंवादे सुदेववरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

श्रीनारायण उवाच—शृणु नारद वक्ष्येऽहं यदुक्तं दृढधन्वने ॥ वाल्मीकिना महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥ वाल्मीकिरुवाच—दृढधन्वन् महाराज ! शृणुष्व वचनं मम ॥ सुपर्णः केशवादेशादिदमाह द्विजेश्वरम् ॥२॥ गरुड उवाच—सप्तजन्मसु ते पुत्रसुखं

श्रीनारायण बोले ! हे महाप्राज्ञ ! हे नारद ! वाल्मीकि ऋषि ने जो परम अद्भुत चरित्र दृढधन्वा राजा से कहा उस चरित्र को मैं कहता हूँ तुम सुनो ॥१॥ वाल्मीकि ऋषि बोले । हे दृढधन्वन् ! हे महाराज ! हमारे वचन को सुनिये । गरुड़ जी ने केशव भगवान् की आज्ञा से इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ से [illegible]

वचन हरि भगवान् ने कहा सो इस समय तुमको वैसा ही है ॥३॥ फिर भी कृपा से स्वामी की आज्ञा पाकर मैं तुमको पुत्र दूँगा। हे तपोधन! हमारे अंश से तुमको पुत्र होगा ॥४॥ जिस पुत्र से गौतमी के साथ तुम मनोरथ को प्राप्त करोगे परन्तु उस पुत्र से होने वाला दुःख तुम दोनों को अवश्य होगा ॥५॥ हे द्विजशार्दूल! तुम धन्य हो जो तुम्हारी बुद्धि भगवान् में भई। हरिभक्त सकाम को अथवा

नास्तीति यद्वचः ॥ हरिणोक्तं द्विजश्रेष्ठ तत्तथैव तवाधुना ॥३॥ तथापि स्वामिनाऽऽज्ञप्तः कृपया दद्मि ते सुतम् ॥ मदंशसम्भवः पुत्रो भविता ते तपोधन ॥४॥ येन त्वमाशिषः सत्या लप्स्यसे गौतमीयुतः ॥ परं तज्जनितं दुःखं युवयोर्भविता ध्रुवम् ॥५॥ धन्योऽसि द्विज-शार्दूल यत्ते जाता हरौ मतिः ॥ सकामाऽप्यथ निष्कामा हरिभक्तिर्हरेः प्रिया ॥६॥ जल-बुद्बुदवत् पुंसां शरीरं क्षणभङ्गुरम् ॥ तदासाद्य हरेः पादं धन्यश्चिन्तयते हृदि ॥७॥ हरे-रन्या न संसारात्तारयेद् बहुदुस्तरात् ॥ हरेरेव कृपालेशामन्या दत्तः सुतस्तव ॥८॥ मनसि श्रीहरिं धृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥ उदासीनतया स्थित्वा भुङ्क्ष्व संसारजं सुखम् ॥९॥ वाल्मीकिरुवाच—दम्पत्योः पश्यतोः सद्यो दत्त्वा वरमनुत्तमम् ॥ खगद्वारा हरिः शीघ्रं ययौ

निष्काम हो, हरि भगवान् को दोनों ही प्रिय हैं ॥६॥ मनुष्यों का शरीर जल के बुल्ला के समान क्षणभङ्गुर (क्षणनाशशील) है उस शरीर को प्राप्त कर जो हृदय में हरि के चरणों का चिन्तन करता है वह धन्य है ॥७॥ इस अत्यन्त दुस्तर संसार से तारने वाले हरि भगवान् के सिवाय दूसरा नहीं है! यह हरि भगवान् की ही कृपा से मैंने तुमको पुत्र दिया ॥८॥ मन में श्रीहरि को धारणकर सुखपूर्वक विचरो और उदासीन भाव से संसार के सुखों को भोगो ॥९॥ वाल्मीकि ऋषि बोले—गौतमी और सुदेव दोनों स्त्री पुरुष को देखते २

उत्तम वर को देकर उसी समय गरुड़ पर सवार होकर शीघ्र अपने स्थान को वैकुण्ठ को चले गये ॥१०॥ सुदेवशर्म्मा भी स्त्री के साथ अपने मनके अनुसार पुत्ररूप वरको पाकर अपने घर को आया और उत्तम गृहस्थाश्रम के सुख को भोगता भया ॥११॥ कुछ समय के बाद गौतमी को गर्भ रहा और दशम महीना प्राप्त होने पर गर्भ पूर्ण हुआ ॥१२॥ प्रसूतिकाल आने पर गौतमी ने उत्तम पुत्र पैदा किया

निजनिकेतनम् ॥१०॥ सुदेवोऽपि सपत्नीको वरं लब्ध्वा मनोगतम् ॥ असाद्य स्वगृहं भेजे गार्हस्थ्यसुखमुत्तमम् ॥११॥ कियत्कालक्रमेणास्या दोहदः समपद्यत ॥ दशमे मासि सम्प्राप्ते पूर्णो गर्भो बभूव ह ॥१२॥ प्रसूतिकाले सम्प्राप्ते साऽसूत सुतमुत्तमम् ॥ सुदेवस्त्वात्मजे जाते जाताह्लादो बभूव ह ॥१३॥ आहूय जातकं कर्म चकार द्विजसत्तमान् ॥ बृहद्दानं ददौ तेभ्यः सुस्नातो द्विजसत्तमः ॥१४॥ नाम चास्याऽकरोद्धीमान् ब्राह्मणैः स्वजनैर्वृतः ॥ अयं सुतः सुपर्णेन दत्तः प्रेम्णा कृपालुना ॥१५॥ शारदेन्दुरिव प्रोद्यत्तेजस्वी शुकसन्निभः ॥ शुकदेवेति नामायं पुत्रोऽस्तु मम वल्लभः ॥१६॥ अवर्धत सुतः शीघ्रं शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ पितुर्मनोरथैः साकं मातृमानसनन्दनः ॥१७॥ उपनीय सुतं तातः सावित्रीं दत्तवान् मुदा ॥

और पुत्र के होने पर सुदेवशर्म्मा बहुत प्रसन्न हुआ ॥१३॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुलाकर जात-कर्म संस्कार किया और अच्छी तरह स्नान कर ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदेवशर्म्मा ने उन ब्राह्मणों को बहुत दान दिया ॥१४॥ ब्राह्मण और स्वजनों के साथ बुद्धिमान सुदेवशर्म्मा ने नामकरण संस्कार किया। कृपालु गरुड़जी ने प्रेम से यह पुत्र दिया ॥१५॥ शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उदय को प्राप्त, तेजस्वी, शुक के सदृश है, इसलिये मेरा यह प्रिय पुत्र शुकदेव नाम [illegible] पिता के मनोरथों के साथ

है, इसलिये तेरा यह प्रिय [illegible] नाम पाया हो ॥१६॥ माता के मन को आनन्द देनेवाला वह पुत्र पिता के मनोरथों के साथ

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ता भया ॥१७॥ पिता ने हर्ष के साथ उपनयन (जनेऊ) संस्कार कर गायत्री मन्त्र का उपदेश किया बाद वह बालक वेदारम्भ संस्कार को प्राप्त कर ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित हुआ ॥१८॥ उस ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त बालक साक्षात् दूसरे सूर्य के समान शोभित हुआ। बुद्धिसागर (बुद्धि में समुद्र के समान) उस बालक ने वेदाध्ययन आरम्भ किया ॥१९॥ उस गुरुवत्सल बालक ने सद्बुद्धि से अपने गुरु को प्रसन्न किया और गुरु के एक वार कहने मात्र से समस्त विद्या को प्राप्त किया ॥२०॥ वाल्मीकि

संस्कारं वैदिकं प्राप्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ॥१८॥ तत्तोजसाऽन्वितो रेजे साक्षात्सूर्य इवा-परः ॥ वेदाध्ययनमारेभे कुमारो बुद्धिसागरः ॥१९॥ सद्बुद्ध्याऽऽनन्दयामास स्वगुरुं गुरु-वत्सलः ॥ सकृन्निगदमात्रेण विद्यां सर्वामुपेयिवान् ॥२०॥ वाल्मीकिरुवाच——एकदा देवलो-ऽभ्यागात् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तमालोक्य सुदेवोऽसौ ननाम दण्डन्मुदा ॥२१॥ पूजयामास विधिवदर्घ्यपाद्यादिभिर्मुनिम् ॥ आसनं कल्पयामास देवलाय महात्मने ॥२२॥ तत्रोपविष्टो भगवान् देवलो देवदर्शनः ॥ चरणे पतितं दृष्ट्वा कुमारं देवलोऽब्रवीत् ॥२३॥ देवल उवाच—— भो भो सुदेव धन्योऽसि तुष्टस्ते भगवान् हरिः ॥ यतस्त्वं प्राप्तवान् पुत्रं दुर्लभं सुन्दरं

ऋषि बोले। एक समय कोटि सूर्य के समान प्रभाववाले देवल ऋषि आये उनको देखकर हर्ष से सुदेवशर्म्मा ने दण्डवत (साष्टाङ्ग) प्रणाम किया ॥२१॥ अर्घ्य, पाद्य आदि से विधिपूर्वक उन देवल मुनि की पूजा की और महात्मा देवल के लिये आसन दिया ॥२२॥ देवदर्शन (अति तेजस्वी) देवल ऋषि उस आसन पर बैठ गये बाद अपने चरणों पर बालक को गिरे हुये देखकर देवल ऋषि बोले ॥२३॥ देवल मुनि बोले। भो भो सुदेव ! तुम धन्य हो, तुम्हारे ऊपर भगवान् प्रसन्न हुये, क्योंकि तुमने दुर्लभ, सुन्दर, श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त

किया ॥२४॥ ऐसा विनीत, बुद्धिमान, वाग्मी (बोलने में चतुर), वेदपाठी और शीलवान् पुत्र कहीं भी किसी के यहाँ नहीं देखा ॥२५॥ हे पुत्र ! यहाँ आओ, तुम्हारे हाथ में यह कौतुक (आश्चर्यकारी) क्या देखता हूँ ? सुन्दर छत्र, दो चामर, यवरेखा के साथ कमल ॥२६॥ जानु तक लटकने वाली हाथी के सूँड़ के समान ये तुम्हारे हाथ, कान तक फैले हुए विशाल लाल नेत्र ॥२७॥ शरीर गोल आकार

वरम् ॥२४॥ एतादृशः सुतः क्वापि कस्याप्यनघलोकितः ॥ विनीतो बुद्धिमान् वाग्मी वेदाध्ययनशीलवान् ॥२५॥ एहि पुत्र किमेतत्ते करे पश्यामि कौतुकम् ॥ सच्छत्रं चामर-युगं कमलं यवसंयुतम् ॥२६॥ आजानुलम्बिनौ हस्तौ हस्तिहस्तसमौ तव ॥ आकर्णान्त-विशाले च चक्षुषी मधुपिञ्जरे ॥२७॥ वपुर्वर्तुलकं मध्यं वलित्रयविभूषितम् ॥ एवमुक्त्वा सुतं दृष्ट्वा पुनराहोत्सुकं द्विजम् ॥२८॥ अहो सुदेव तनयस्तवायं गुणसागरः ॥ गूढजत्रुः कम्बुकण्ठः स्निग्धकुञ्चितमूर्धजः ॥२९॥ तुङ्गवक्षाः पृथुग्रीवः समकर्णो वृषांसकः ॥ सर्व-लक्षणसम्पूर्णः पुत्रो भाग्यनिधिर्महान् ॥३०॥ एक एव महान् दोषो येन सर्वं वृथा कृतम् ॥ इत्युक्त्वा मौलिमाधुन्वन् विनिःश्वस्याब्रवीन्मुनिः ॥३१॥ पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमा-

का, त्रिवली से युक्त पेट है । इस प्रकार उस बालक के विषय में कहकर उस ब्राह्मण को उत्कण्ठित देख कर देवल ऋषि फिर बोले ॥२८॥ अहो ! हे सुदेव ! यह तुम्हारा लड़का गुणों का सागर है और गूढजत्रु (मांस में छिपी हड्डी वाला), शङ्ख के समान उतार चढ़ाव युक्त गला वाला, चिक्कण टेढ़े शिर के बाल वाला ॥२९॥ ऊँची छाती, लम्बी गर्दन, बराबर कान, बैल के समान कन्धा, समस्त लक्षणों से युक्त और भाग्य का निधि पुत्र है ॥३०॥ [illegible]

श्वांस लेकर देवल मुनि बोले ॥३१॥ प्रथम आयु की परीक्षा करना, बाद लक्षणों को कहना चाहिये। आयु से हीन बालक के लक्षणों से क्या प्रयोजन है ? ॥३२॥ हे सुदेव ! यह तुम्हारा लड़का बारहवें वर्ष जल में डूब कर मर जायगा, इससे तुम मन में शोक नहीं करना ॥३३॥ अवश्य होनेवाला निःसन्देह होकर ही रहता है उसकी मरणासन्न की औषध देने के समान प्रतिक्रिया नहीं है ॥३४॥ वाल्मीकि

दिशंत् ॥ निरायुषः कुमारस्य लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥३२॥ सुदेवतनयोऽयं ते द्वादशे हायने जले ॥ मृत्युमेष्यति तस्मात्त्वं शोकं मा कुरु मानसे ॥३३॥ अवश्यम्भाविनो भावा भवन्त्येव न संशयः ॥ तत्र प्रतिविधिर्नास्ति मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥३४॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युदीर्य गतोब्रह्मलोकं देवलको मुनिः ॥ सुदेवः सह गौतम्या पपात धरणीतले ॥३५॥ विललाप चिरं भूमौ देवलोक्तं वचः स्मरन् ॥ अथ सा गौतमी पुत्रं स्वाङ्कमारोप्य धैर्यतः ॥३६॥ चुचुम्ब वदनं प्रेम्णा पश्चात् पतिमुवाच सा ॥ गौतम्युवाच ॥ द्विजराज न कर्तव्या भीतिर्भाव्येषु वस्तुषु ॥३७॥ नाभाव्यं भविता कुत्र भाव्यमेव भविष्यति ॥ किं नु नो दुःखमापन्ना नलरामयुधिष्ठिराः ॥३८॥ बन्धनं बलिराजाऽपि प्राप्तवान् यादवः क्षयम् ॥

बोले। देवल मुनि इस प्रकार कह कर ब्रह्मलोक को चले गये और गौतमी के साथ सुदेव ब्राह्मण पृथिवी पर गिर गया ॥३५॥ पृथिवी पर पड़ा हुआ देवल ऋषि के कहे भये वचनों का स्मरण कर चिरकाल तक विलाप करने लगा। बाद उसकी स्त्री गौतमी धैर्य्य को करती हुई पुत्र को अपने गोद में लेकर ॥३६॥ वह गौतमी प्रथम प्रेम से पुत्र का मुख चुम्बन कर बाद पति से बोली। गौतमी बोली। हे द्विजराज ! होनेवाली वस्तु में भय नहीं करना चाहिये ॥३७॥ जो नहीं होनेवाला है वह कभी नहीं होगा और जो होनेवाला है वह

अवश्य होगा। क्या राजा नल, रामचन्द्र और युधिष्ठिर दुःख को प्राप्त नहीं हुये? ॥३८॥ राजा बलि भी बन्धन को प्राप्त हुआ, यादव नाश को प्राप्त हुये, हिरण्याक्ष कठिन वध को प्राप्त हुआ, वृत्रासुर भी मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३९॥ कार्त्तवीर्य (सहस्रार्जुन) का शिर काटा गया, रावण के भी उसी तरह शिर काटे गये, हे मुने! भगवान रामचन्द्र भी वन में जानकी के विरह को प्राप्त भये ॥४०॥ राजर्षि परिक्षित् भी ब्राह्मण से मृत्यु को प्राप्त हुये। हे मुनीश्वर! इस प्रकार जो होने वाला है वह अवश्य होगा ॥४१॥ इसलिये हे नाथ!

हिरण्याक्षो वधं घोरो वृत्रोऽपि निधनं गतः ॥३९॥ कार्त्तवीर्यः शिरच्छेदं रावणोऽपि तथाप्तवान् ॥ विरहं रघुनाथोऽपि जानक्याः प्राप्तवान् मुने ॥४०॥ परीक्षिदपि राजर्षिर्ब्राह्मणान्मृत्युमाप्तवान् ॥ एवं ये भाविनो भावा भवन्त्येव मुनीश्वर ॥४१॥ अत उत्तिष्ठ हे नाथ हरिं भज सनातनम् ॥ शरण्यं सर्वजीवानां निर्वाणपददायकम् ॥४२॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इति निजवनितावचो निशम्य प्रकृतिमुपागतवान् सुदेवशर्मा ॥ हृदि हरिचरणाम्बुजं निधाय झटिति जहौ शुचमात्मजाद्धवित्रीम् ॥४३॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने सुदेवपतिबोधो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

उठिये और सनातन हरि भगवान का भजन करिये जो समस्त जीवों के शरण्य (रक्षक) हैं और मोक्ष पद को देनेवाले हैं ॥४२॥ वाल्मीकि ऋषि बोले। इस प्रकार सुदेव शर्मा ने अपनी स्त्री गौतमी के वचन को सुन कर प्रकृतिस्थ (स्वस्थ) हो हृदय में हरि भगवान के चरणों का ध्यान कर पुत्र से होने वाले शोक को जल्दी से त्याग दिया ॥४३॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारद संवादे

श्रीनारायणनारद संवादे दृढधन्वोपाख्याने सुदेवप्रतिबोधो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

नारद जी बोले। हे कृपा के सिन्धु! उसके बाद जागृत अवस्था को प्राप्त उस राजा दृढधन्वा का क्या हुआ? सो मुझसे कहिये जिसके सुनने से पापों का नाश कहा गया है ॥१॥ नारायण जी बोले। अपने पूर्वजन्म के चरित्र को सुनने से आश्चर्य युक्त और भी सुनने की इच्छा रखने वाले राजा दृढधन्वा से वाल्मीकि ऋषि फिर बोले ॥२॥ वाल्मीकि मुनि बोले। इस तरह स्त्री के मुख से शीतल

नारद उवाच ॥ ततः किमभवत्तस्य प्रबुद्धस्य महीपतेः ॥ तन्मे वद कृपासिन्धो शृण्वतां पापनाशनम् ॥१॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्वकीयचरितं श्रुत्वा प्राक्तनं चकिताननम् ॥ राजानं पुनरेवाह वाल्मीकिः श्रवणोत्सुकम् ॥२॥ वाल्मीकिरुवाच—इति ताः शीतला वाचः समाकर्ण्य प्रियामुखात् ॥ सुदेवो धैर्यमालम्ब्य हरौ चित्तमधारयत् ॥३॥ निश्वस्य दीनवदनो यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ इति निश्चित्य मनसा पुष्पाद्यर्थं वनं ययौ ॥४॥ एवं कृतवतस्तस्य कियान् कालो गतः क्रमात् ॥ समित्कुशफलाद्यर्थं कदाचित् काननं ययौ ॥५॥ सुदेवो मनसा ध्यायन् हरेः पादसरोरुहम् ॥ तस्मिन्नेव दिने गच्छद्वापीं सूनुः सुहृद्वृतः ॥६॥ प्रविश्यवापीं चिक्रीडे वयस्यैः सह वारिणि ॥ जलयन्त्रैः क्षिपन् वारि बालकेषु स्मयन्मुहुः

वचन को सुनकर सुदेवशर्म्मा धैर्य का अवलम्बन कर हरि भगवान् में चित्त को लगाता हुआ ॥३॥ दीर्घ श्वास लेकर दीन-मुख सुदेवशर्म्मा जो होनेवाला है वह होगा यह मन में निश्चय कर पुष्प समिधा आदि के लिये वन को गया ॥४॥ इस प्रकार करते उस सुदेवशर्म्मा का कितना ही समय बीत गया। बाद किसी दिन समिधा कुश फल पुष्प आदि के लेने के लिए वन को गया ॥५॥ वहाँ जाकर सुदेवशर्म्मा मन से हरि भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करने लगा। उसी दिन उसका लड़का शुकदेव अपने सुहृदों के साथ बावली

को गया ॥६॥ बावली में प्रवेश कर सामान वयस्क बालकों के साथ जलयन्त्र के द्वारा जल फेंकता हुआ और बार बार हँसता हुआ खेलने लगा ॥७॥ गर्मी के ऋतु में बार बार जल में खेलता हुआ हर्ष को प्राप्त हुआ। इस तरह प्रेम में मग्न सब बालकों के खेल करते हुए ॥८॥ अथाह जल में खड़ा हुआ वह शुकदेव बालक ने मित्र बालकों से मर्दित (पीड़ित) होकर सुहृद् वर्ग के भय से भागने की इच्छा करता हुआ ॥९॥ और भाग्य से प्रेरित हो अपने श्वांस को रोककर अपने मित्रों को छलने की इच्छा से वहाँ अगाध जल में

॥७॥ जले क्रीडां मुहुः कुर्वन् ग्रीष्मे मोदमुपाययौ ॥ एवं सर्वेषु बालेषु क्रीडत्सु प्रेमनिर्भ-रम् ॥८॥ स पलायनमन्विच्छन् सुहृद्वर्गभयाद्द्रुतम् ॥९॥ विधिना नोदितस्तत्र नियम्य श्वासमात्मनः ॥ ममज्जागाधतोयेऽसौ वञ्चयन्नात्मनः सखीन् ॥१०॥ तत्रापि व्याकुलीभूय ततो निर्गन्तु-मुन्मनाः ॥ सहसा मृतिमापन्नः कुमारोऽगाधवारिणि ॥११॥ जलादनिर्गतं वीक्ष्य सर्वे चकितमानसाः ॥ समानवयसः सर्वे हाहा कृत्वा प्रधाविताः ॥१२॥ गौतम्यै कथयामासुर्बृहच्छोकपरायणाः ॥ वज्रपातसमां वाचं बालानामनतिप्रियाम् ॥१३॥ श्रुत्वा भूमौ पपाताशु गौतमी पुत्रवत्सला ॥ एतस्मिन्नेव समये वनाद्विप्रः समाययौ ॥१४॥

गोता लगाया ॥१०॥ परन्तु उस जल में व्याकुल होकर उससे बाहर निकलने की इच्छा करता हुआ सहसा उस अगाध जल में वह बालक मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥११॥ जल से निकलते हुए उस बालक को न देख कर वे सब समान वयस्क मित्र बालक चकित होकर हाहाकार करते हुए बहुत जोर से दौड़े ॥१२॥ और शोक से ग्रस्त वे बालक उसकी माता गौतमी से जाकर बोले। उन बालकों के अत्यन्त कठिन वज्रपात के समान [illegible]

समय वन से सुदेव शर्म्मा आया ॥१४॥ पुत्र का मरण सुनकर त्वष्टा के समान पृथिवी पर गिर गया। बाद दोनों ब्राह्मण स्त्री पुरुष उठ कर बावली को गये ॥१५॥ वहाँ जाकर मृत पुत्र का आलिङ्गन कर उसके शरीर को गोद में लेकर सुदेवशर्मा बार बार पुत्र का मुख चूमने लगा ॥१६॥ बाद अपने गोद में स्थित मृत पुत्र को बार बार देखता हुआ गद्गद अक्षर से बोला ॥१७॥ सुदेवशर्म्मा बोला।

निशम्य पुत्रमरणं त्वष्टेवात्रावापतद्भुवि तत उत्थाय तौ विप्रदम्पतो वापिकां गतौ ॥१५॥ मृतं पुत्रं समालिङ्ग्य स्वाङ्के कृत्वा कलेवरम् ॥ सुदेवः पुत्रवदनं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥१६॥ ततः स्वाङ्के स्थितं पुत्रं मृतं वीक्षन् मुहुर्मुहुः ॥ स रुदन्विलपन्नेव गद्गदाक्षरमूचिवान् ॥१७॥ सुदेव उवाच—वद पुत्र शुभां वाणीं मम शोकविनाशिनीम् ॥ शीतलां ललितां वत्स मनसो मोदमावह ॥१८॥ विहाय पितरौ वृद्धौ न त्वं गन्तुमिहार्हसि ॥ वत्साह्वयति सन्मित्रं वेदाध्ययनहेतवे ॥१९॥ मुदाऽऽह्वत्युपाध्यायस्त्वामध्यापनहेतवे ॥ तूर्णमुत्तिष्ठ हे पुत्र कथं सुप्तोऽसि साम्प्रतम् ॥२०॥ त्वां विहाय न गच्छामि गृहे किं मे प्रयोजनम् ॥ शून्यारण्यमिवाद्यैव त्वद्दृते सदनं मम ॥२१॥ वनेऽपि नैव गच्छामि गमने किं प्रयोजनम् ॥

हे पुत्र! मेरे शोक को नाश करने वाली, शीतल, सुन्दर और शुभ वचन को बोलो। हे वत्स! और मेरे मन को प्रसन्न करो ॥१८॥ वृद्ध माता और पिता को छोड़ कर तुम जाने के योग्य नहीं हो। तुमको हे वत्स! वेदाध्ययनके लिए तुम्हारा श्रेष्ठ मित्र बोला रहा है ॥१९॥ और बड़े हर्ष से पढ़ाने के लिए उपाध्याय तुमको बोला रहे हैं। हे पुत्र! शीघ्र उठो। इस समय क्यों सो रहे हो ॥२०॥ तुमको छोड़ कर घर नहीं जाऊँगा। घर में मेरा क्या काम है? तुम्हारे विना इसी समय मेरा घर शून्य जङ्गल के समान हो गया है ॥२१॥

तुमको फल मूल प्रिय हो तो मेरे सामने से उठो। यदि नहीं उठोगे तो वन को भी नहीं जाऊंगा। वन में क्या काम है? ।२२।। मैंने कोई निन्दित काम नहीं किया फिर किस कर्म के फल से मेरा पुत्र मर गया ।।२३।। अहो धातः! तुमने ऐसा करने से बड़ा फल क्या प्राप्त किया? । हे निर्दय! वृद्ध, दीन मेरे नेत्र को लेकर ।।२४।। निर्धन का धन और दोनों स्त्री पुरुष का अवलम्बन पुत्र का हरण

फलमूलप्रिय त्वं चेन्नोतिष्ठसि ममाग्रतः ।।२२।। न मया चरितं गर्ह्यं ब्रह्महत्याऽपि नो कृता ।। केन कर्मविपाकेन पुत्रो मे निधनं गतः ।।२३।। अहो धातः किमेतावत्फलं लब्धं त्वया महत् ।। लोचनं मम दीनस्य वृद्धस्याकृष्य निर्दय! ।।२४।। निर्धनस्य धनं बालं दम्पत्यो-रवलम्बनम् ।। हरतस्ते कथं लज्जा जायते नहि कुत्रचित् ।।२५।। सर्वत्र सदयस्त्वं वै मयि निर्दयतां गतः ।। कथमित्यन्यथाभावो मम भाग्यवशादहो ।।२६।। कुत्राहं शोधयाम्यद्य पुत्रं प्रकृतिसुन्दरम् ।। द्रक्ष्ये तवाननं कुत्र पुत्र चारु सुलोचनम् ।।२७।। पर्जन्यः स्रवतेवारि सूते धान्यं वसुन्धरा ।। गिरयो रत्नजातानि मुक्तासारं पयोनिधिः ।।२८।। न तं देशं प्रपश्यामि यत्र पुत्रं मृतं लभेत् ।। यद्गात्रं तु समालिङ्ग्य हृद्गतं तापमुत्सृजेत् ।।२९।। हे

करते तुमको कहीं पर लज्जा क्यों नहीं होती? ।।२५।। सर्वत्र तुम दयालु हो परन्तु मेरे विषय में निर्दय हो गये, सो क्यों? अहो! आश्चर्य है। मेरे भाग्य से यह उलटा हुआ है ।।२६।। स्वभाव से सुन्दर पुत्र का खोज इस समय कहाँ करूँ। हे पुत्र! तुम्हारे मुख और सुन्दर नेत्र को कहाँ देखूँगा? ।।२७।। मेघ जल को बर्षाता है। पृथिवी धान्य को पैदा करती है। पर्वत रत्नों को और समुद्र मुक्तासार [illegible]

ताप को छोड़ता ॥२६॥ हे वत्स ! तुम एक बार शीघ्र वचन सुनाओ और दया करो। तुम्हारी माता लज्जा छोड़ कर कुररी के समान अत्यन्त विलाप करती है ॥३०॥ हे पुत्र ! उसको देख कर तुमको दया क्यों नहीं पैदा होती है ? माता पिता की आज्ञा बिना तुम कभी भी नहीं गये ॥३१॥ हे पुत्रक ! हम दोनों से बिना पूछे ही दूर मार्ग (यममार्ग) को गये हो क्या ? इस समय जिसके वेदाध्ययन

वत्स त्वं सकृद्वाचं श्रावयाशु दयां कुरु ॥ विलपत्यति ते माता कुररीव गतत्रपा ॥३०॥
तां दृष्ट्वा तु कथं पुत्र दया नोत्पद्यते तव ॥ अननुज्ञाप्य पितरौ न कदापि भवान् गतः ॥३१॥
आवामपृष्ट्वा किं दीर्घमार्गं यातोऽसि पुत्रक ॥ वेदाध्ययननद्वाणीं कस्य श्रोष्यामि साम्प्रतम्
॥३२॥ त्वा मनुस्मरतो वत्स कलावाक्यं मनोहरम् ॥ शतधा दीर्यते नोऽद्य ह्यायसं हृदयं
मम ॥३३॥ मन्ये सुधन्यं किल कोशलेन्द्र ! यः काननं दाशरथौ प्रयाते ॥ दधार नो-
ऽसून्सुततापदग्धो धिङ्मां सुतस्य प्रलयेऽप्यनष्टम् ॥३४॥ गोविन्द विष्णो यदुनाथ नाथ
श्रीरुक्मिणीप्राणपते मुरारे ॥ दीनानुकम्पिन् भगवन्दयलो मां पाहि पुत्रानलतापतप्तम्
॥३५॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ गोपाल गोपीश रथाङ्गपाणे ॥ कलिन्दकन्याविषदोष-

की उत्तम वाणी को सुनूँगा ॥३२॥ हे वत्स ! आज तुम्हारे और तुम्हारे मनोहर मधुर वचन के स्मरण से मेरा हृदय १०० सौ टुकड़ा नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरा हृदय लोहे का है ॥३३॥ हे कोशलेन्द्र ! राजा दशरथ ॥ हम तुमको धन्य मानते हैं क्योंकि रामचन्द्र के वन जाने पर पुत्र के ताप से दग्ध तुमने प्राणों से नहीं धारण किया। और पुत्र के मर जाने पर भी जीवित रहनेवाले मुझको धिक्कार है ॥३४॥ हे गोविन्द ॥ हे विष्णो ॥ हे यदुनाथ ॥ हे श्रीरुक्मिणी के प्राणपति ! हे मुरारे ! हे दीन पर अनुकम्पा करने वाले ! हे भग-

वन ! हे दयालो ! पुत्ररूप अग्नि के त प से सन्तप्त मेरी रक्षा करो ॥३५॥ हे देवाधिदेव ! समस्त लोक के नाथ ! हे गोपाल ! हे गोपीश ! हे रथाङ्ग (चक्र) को हाथ में धारण करने वाले ! हे यमुना के विषदोष को हरने वाले ! पुत्ररूप अग्नि के ताप से सन्तप्त मेरी रक्षा करो ॥३६॥ हे वैकुण्ठ के वासी विष्णो ! नरकासुर के नाशक ! हे चराचर के आधार ! हे संसाररूप समुद्र के पार करने के लिए जहाज रूप ! अर्थात् संसार समुद्र से पार उतारने वाले ! हे ब्रह्मादि देवताओं से नमस्कृत चरणपीठ वाले ! पुत्ररूप अग्नि के ताप से सन्तप्त मेरी

हारिन् मां पाहि पुत्रानलतापतप्तम् ॥३६॥ वैकुण्ठ विष्णो नरकासुरारे चराचराधार भवाब्धिपोत ॥ ब्रह्मादिदेवानतपादपीठ मां पाहि पुत्रानलतापतप्तम् ॥३७॥ शठो मदन्यो भविता न कोऽपि यो देवकी सूनुवचो विलङ्घ्य ॥ पुत्रे दुराशां कृतवानभाग्यो लभेत कोऽदृष्टविनष्टवस्तु ॥३८॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायण-नारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने सुदेवविलापो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

नारद उवाच ॥ दृढधन्वा महीपालं किमुवाच ततः परम् ॥ वाल्मीकिर्भगवान्साक्षात्त-द्वदस्व तपोनिधे ॥१॥ श्रीनारायण उवाच ॥ दृढधन्वा स राजर्षिः श्रुत्वा प्राक्तनमात्मनः ॥

रक्षा करो ॥३७॥ हमारे समान शठ दूसरा कोई नहीं है जो मैंने देवकीपुत्र श्रीकृष्णचन्द्र के वचनों का उल्लङ्घन कर पुत्र में दुराशा की। कौन अभागी पुरुष भाग्यहीन वस्तु को प्राप्त करेगा ॥३८॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने सुदेवविलापो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

श्रीनारायण बोले—वह राजर्षि दृढ़धन्वा अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर आश्चर्य करता हुआ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि मुनि से पूछता भया ॥२॥ दृढधन्वा बोले—हे ब्रह्मन् ! आपके नूतन २ सुन्दर अमृत के समान बचनों का पुनः पुनः पान कर तृप्त नहीं हुआ इस लिए पुनः उसके बाद का समाचार कहिये ॥३॥ वाल्मीकि मुनि बोले—हे जगतीपते ! इस प्रकार उस ब्राह्मण के विलाप करते समय काल में गर्जना

सविस्मयः समापृच्छद्वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥२॥ दृढधन्वोवाच ॥ ब्रह्मंस्तव वचो रम्यं सुधा-
कल्पं नवं नवम् ॥ पीत्वा पित्वा न तृप्तोऽस्मि भूयो वद ततः परम् ॥३॥ वाल्मीकिरुवाच ॥
एवं विलपतस्तस्य विप्रस्य जगतीपते ॥ अकालजलदोऽभ्यागाद्गर्जयंश्च दिशो दश ॥४॥
ववौ वायुः खरस्पर्शः कम्पयन्निव पर्वतान् ॥ बृहल्लसन्महाविद्युत्स्वनेनापूरयन् दिशः ॥५॥
यावन्मासं ववर्षैव मही पूर्णजलाऽभवत् ॥ नासौ विज्ञातवान् किञ्चित्पुत्रशोकाग्नि तापितः
॥६॥ न पपौ बुभुजे चैव पुत्र पुत्र इति ब्रुवन् ॥ एवं बिलपतस्तस्य मासो यो विगतस्तदा
॥७॥ श्रीकृष्णवल्लभो मासः सोऽभवत्पुरुषोत्तमः ॥ अजानतोऽपि तस्यासीत्पुरुषोत्तमसेव-
नम् ॥८॥ तेनात्यन्तप्रसन्नः सन् प्रादुरासीद्धरिः स्वयम् ॥ नवीनजलदश्यामो वनमालाविभू-

से दश दिशाओं को गुञ्जित करता हुआ असमय में होनेवाला मेघ आया ॥४॥ पर्वतों को कँपाने के तीक्ष्ण तीक्ष्ण स्पर्श वाला वायु बहने लगा । और बिजुली अत्यन्त चमकती हुई अपने आवाज से दश दिशाओं को पूर्ण करती हुई ॥५॥ इस तरह एक मास तक वृष्टि हुई जिस जल से पृथिवी भर गई परन्तु पुत्रशोक रूप अग्नि के ताप से सन्तप्त वह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जान सका ॥६॥ न तो जल पान किया और न भोजन ही किया । केवल हे पुत्र ! इस प्रकार कहकर विलाप करते हुए ब्राह्मण का उस समय जो मास व्यतीत

हुआ ॥७॥ वह श्रीकृष्णचन्द्र का प्रिय पुरुषोत्तम मास था सो न जानते हुए उस ब्राह्मण को पुरुषोत्तम मास का सेवन हो गया ॥८॥ उस पुरुषोत्तम मास के सेवन से अत्यन्त प्रसन्न नूतन मेघ के समान श्यामवर्ण, वनमाला से भूषित हरि भगवान् स्वयं प्रगट हुए ॥९॥ जगत् के नाथ हरि भगवान् के प्रगट होने पर मेघसमूह गायब हो गया बाद उस ब्राह्मण ने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र को देखा ॥१०॥ दर्शन होने के साथ ही गोद में लिये हुए पुत्र के शरीर जमीन पर रखकर आनन्दपूर्वक वह सपत्नीक ब्राह्मण श्रीहरि भगवान्

षितः ॥९॥ प्रादुर्भूते जगन्नाथे विलीना घनराजयः ॥ ततो ददर्श विप्रोऽसौ श्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥ सहसाङ्कगतं पुत्रदेहं भुवि निधाय च ॥ सपत्नीको नमश्चक्रे दण्डवच्छ्रीहरिं मुदा ॥११॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा संस्थितः श्रीहरेः पुरः ॥ श्रीकृष्ण एव शरणं ममास्त्विति विचिन्तयन् ॥१२॥ भगवानऽपि तुष्टः सन् पुरुषोत्तमसेवनात् ॥ अवोचन्मधुरां वाणीं बृहत्पीयूषवर्षिणीम् ॥१३॥ श्रीहरिरुवाच ॥ भो भो सुदेव धन्योऽसि भाग्यवान् साम्प्रतं भवान् । त्वद्भाग्यं वर्णितुं को वा समर्थो भुवनत्रये ॥१४॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहं यत्ते भावि तपोधन ॥ द्वादशाब्दसहस्रायुः पुत्रस्ते भविता द्विज ॥१५॥ अतः परं न सन्दे-

को दण्ड के समान नमस्कार करता हुआ ॥११॥ अञ्जलि बाँध कर श्रीहरि भगवान् के सामने खड़ा होकर श्रीकृष्ण भगवान् ही हमारे रक्षक हों ऐसा विचार करता हुआ ॥१२॥ भगवान् भी पुरुषोत्तम के सेवन से प्रसन्न हो अत्यन्त अमृत की वृष्टि करनेवाली मधुर वाणी से बोले ॥१३॥ श्रीहरि भगवान् बोले । भो भो सुदेव ! तुम धन्य हो, इस समय आप भाग्यवान् हो, तुम्हारे भाग्य के वर्णन करने में समर्थ त्रैलोक्य में कौन है ? ॥१४॥ हे वत्स ! हे तपोधन ! जो तुम्हारा भावि (होनेवाला) है उसको हम कहेंगे सुनो । हे द्विज !

बारह हजार वर्ष की आयु वाला पुत्र तुमको होगा ॥१५॥ इसके बाद तुमको पुत्र से होने वाले सुख में सन्देह नहीं है। हे द्विजोत्तम! प्रसन्न मन से मैंने यह पुत्र तुमको दिया है ॥१६॥ हमारे प्रसाद से होने वाले तुम्हारे पुत्रमुख को देखकर हे द्विजोत्तम! देवता, गन्धर्व और मनुष्य लोग पुत्रसुख की इच्छा करने वाले होंगे ॥१७॥ इस विषय में तुमसे प्राचीन इतिहास मैं कहूँगा कि जिस इतिहास को

हस्तव पुत्रोद्भवे सुखम् ॥ मयाऽयं ते सुतो दत्तः प्रसन्नेन द्विजोत्तम ॥१६॥ तव पुत्रसुखं दृष्ट्वा देवगन्धर्वमानवाः ॥ स्पृहास्ते भविष्यन्ति प्रसादान्मे द्विजोत्तम ॥१७॥ अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ॥ मार्कण्डेयेन मुनिना पुरा प्रोक्तं रघुं नृपम् ॥१८॥ पुरा मुनीश्वरः कश्चिद्धमुर्नामा महामनाः पश्यन् पुत्राधिनिर्दग्धान् लोकान् दीनमना अभूत् ॥१९॥ अमरं पुत्रमन्विच्छंस्तापस्तेपे सुदारुणम् ॥ सहस्राब्दे गते काले देवास्तमब्रुवन्मुनिम् ॥२०॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वाञ्छितः॥ प्रसन्नाः स्मो वयं सर्वे तीव्रेण तपसा तव ॥२१॥ श्री नारायण उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा सुतृप्तोऽमृतसन्निभम् ॥ वव्रे तपोधनः पुत्रममरं बुद्धिशालिनम् ॥२२॥ तमूचुर्निर्जराः सर्वे नैवं भूतोस्ति भूतले ॥ पुनराह मुनिर्देवान्नि-

पहले मार्कण्डेय मुनि ने राजा रघु के प्रति कहा था ॥१८॥ प्रथम कोई श्रेष्ठ मनवाले धनुर्नामक मुनीश्वर लोकों का पुत्ररूप मानसिक चिन्ता से जले हुए देख कर दुःखित हो गये ॥१९॥ और अमर पुत्र की इच्छा करके दारुण तप करते भये। हजार वर्ष बीत जाने पर धनुर्मुनि से देवता लोग बोले ॥२०॥ हे मुनीश्वर! तुम्हारे कठिन तप से हम सब प्रसन्न हैं इस लिये अपने मन के अनुसार श्रेष्ठ वर माँगो ॥२१॥ श्रीनारायण बोले—देवताओं के अमृत समान इस वचन को सुनकर वह तपोधन धनुर्नामक मुनि ने बुद्धिमान् और

अमर पुत्र को माँगा ॥२२॥ बाद उस ब्राह्मण से देवताओं ने कहा कि पृथिवी तल में ऐसा पुत्र नहीं है। तब धनुर्मुनि ने देवताओं से कहा कि अच्छा कोई निमित्त आयुवाला पुत्र हो ॥२३॥ देवताओं ने कहा कि क्या निमित्त है सो कहो। इस पर उस मुनि ने भी कहा कि यह महान् पर्वत के रहने तक आयु करो ॥२४॥ ऐसा ही हो, इस प्रकार कहकर इन्द्रादि देवता स्वर्ग को चले गये। धनुःशर्मा ने थोड़े समय में वैसा ही पुत्र को प्राप्त किया ॥२५॥ उस मुनि का पुत्र आकाश में चन्द्र के समान बढ़ने लगा। सोलहवें वर्ष के होने

मित्तायुर्भवत्विति ॥२३॥ सुराः प्रोचुर्निमित्तं किं वद सोऽप्यवदन्मुनिः ॥ असौ महान् गिरिर्यात्तावदायुर्विधियताम् ॥२४॥ एवमस्त्विति सम्पाद्य सेन्द्रा देवा दिवं ययुः ॥ धनुः-शर्मा सुतं लेभे कालेनाल्पेन तादृशम् ॥२५॥ स पुत्रो ववृधे तस्य तारापतिरिवाम्बरे ॥ प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं प्राह मुनीश्वरः ॥२६॥ हे वत्स! मुनयः सर्वे नावज्ञेयाः कदाचन ॥ शिक्षितोऽपि तथा पुत्रः सोद्वेगानकरोन्मुनीन् ॥२७॥ निमित्तार्बलोन्मत्तो ब्राह्मणानव-मन्यते ॥ कदाचिन्महिषो नाम मुनिः परमकोपनः ॥२८॥ पूजयामास विधिना शाल-ग्रामशिलां शुभाम् ॥ तदानीं स समागत्य तामादाय त्वरान्वितः ॥२९॥ चिक्षेप निज-

पर मुनीश्वर ने पुत्र से कहा ॥२६॥ हे वत्स! ये मुनि लोग कभी भी अपमान करने योग्य नहीं हैं। इस तरह शिक्षा देने पर भी उस पुत्र ने मुनियों को उद्विग्न किया ॥२७॥ निमित्तायु बल ले उन्मत्त उसने ब्राह्मणों का अपमान किया। किसी समय परम क्रोधी महिष नामक मुनि ने ॥२८॥ विधि से शुभ फल देने वाले शालग्राम शिला का पूजन किया उसी समय उस बालक ने वहाँ आकर शालग्राम की शिला को जल्दी से लेकर ॥२९॥ अपनी चञ्चलता के कारण हँसता हुआ पूर्ण जलवाले कूप में डाल दिया। बाद क्रोध से युक्त दूसरे

कालरुद्र के समान महिष मुनि ने ॥३०॥ उस धनुर्मुनि के पुत्र को शाप दिया कि यह अभी मर जाय परन्तु उसे मृत हुये न देखकर उनके मन में मृत्यु के कारण का ध्यान किया ॥३१॥ देवताओं ने इस धनुष के पुत्र को निमित्तायु वाला बनाया है। इस तरह चिन्ता करते हुए महिष मुनि ने श्वांस को छोड़ा ॥३२॥ जिस श्वास से कई कोटि महिष (भैंसा) पैदा हो गये और उन महिषों ने पर्वत को

चाञ्चल्यात् कूपे पूर्णजले हसन् ॥ ततः क्रोधसमाविष्टः कालरुद्र इवापरः ॥३०॥ शशाप धनुषः पुत्रमद्यैव म्रियतामयम् ॥ न मृतं पुत्रमालक्ष्य दध्यौ मनसि कारणम् ॥३१॥ निमित्तायुरयं देवैः कृतोऽयं धनुषः सुतः ॥ इति चिन्तापरेणाशु निःश्वासः प्रकटीकृतः ॥३२॥ महिषाः कोटिशो जातास्तैर्गिरिः शकलीकृतः ॥ तदानीं मृतिमापन्नो मुनिपुत्रोऽतिदुर्मतः ॥३३॥ धनुःशर्माऽतिदुःखेन विललाप मुहुर्मुहुः ॥ विलप्य बहुधा विप्रो गृह्य पुत्रकलेवरम् ॥३४॥ प्रविवेश चितावह्निं पुत्रदुःखातिपीडितः ॥ एवं हठात्सपुत्रा ये न सुखं यान्तिकुत्रचित् ॥३५॥ वैनतेयेन यो दत्तास्तनयोऽयं तपोधन ॥ तेन त्वं पुत्रवान् लोके स्पृहणीयो भविष्यति ॥३६॥ पुरुषोत्तममाहात्म्यात् प्रसन्नेन मयाऽनघ ॥ सुचिरं स्थापितोऽयं हि

टुकड़ा टुकड़ा कर दिया उसी समय अत्यन्त दुर्मद मुनि का लड़का मर गया ॥३३॥ धनुःशर्मा ने अत्यन्त दुःख से बार २ विलाप किया। बाद अनेक प्रकार विलाप कर पुत्र के शरीर को लेकर ॥३४॥ पुत्र के दुःख से अत्यन्त पीड़ित हो चिता की अग्नि में प्रवेश किया। इस प्रकार हठ से पुत्र प्राप्त करने वाले कहीं भी सुख को नहीं पाते हैं ॥३५॥ हे तपोधन! गरुड़ जी ने यह जो पुत्र दिया है इससे संसार में तुम प्रशंसनीय पुत्रवान होगे ॥३६॥ हे अनघ! मैंने पुरुषोत्तम के माहात्म्य से प्रसन्न होकर यह पुत्र चिरकाल तक स्थायी

और तुमको सुख देनेवाला रहे ऐसा किया ॥३७॥ पुत्र के साथ अतुल गृहस्थाश्रम के सुख को भोगने के बाद तुम ब्रह्मलोक को जाओगे वहाँ उत्तम सुख ॥३८॥ देवताओं के वर्ष से हजार वर्ष भोग कर पृथिवी पर जाओगे। हे द्विजोत्तम! वहाँ तुम चक्रवर्ती राजा होगे ॥३९॥ दृढधन्वा नाम से प्रसिद्ध तथा सेना, सवारी से युक्त हो दश हजार वर्ष पर्यन्त पृथ्वी के राज्य का सुख भोगोगे ॥४०॥ इन्द्र के

तनयः सुखदोऽस्तु ते ॥३७॥ गार्हस्थ्यमतुलं भुक्त्वा सह पुत्रेण सर्वदा ॥ ततस्त्वं ब्रह्मणो लोकं गत्वा तत्र महत्सुखम् ॥३८॥ दिव्याब्दवर्षसाहस्रं भुक्त्वा गन्तासि भूतले ॥ ततो राजा चक्रवर्ती भविष्यसि द्विजोत्तम ॥३९॥ दृढधन्वेति विख्यातः समृद्धबलवाहनः ॥ संवत्सराणामयुतं राज्यं भोक्ष्यसि पार्थिवम् ॥४०॥ अव्याहतबलैश्वर्यमाखण्डलपदाधिकम् ॥ गौतमीयं तवार्धाङ्गहारिणी महिषी तदा ॥४१॥ पतिसेवारता नित्यं नाम्ना च गुणसुन्दरी ॥ चत्वारस्ते सुता भाव्या राजनीतिविशारदाः ॥४२॥ कन्यैका च महाभागा सुशीला सुवरानना ॥ भुक्त्वा भोगान् महाभाग! सुरासुरसुदुर्लभान् ॥४३॥ कृतार्थोऽहं धरापीठे इत्यज्ञानविमोहितः ॥ अतिदुस्तरसंसारविषयाकृष्टमानसः ॥४४॥ यदा विस्मरसे विष्णुं

पद से अधिक अखण्ड बल और ऐश्वर्य होवेगी। उस समय यह गौतमी की महिषी (पटरानी) होवेगी ॥४१॥ नित्य पतिसेवा में तत्पर और गुणसुन्दरी नाम वाली होगी। राजनीति के जानने वाले तुमको चार पुत्र होंगे ॥४२॥ और सुन्दर मुखवाली महाभागा सुशीला नाम की कन्या होगी। हे महाभाग! सुर और असुर को दुर्लभ संसार के सुखों को भोगकर ॥४३॥ इस पृथिवी तल में हम कृतार्थ हैं अर्थात् हमने सब कुछ किया अब कुछ कर्तव्य नहीं है इस तरह अज्ञान से मोहित होकर अत्यन्त दुस्तर संसार के विषयों से

खिचे हुए मन वाले ॥४४॥ तुम हे विप्र ! संसार रूपी समुद्र से पार करने वाले विष्णु भगवान् को भूल जाओगे तब उस समय वन में यह तुम्हारा पुत्र शुक पक्षी होकर ॥४५॥ वट वृक्ष के ऊपर बैठ कर वैराग्य पैदा करने वाले श्लोक को बार बार पढ़ता हुआ तुमको इस प्रकार बोध करायेगा ॥४६॥ शुक पक्षी के वचन को सुनकर दुःखित मन होकर घर जाओगे। बाद संसार के विषय सुखों को छोड़

संसारार्णवतारकम् ॥ अयं ते तनयो विप्र शुको भूत्वा तदा वने ॥४५॥ वटवृक्षं समाश्रित्य त्वामेवं बोधयिष्यति ॥ वैराग्योत्पादकं पद्यं पठन्नेव मुहुर्मुहुः ॥४६॥ श्रुत्वा वाक्यं शुकप्रोक्तं दुर्मना गृहमेष्यसि ॥ अथ चिन्तार्णवे मग्नं त्यक्त्वा विषयजं सुखम् ॥४७॥ वाल्मीकिस्त्वां समागत्य बोधयिष्यति भूसुर ॥ तद्वाक्यैश्छिन्नसन्देहस्त्यक्त्वा लिङ्गं हरेः पदम् ॥४८॥ गमिष्यसि सपत्नीकः पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ वदत्येवं महाविष्णौ समुत्तस्थौ द्विजात्मजः ॥४९॥ दम्पती तौ सुतं दृष्ट्वा महानन्दौ बभूवतुः ॥ सुराः सर्वेऽपि सन्तुष्टा ववृषुः कुसुमाकरान् ॥५०॥ ननाम शुकदेवोऽपि श्रीहरिं पितरौ च तौ ॥ गरुडोऽप्यतिसंहृष्टस्तं दृष्ट्वा ससुतं द्विजम् ॥५१॥ ब्राह्मणश्चकितो भूत्वा ननाम श्रीहरिं तदा ॥ बद्धाञ्जलि-

कर चिन्तारूपी समुद्र में मग्न ॥४७॥ हे भूसुर ! तुमको वाल्मीकि मुनि आकर ज्ञान करायेंगे। उनके वचन से निःसन्देह हो लिङ्ग (शरीर) को छोड़ कर हरि भगवान् के पद को ॥४८॥ सपत्नीक दोनों (स्त्री पुरुष) तुम जाओगे जो कि पद आवागमन से रहित कहा गया है। इस प्रकार महाविष्णु के कहने पर ब्राह्मण-बालक उठ खड़ा हुआ ॥४९॥ वे दोनों स्त्री पुरुष ब्राह्मण पुत्र को देखकर अत्यन्त आनन्दित हो गये। सब देवता लोग भी सन्तुष्ट होकर पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥५०॥ शुकदेव ने भी श्रीहरि को और माता

पिता को प्रणाम किया। उस ब्राह्मण को पुत्र के साथ देखकर गरुड़जी भी अत्यन्त प्रसन्न होते भये ॥५१॥ उस समय चकित होकर ब्राह्मण ने श्रीहरि भगवान् को नमस्कार किया और बद्धाञ्जलि होकर जगदीश्वर से बोला ॥५२॥ हृदय में होने वाले सन्देह को दूर करने के लिये हर्ष के कारण गद्गद वचन से बोला ॥५३॥ हे हरे! मैंने चार हजार वर्ष पर्यन्त लगातार अत्यन्त दुष्कर तप किया उस समय मेरे को आपने वहाँ आकर जो कठोर वचन कहा कि हे वत्स! हमने अच्छी तरह देखा है इस समय तुमको निश्चय

पुटो विप्रः प्रोवाच जगदीश्वरम् ॥५२॥ हृदिस्थं संशयं छेत्तुं हर्षगद्गदया गिरा ॥५३॥ चत्वार्यब्दसहस्रमेवमनिशं तप्तं तपो दुष्करं तत्रागत्य वचस्त्वया निगदितं यन्मां हरे कर्कशम् ॥ हे वत्साद्य विलोकितं तव सुतौ नैवास्ति नैवास्ति हितद्वाक्यं व्यतिलङ्घ्य मे मृतसुतोत्थाने च हेतुं वद ॥५४॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे सुदेवपुत्र जीवनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

सूत उवाच—इति ब्रुवाणं प्राचीनं मुनिमाह तपस्विनः ॥ प्रीणयन्निव सद्वाचा नारदो मुनिसत्तमः ॥१॥ किमुवाचोत्तरं ब्रह्मन् सुदेवं तपसां निधिम् ॥ प्रसन्नो भगवान् विष्णुस्तन्मे

पुत्र नहीं है। हे हरे! उस वचन का उलङ्घन कर मेरे मृत पुत्र को जीवित करने का कारण क्या है सो आप कहिये ॥५४॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे सुदेवपुत्रजीवनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

श्रीसूतजी बोले। हे तपस्वियों! इस प्रकार कहते हुए प्राचीन मुनि नारायण को मुनिश्रेष्ठ नारद मुनि ने वचनों से प्रसन्न करके कहा ॥१॥ हे ब्रह्मन्! तपोनिधि सुदेव ब्राह्मण को प्रसन्न विष्णु भगवान् ने क्या उत्तर दिया, सो हे तपोनिधे! सो मेरे को कहिये ॥२॥

श्रीनारायण बोले । इस प्रकार महात्मा सुदेव ब्राह्मण ने विष्णु भगवान् से कहा बाद भक्तवत्सल विष्णु भगवान् ने वचनों से सुदेव ब्राह्मण को प्रसन्न करके कहा ॥३॥ हरि भगवान् बोले । हे द्विजराज ! जो तुमने किया है उसको दूसरा नहीं करेगा । जिसके करने से हम प्रसन्न हुए उसको आप नहीं जानते हैं ॥४॥ यह हमारा प्रिय पुरुषोत्तम मास गया है । स्त्री के सहित शोक में मग्न तुमसे उस पुरुषो-

ब्रूहि तपोनिधे ॥२॥ श्री नारायण उवाच ॥ इत्थमावेदितो विष्णुः सुदेवेन महात्मना ॥ प्रत्याह प्रीणयन् वाचा भगवान् भक्तवत्सलः ॥३॥ हरिरुवाच ॥ द्विजराज ! कृतं यत्ते नैतदन्यः करिष्यति ॥ न तद्वेत्सि भवान्नूनं येनाहं तुष्टिमाप्तवान् ॥४॥ अयं मम प्रियो मासः प्रयातः पुरुषोत्तमः ॥ तत्सेवा ते समजनि शोकमग्नस्य सस्त्रियः ॥५॥ एकमप्युपवासं यः करोत्यस्मिंस्तपोनिधे ॥ असावनन्तपापानि भस्मीकृत्य द्विजोत्तम ॥ सुरयानं समारुह्य वैकुण्ठं याति मानवः ॥६॥ मासमात्रं निराहारो ह्यकालजलदागमात् ॥ त्रिषु कालेषु ते स्नानं सञ्जातं प्रतिवासरम् ॥७॥ अभ्रस्नानं त्वया लब्धं मासमात्रं तपोधन ॥ उपवासाश्च ते जातास्तावन्मात्रमखण्डिताः ॥८॥ शोकसागरमग्नस्य पुरुषोत्तम सेवनम् ॥ अजानतो-

त्तम मास की सेवा हुई ॥५॥ हे तपोनिधे ! इस पुरुषोत्तम मास में जो एक भी उपवास करता है हे द्विजोत्तम ! वह मनुष्य अनन्त पापों को भस्म कर सुरयान (विमान) से वैकुण्ठ लोक को जाता है ॥६॥ सो तुमको एक महीना विना भोजन किये बीत गया और असमय में मेघ के आने से प्रतिदिन प्रातः मध्याह्न सायम् तीनों काल में स्नान भी भया ॥७॥ हे तपोनिधे ! तुमको एक महीना तक अभ्रस्नान (मेघ के जल से स्नान) मिला और उतने ही अखण्डित उपवास हो गये ॥८॥ शोकरूपी समुद्र मे मग्न होने के कारण चेतना (ज्ञान)

शक्ति से हीन तुमको अज्ञान से पुरुषोत्तम का सेवन हुआ ॥ ९ ॥ तुम्हारे इस साधन का प्रमाण (तौल) कौन कर सकता है। तराजू के एक तरफ पलरे में वेद में कहे हुए जितने साधन हैं ॥१०॥ उन सबको रखकर और दूसरे तरफ पुरुषोत्तम को रखकर देवताओं के सामने ब्रह्मा ने तोलन किया ॥११॥ और सब लघु (हलके) हो गये पुरुषोत्तम गुरु (भारी) हो गया। इसलिए भूमि के रहने वाले

ऽपि सञ्जातं चेतनारहितस्य ते ॥९॥ त्वदीयसाधनस्यास्य प्रमाणं कः करिष्यति ॥ एकतः साधनान्येव वेदोक्तानि च यानि वै ॥१०॥ तानि सर्वाणि संगृह्य ह्येकतः पुरुषोत्तमम् ॥ तोलयामास देवानां सन्निधौ चतुराननः ॥११॥ लघून्यन्यानि जातानि गुरुश्च पुरुषोत्तमः तस्माद्भूमिस्थितैर्लोकैः पूज्यते पुरुषोत्तमः ॥१२॥ पुरुषोत्तममासस्तु सर्वत्रास्ति तपोधन ॥ तथापि पृथिवीलोके पूजितः सफलो भवेत् ॥१३॥ तस्मात् सर्वात्मना वत्स भवान् धन्योऽस्ति साम्प्रतम् ॥ यदस्मिंस्तप्तवानुग्रं तपः परमदारुणम् ॥१४॥ मानुषं जन्म सम्प्राप्य मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ स्नानदानादिरहिता दरिद्रा जन्मजन्मनि ॥१५॥ तस्मात् सर्वात्मना सेव्यो मत्प्रियः पुरुषोत्तमः ॥ स मे वल्लभतां याति धन्यो भाग्ययुतो नरः ॥१६॥ श्रीनारायण

लोगों से पुरुषोत्तम का पूजन किया जाता है ॥१२॥ हे तपोधन ! पुरुषोत्तम मास सर्वत्र है फिर भी इस पृथिवी लोक में पूजन करने से फल देनेवाला कहा है ॥१३॥ इससे हे वत्स ! इस समय आप सब तरह से धन्य हैं जो इस पुरुषोत्तम मास में उग्र तथा परम दारुण तप को किया ॥१४॥ मनुष्य शरीर को प्राप्त कर जो लोग श्रीपुरुषोत्तम मास में स्नान दान आदि से रहित रहते हैं वे लोग जन्म-जन्म में दरिद्र होते हैं ॥१५॥ इस लिए जो सब तरह से हमारे को प्रिय पुरुषोत्तम मास का सेवन करता है वह मनुष्य हमारा प्रिय

धन्य और भाग्यवान् होता है ॥१६॥ श्रीनारायण बोले ! हे मुने ! इस प्रकार जगदीश्वर हरि भगवान् कह कर गरुड़जी पर सवार होकर शुद्ध बैकुन्ठ भवन को चले गये ॥१७॥ सपत्नीक सुदेवशर्मा पुरुषोत्तम मास के सेवन से मृत्यु से उठा हुआ शुकदेव पुत्र को देखकर दिन रात्रि अत्यन्त प्रसन्न होता भया ॥१८॥ मुझसे अज्ञानवश पुरुषोत्तम मास का सेवन हुआ और वह पुरुषोत्तम मास का सेवन फलीभूत हुआ । जिसके सेवन से मृत पुत्र उठ खड़ा हुआ ॥१९॥ आश्चर्य है कि ऐसा मास कहीं नहीं देखा । इस तरह आश्चर्य करता

उवाच ॥ एवमुक्त्वा हरिः शीघ्रं जगाम जगदीश्वरः ॥ वैनतेयं समारुह्य वैकुण्ठममलं मुने ॥१७॥ सपत्नीकः सुदेवस्तु मुमुदेऽहर्निशं भृशम् ॥ मृतोत्थितं शुकं दृष्ट्वा पुरुषोत्तम-सेवनात् ॥१८॥ अजानतो ममैवासीत्पुरुषोत्तमसेवनम् तदेव सफलं जातं येन पुत्रो मृतो-त्थितः ॥१९॥ अहो एतादृशो मासो नैव दृष्टः कदाचन ॥ इत्येवं विस्मयाविष्टस्तं मासं समपूजयत् ॥२०॥ तेत पुत्रेण मुमुदे सपत्नी को द्विजोत्तमः ॥ पितरं नन्दयामास शुकदेवोऽपि सत्कृतैः ॥२१॥ स्तुवन् मासं च विष्णुं च पूजयामास सादरम् । कर्ममार्गस्पृहां त्यक्त्वा भक्तिमार्गैकसस्पृहः ॥२२॥ सर्वदुःखापहं मासं वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥ जपहोमादिभिस्त-

हुआ उस पुरुषोत्तम मास का अच्छी तरह पूजन करने लगा ॥२०॥ वह सपत्नीक ब्राह्मणश्रेष्ठ उस पुत्र से प्रसन्न हुआ और शुकदेव पुत्र ने भी अपने उत्तम कार्यों से सुदेव शर्म्मा पिता को प्रसन्न किया ॥२१॥ सुदेवशर्म्मा पुरुषोत्तम मास की प्रशंसा करता हुआ आदर के साथ विष्णु भगवान् की पूजा की और कर्ममार्ग से होने वाले फलों में इच्छा का त्याग कर एक भक्तिमार्ग में ही (स्पृहा) रखता हुआ ॥२२॥ समस्त दुःखों का नाश करने वाला श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास को जान कर उस मास के आने पर स्त्री के साथ जप हवन

आदि से श्रीहरि भगवान् का सेवन करने लगा ॥२३॥ वह सपत्नीक ब्राह्मण श्रेष्ठ एक हजार वर्ष रात्रि दिन समस्त विषयों का उपभोग कर विष्णु भगवान् के उत्तम लोक को गया ॥२४॥ जो योगियों को भी दुष्प्राप्य है तो यज्ञ करने वालों को कहाँ से प्राप्त हो सकता है ? । जहाँ जाकर विष्णु भगवान् के समीप वास करते हुए शोक के भागी नहीं होते हैं ॥२५॥ वहाँ पर होने वाले सुखों को भोग कर गौतमी

स्मिन्न भजच्छ्रीहरिं स्त्रिया ॥२३॥ भुक्त्वाऽथ विषयान् सर्वान् सहस्राब्दमहर्निशम् ॥ जगाम परमं लोकं सपत्नीको द्विजोत्तमः ॥२४॥ योगिनामपि दुष्प्रापं याजकानां तु तत्कुतः ॥ यत्र गत्वा न शोचन्ति वसन्तो हरिसन्निधौ ॥२५॥ तत्रत्यं सुखमासाद्य सपत्नीको भवं गतः ॥ स एव दृढधन्वा त्वं प्रथितः पृथिवीपतिः ॥२६॥ पुरुषोत्तममासस्य सेवनात् सकलर्द्धिभाक् ॥ महिषीयं पुरा राजन् गौतमी पतिदेवता ॥२७॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं पृष्टवानसि यन्मम ॥ शुकस्तु तव भूपाल पूर्वजन्मनि यः सुतः ॥२८॥ शुकदेव इति ख्यातो हरिणा योऽनुजीवतः ॥ द्वादशाब्दसहस्रायुर्भुक्त्वा वैकुण्ठमेयिवान ॥२९॥ स एवारण्यसरसि वटवृक्षं समाश्रितः ॥ त्वामेवागतमालोक्य पितरं पूर्वजन्मनः ॥३०॥ हितानामुपदेष्टारं प्रत्यक्षं

तथा सुदेवशर्म्मा दोनों स्त्री पुरुष इस पृथिवीतल में आये। वही सुदेवशर्म्मा इस समय तुम दृढ़धन्वा नाम से प्रसिद्ध पृथिवी के राजा भये ॥२६॥ पुरुषोत्तम मास के सेवन से समस्त ऋद्धियों के भोक्ता भये। हे राजन्। यह आपकी पूर्व जन्म की पतिदेवता गौतमी ही पटरानी है ॥२७॥ हे भूपाल ! जो आपने मुझसे पूछा था सो सब मैंने कहा और पक्षी तो पूर्वजन्म में जो पुत्र ॥२८॥ शुकदेव नाम से प्रसिद्ध हरि भगवान् ने जिसको जिलाया था वह बारह हजार वर्ष तक सुख भोग कर वैकुण्ठ को गया ॥२६॥ वहाँ वन के तालाब के

समीप वट वृक्ष पर बैठ कर पूर्वजन्म के पिता और इस प्रकार तुमको आये हुए देखकर ॥३०॥ मेरे हितों के उपदेश करनेवाले, प्रत्यक्ष देवता, विषयरूपी सर्प से दूषित संसार-सागर में मग्न ॥३१॥ इस प्रकार पिता को देखकर और अत्यन्त कृपा से युक्त वह शुक पक्षी विचार करने लगा कि यदि मैं इस राजा को ज्ञान का का उपदेश नहीं करता हूँ तो मेरा भी बन्धन होता है ॥३२॥ जो सुत अपने पिता की पुन्नाम नरक में रक्षा करता है वही पुत्र कहा गया है। आज मेरा यह वेदार्थ का ज्ञान भी वृथा हो जायगा ॥३३॥ इसलिये

देवतं मम ॥ संसारसागरे मग्नं विषयव्यालदूषिते ॥३१॥ अत्यन्तकृपयाऽविष्टश्चिन्तयामास कीरजः ॥ न बोधयामि चेद्भूपं ममापि बधनं भवेत् ॥३२॥ पुन्नामनरकाद्यस्तु त्रायते पितरं सुतः ॥ इति श्रुत्यर्थबोधोऽपि स्यादेवाद्यान्यथा मम ॥३३॥ तस्मादुपकरिष्यामि पितरं पूर्वजन्मनः ॥ अवधार्य वचश्चेत्थं कीरजोऽजीगदन्नृप ॥३४॥ इत्येतत्कथितं सर्वं यद्य-त्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ अतः परं गमिष्यामि सरयूं पापनाशनीम् ॥३५॥ श्रीनारायण उवाच— इत्येवं प्रथमजनुश्चरित्रमुक्त्वा भूपस्य प्रथितयशस्विनश्चिराय ॥ गच्छन्तं मुनिमनुनीय राज-राजः प्रावोचत्किमपि नमन्नगण्यपुण्यः ॥३६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममास-

अपने पूर्वजन्म के पिता का उद्धार करूँगा ! हे नृप ! दृढधन्वा ! इस तरह निश्चय करके वह शुक पक्षी वचन बोला ॥३४॥ हे पापरहित ! राजन् ! जो आपने पूछा सो यह सब मैंने कहा अब उसके बाद पापों का नाश करने वाली सरयू नदी को जाऊँगा ॥३५॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार बहुत समय तक उस प्रसिद्ध यशस्वी राजा दृढधन्वा के पूर्वजन्म का चरित्र कहकर जाते हुए वाल्मीकि मुनि की प्रार्थना कर असंख्य पुण्यवान, राजाओं का राजा वाल्मीकि मुनि को नमस्कार करता हुआ कुछ बोला ॥३६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे

पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे वाल्मीकिनोक्तदृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तममाहात्म्यकथनं नामैकोनविंशतितमोऽध्याय॥॥१६॥
सूतजी बोले—हे विप्र लोग! नारायण के मुख से राजा दृढधन्वा के पूर्वजन्म का चरित्र सुनकर अत्यन्त तृप्ति न होने के कारण नारद मुनि ने श्रीनारायण से पूछा ॥१॥ नारद जी बोले—हे तपोधन! महाराज दृढधन्वा ने मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी से क्या कहा?

माहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे वाल्मीकिनोक्तदृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तममासमाहात्म्यकथनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१६॥

सूत उवाच—नारायणमुखाच्छ्रुत्वा प्राक्तनं दृढधन्वनः ॥ नातितृप्तमना विप्रा नारदः पृष्टवान्मुनिम् ॥१॥ नारद उवाच ॥ किमुवाच महाराजो वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥ तन्मे वद विनीताय तपोधन सुविस्तरम् ॥२॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्येऽहं यदुक्तं दृढधन्वना ॥ अनुनीय महाप्राज्ञं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥३॥ दृढधन्वोवाच ॥ पुरुषोत्तममासोऽयं कथं कार्यो मुमुक्षुभिः ॥कीदृशी कस्य पूजा च किं दानं को विधिर्मुने ॥४॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व सर्वलोकहिताय मे ॥ सर्वलोकहितार्थाय चरन्ति हि भवादृशाः ॥५॥

सो विस्तार के साथ विनीत मुझको कहिये ॥२॥ नारायण बोले—हे नारद सुनिये। राजादृढधन्वा ने महाप्राज्ञ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी की प्रार्थना कर जो कुछ कहा सो मैं कहूँगा ॥३॥ दृढधन्वा बोला—मुक्ति की इच्छा करने वाले लोगों से पुरुषोत्तम मास का सेवन किस प्रकार किया जाय? दान क्या दिया जाय? और विधि क्या है ॥४॥ यह सब समस्त लोक के हित के लिये मुझसे कहिये क्योंकि आपके समान महात्मा लोग संसार के हित के लिये ही पृथ्वी में विचरते हैं ॥५॥ यह पुरुषोत्तम मास स्वयं साक्षात् पुरुषोत्तम भग-

वान् हैं उस पुरुषोत्तम मास के सेवन से महान् पुण्य होता है। यह बात मैंने आपके मुख से भलीभाँति सुनी है ॥६॥ मैंने पूर्वजन्म में सुदेव नामक ब्राह्मणश्रेष्ठ होकर विधि से मास का सेवन किया। जिसके प्रताप स मेरा मृत पुत्र उठ खड़ा हो गया ॥७॥ हे ब्रह्मन्! पुत्रशोक के कारण अचेत और निरन्तर निराहार मेरा यह पुरुषोत्तम मास अज्ञान से बीत गया ॥८॥ अज्ञान से भये पुरुषोचम मास

असौ मासः स्वयं साक्षाद्भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ तस्मिन्कृते महत्पुण्यं त्वन्मुखात्संश्रुतं मया-॥६॥ पूर्वजन्मन्यहं भूत्वा सुदेवो ब्राह्मणोत्तमः ॥ विधिना कृतवान्मासं दृष्ट्वा पुत्रं मृतोत्थि-तम् ॥७॥ अजानतोऽपि मे ब्रह्मन्पुत्रशोकादचेतसः ॥ निराहारस्य सततं गतश्च पुरुषो-त्तमः ॥८॥ तस्याप्येतत्फलं जातं शुकदेवो मृतोत्थितः ॥ अनुभूतमिमं मासं संसेवे हरिणो-दितः ॥९॥ इह जन्मनि तत्सर्वं विस्मृतं मे तपोधन ॥ एतत्पूजाविधानं मे वद विस्तरतः पुनः ॥१०॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय परब्रह्म विचिन्तयेत् ॥ ततो व्रजेन्नै-र्ऋताशां बृहत्सोदकभाजनः ॥११॥ ग्रामाद्दूरतरं गच्छेत्पुरुषोत्तमसेवकः ॥ दिवासन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ॥१२॥ अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ वक्त्रं

का ऐसा फल हुआ कि मृत्यु को प्राप्त भी शुकदेव उठ खड़ा हो गया। बाद हरि भगवान् के कहने पर इस अनुभूत (अनुभव किये हुए) पुरुषोत्तम मास का सेवन किया ॥९॥ हे तपोधन! मुझे इस जन्म में वह सब भूल गया है इसलिये इस पुरुषोत्तम मास का पूजन बिधान विस्तार के साथ मुझसे फिर कहिये ॥१०॥-वाल्मीकिजी बोले—ब्राह्ममुहूर्त में उठकर परब्रह्म का चिन्तन करे उसके बाद बड़े पात्र (लोटा) में जल लेकर नैर्ऋत्य दिशा में जाय ॥११॥ पुरुषोत्तम मास का सेवन करने वाला शौच के लिए ग्राम से दूर जाय। दिन में

तथा सन्ध्या (सन्धियों) में कान पर जनेऊ को रखकर और उत्तरमुख होकर ॥१२॥ पृथिवी को तृण से आच्छादित कर वस्त्र से शिर बाँध कर और मुख को बन्द कर अर्थात् मौन होकर न थूके न श्वांस ले ॥१३॥ इस तरह मल मूत्र का त्याग करे। और यदि रात्रि हो तो दक्षिणमुख होकर मल मूत्र का त्याग करे और मूत्रेन्द्रिय (लिङ्ग) को पकड़ कर उठे। शुद्ध मिट्टी को ले ॥१४॥ आलस्य छोड़कर दुर्गन्ध दूर करने के लिए मृतिका से शुद्धि करे। लिङ्ग में एक बार, गुदा में पाँच बार, बायें हाथ में तीन बार, दोनों हाथों में दश

नियम्य यत्नेन नो ष्ठीवेन्नोच्छ्वसेदपि ॥१३॥ कूर्यान्मूत्रपुरीषं च रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय गृहीतशुचिमृत्तिकः ॥१४॥ गन्धलेपक्षयकरं कुर्याच्छौचमतन्द्रितः ॥
एका लिङ्गेगुदे पञ्चत्रिर्वामे दश चोभयोः ॥१५॥ द्विसप्त पादयोश्चैव गार्हस्थ्यं शौचमुच्यते ॥
कृत्वा शौचं तु प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जलैः ॥१६॥ तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतोद्धृतवारिणा ॥ अरत्निद्वयसञ्चारि त्यक्त्वा कुर्यादनुद्धृते ॥१७॥ पश्चात्तच्छोधयेत्तीर्थमशुद्धमन्यथा हि तत् ॥ एवं शौचं प्रकुर्वीत पुरुषोत्तमसद्व्रती ॥१८॥ ततः षोडश गण्डूषान्प्रकुर्याद्द्वादशैव वा ॥ मूत्रोत्सर्गे तु गण्डूषानष्टौ वा चतुरो गृही ॥१९॥ उत्थाय नेत्रे

बार मिट्टी लगावे ॥१५॥ दोनों पैरों में १४ चौदह बार लगावे। यह गृहस्थाश्रमी को शौच कहा है। इस तरह शौच कर मिट्टी और जल से पैर और हाथ धोकर दूसरा कार्य करे ॥१६॥ तीर्थ में शौच न करे। तीर्थ से जल निकाल कर शौच करे। दो हाथ जलवाले गढई को छोड़ कर (यदि अनुद्धृत जल में अर्थात् तीर्थ में) शौच करे ॥१७॥ तो बाद तीर्थ की शुद्धि करे अन्यथा (शुद्धि न करने से) तीर्थ अशुद्ध हो जाता है। इस प्रकार पुरुषोत्तम का उत्तम व्रत करने वाला शौच करे ॥१८॥ तदन्तर १६ कुल्ला अथवा बारह

कुल्ला करे। मूत्र का त्याग करने के बाद ८ आठ अथवा ४ चार कुल्ला गृहस्थ करे ॥१९॥ उठकर प्रथम नेत्रों को धो डाले बाद दतुअन ले आवे और इस मन्त्र को कहकर दन्तधावन करे ॥२०॥ हे वनस्पते! आयु, बल, यश, वर्च, प्रजा, पशु, वसु (धन), ब्रह्मज्ञान और मेधा (बुद्धि) को मेरे लिए दो ॥२१॥ अपामार्ग (चिचिड़ा) अथवा बेर की बारह अंगुल की छेद रहित दतुअन कानी अङ्गुली के समान मोटी हो जिसके पर्व के आधे भाग में कूची य ी हो उस दतुअन से मुख शुद्धि करे ॥२२॥ रविवार के दिन काष्ठ से दतुअन

प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं समाहरेत् ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य दन्तधावनमाचरेत् ॥२०॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥२१॥ अपामार्गं बादरं वा द्वादशाङ्गुलमव्रणम् ॥ कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्थूलं पूर्वार्द्धकृतकूर्चकम् ॥२२॥ शुचिर्द्वादशगण्डूषैर्निषिद्धं भानुवासरे ॥ आचम्य प्रयतः सम्यक् प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥२३॥ स्नानादनन्तरं तावत्तर्पयेत्तीर्थदेवताः ॥ समुद्रगानदीस्नानमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥२४॥ वापीकूपतडागेषु मध्यमं कथितं बुधैः ॥ गृहे स्नानं तु सामान्यं गृहस्थस्य प्रकीर्त्तितम् ॥२५॥ ततश्च वाससी शुद्धे शुक्ले च परिधाय च ॥ उत्तरीयं सदा धार्यं ब्राह्मणेन विजानता ॥२६॥

करना मना किया है इस लिए बारह कुल्ला से मुखशुद्धि करें बाद आचमन कर अच्छी तरह प्रातःकाल में स्नान करे ॥२३॥ स्नान के बाद उसी समय तीर्थ के देवताओं को तर्पण के द्वारा जल देवे। और समुद्र में मिली हुई नदी में स्नान करना विद्वानों ने मध्यम कहा है ॥२४॥ बावली, कूप, तालाब में स्नान करना विद्वानों ने मध्यम कहा है और गृहस्थ को गृह में स्नान करना सामान्य कहा है ॥२५॥ स्नान के बाद शुद्ध और शुक्ल ऐसे दो वस्त्रों को धारण करे। ब्राह्मण ऊर्ध्व वस्त्र को सावधानी के साथ हमेशा धारण करे ॥२६॥

पवित्र स्थान में पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर बैठे और शिखा (चोटी) बाँधकर दोनों जाँघों के अन्दर हाथों को रखे ॥२७॥ कुश की पवित्री हाथ में धारण कर आचमनक्रिया को करे। ऐसा करने से पवित्री अशुद्ध नहीं होती है परन्तु भोजन करने से पवित्री अशुद्ध हो जाती है इसलिये भोजन के बाद उस पवित्री का त्याग करे ॥२८॥ आचमनक्रिया के बाद गोपीचन्दन की मिट्टी से तिलक धारण करे वह तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र हो, सीधा हो, सुन्दर हो और दण्डा के आकार का हो ऐसा धारण करे ॥२९॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र हो अथवा त्रिपुण्ड्र

उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुखो वा उदङ्मुखः ॥ भूत्वा बद्धशिखः कुर्यादन्तर्जानुभुजद्वयम् ॥२७॥ सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ॥ नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्त्वोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥२८॥ आचम्य तिलकं कुर्याद्गोपीचन्दनमृत्स्नया ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं दण्डाकारं प्रकल्पयेत् ॥२९॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥ निवसत्यूर्ध्वपुण्ड्रे तु श्रिया सह हरिः स्वयम् ॥३०॥ त्रिपुण्ड्रे धूर्जटिः साक्षादुमया सह सर्वदा ॥ विना छिद्रं तु तत्पुण्ड्रं शुनः पादसमं विदुः ॥३१॥ श्वेतं ज्ञानकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं नृणाम् ॥ पीतं सर्वर्द्धिदं प्रोक्तमन्यत्तु परिवर्जयेत् ॥३२॥ शङ्खचक्रादिकं धार्यं गोपीचन्दनमृत्स्नया ॥ सर्व-

हो परन्तु उसके मध्य में छिद्र बनावे। ऊर्ध्वपुण्ड्र में लक्ष्मी के साथ हरि भगवान् स्वयं वास करते हैं ॥३०॥ त्रिपुण्ड्र में पार्वती के साथ साक्षात् शङ्कर भगवान् सदा वास करते हैं। बिना छिद्र का पुण्ड्र कुत्ते के पैर के समान विद्वानों ने कहा है ॥३१॥ सफेद तिलक ज्ञान को देने वाला है। लाल तिलक मनुष्यों को वशीकरण कहा है। पीला तिलक समस्त ऋद्धि को देनेवाला है। इससे भिन्न तिलक को नहीं लगावे ॥३२॥ गोपीचन्दन की मिट्टी से शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारण करे। यह समस्त पापों को नाश करने वाला और

पूजा का अङ्ग कहा गया है ॥ ३३ ॥ जिसके शरीर में शङ्ख चक्रआदि भगवान् के आयुधों का चिह्न देखने में आता है उस मनुष्य को मनुष्य नहीं समझना। वह भगवान का शरीर है ॥ ३४ ॥ जो शङ्ख चक्र आदि चिह्नों को नित्य धारण करता है उस देही के पापपुण्यरूप हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ नारायण के आयुधोंसे जिसका शरीर चिन्हित रहता है उसका पाप कोटि (करोड़ों पाप)

पापक्षयकरं पूजाङ्गं परिकीर्त्तितम् ॥३३॥ शङ्खचक्रादिचिह्नानि दृश्यन्ते यस्य विग्रहे ॥ मर्त्यो मर्त्यो न विज्ञेयः स नित्यं भगवत्तनुः ॥३४॥ पापं सुकृतरूपं तु जायते तस्य देहिनः ॥शङ्खचक्रादिचिह्नानि यो धारयति नित्यशः ॥३५॥ नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य विग्रहः ॥ पापकोटियुतस्यापि तस्य किं कुरुते यमः ॥३६॥ प्राणायामं ततः कृत्वा सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ॥ पूर्वसन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥३७॥ गायत्रीमभ्यसेत्ता-वद्यावदादित्यदर्शनम् ॥ सावित्रैरनघैर्मन्त्रैरुपस्थाय कृताञ्जलिः ॥३८॥ आत्मपादौ तथा भूमौ सन्ध्याकालेऽभिवादयेत् ॥ यस्य स्मृत्येति मन्त्रेण यदूनं परिपूरयेत् ॥३९॥ यस्तु सन्ध्यामुपासीत श्रद्धया विधिवद्द्विजः ॥ न तस्य किञ्चिद्दुष्प्रापं त्रिषु लोकेषु विद्यते

होने पर भी यमराज क्या कर सकता है ? ॥३६॥ बाद प्राणायाम करके सन्ध्यावन्दन करे। प्रातःकाल की सन्ध्या विधिपूर्वक नक्षत्र के रहने पर करे ॥३७॥ जब तक सूर्यनारायण का दर्शन न हो तब तक गायत्री मन्त्र का जप करे और सूर्योपस्थान के मन्त्रों से उठकर तथा आञ्जलि बाँधकर उपस्थान करे ॥३८॥ सायङ्काल के समय अपने पैर को पृथिवी में करके अभिवादन (नमस्कार) करे। यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ जो कमी रह गई हो उसको इस मन्त्र से पूर्ण करे ॥३९॥

जों द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) श्रद्धा के साथ सन्ध्या करता है उसको तीनों लोक में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है ॥४०॥ दिन के आदि भाग (प्रातःकाल) में होनेवाले कृत्य को कहा । इस प्रकार प्रातःकाल की नित्य क्रिया को करके हरि भगवान् की पूजा को करे ॥४१॥ लीपे हुए शुद्ध स्थान में नियम में स्थित होकर और मौन तथा पवित्र होकर गोवर से वृत्त (गोल) अथवा चतुरस्र (चौकोन) मण्डल को ॥४२॥ वनाकर व्रत की सिद्धि के लिये चावलों से अष्टदल कमल बनावे ! वाद सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, अथवा मिट्टी का मज-

॥४०॥ दिवसस्यादिमे भागे कृत्यमेतदुदीरितम् ॥ एवं कृत्वा क्रियां नित्यां हरिपूजां समा-रेत् ॥४१॥ उपलिप्ते शुचौ देशे नियतो वाग्यतः शुचिः ॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा मण्डलं गोमयेन तु ॥४२॥ विधायाष्टदलं कुर्यात्तण्डुलैर्व्रतसिद्धये ॥ सौवर्णं राजतं ताम्रं मृन्मयं सुदृढं नवम् ॥४३॥ अव्रणं कलशं शुद्धं स्थापयेन्मण्डलोपरि ॥ तत्रोदकं समापूर्य शुद्ध-तीर्थाहृतं शिवम् ॥४४॥ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ॥ मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥४५॥ कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ऋग्वे-दोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥४६॥ अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥

बूत और नवीन ॥४३॥ व्रण (छिद्र) रहित शुद्ध कलश को उस मण्डल के ऊपर स्थापित करे और उस कलश में शुद्ध तीर्थों से लाये हुए कल्याणप्रद जल को भर कर ॥४४॥ कलष के मुख में विष्णु, कण्ठ में रुद्र भगवान् अच्छी तरह वास करते हैं। उसके मूल में ब्रह्मा जी स्थित रहते हैं, मध्यभाग में मातृगण कहे गये हैं ॥४५॥ कोख में समस्त समुद्र और सात द्वीप वाली वसुन्धरा (पृथिवी), ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वण वेद ॥४६॥ व्याकरण आदि अङ्गों के साथ ये सब कलश में समाश्रित (स्थित) हों। इस

प्रकार कलश का स्थापित करके उसमें तीर्थों का योग करे अर्थात् आवाहन करे ॥४७॥ गङ्गा, गोदावरी, कावेरी और सरस्वती मेरे शान्ति के लिये पापों के नाश करने के हेतु आवें ॥४८॥ तदनन्तर उस कलश का मन्त्रपाठ पूर्वक गन्ध, अक्षत, नैवेद्य उस काल में होनेवाले पुष्प पूजन के इन उपचारों से पूजन करके ॥४९॥ उसके ऊपर पीला वस्त्र से लपेटा हुआ ताँबे का पात्र स्थापित करे उस पात्र

एवं संस्थाप्य कलशं तत्र तीर्थानि योजयेत् ॥४७॥ गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी च सरस्वती ॥ आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारणात् ॥४८॥ ततः सम्पूज्य कलशमुपचारैः समन्त्रकैः ॥ गन्धाक्षतैश्च नैवेद्यैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ॥४९॥ तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं पीताम्बरावृतम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्धैमं राधया सहितं हरिम् ॥५०॥ राधया सहितः कार्यः सौवर्णः पुरुषोत्तमः ॥ तस्य पूजा प्रकर्त्तव्या विधिना भक्तितत्परैः ॥५१॥ पुरुषोत्तममासस्य दैवतं पुरुषोत्तमः ॥ तस्य पूजा प्रकर्त्तव्या सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥५२॥ संसारसागरे मग्नमुत्तारयति यो ध्रुवम् ॥ को न सेवेत तं लोके मर्त्योमरणधर्मवान् ॥५३॥ पुनर्ग्रामाः पुनर्वित्तम पुनः पुत्राः पुनर्गृहम् ॥ पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनः पुनः ॥५४॥ तद्र-

के ऊपर राधा के साथ हरि की मूर्ति को स्थापित करे ॥५०॥ राधा के सहित सुवर्ण के पुरुषोत्तम भगवान् की प्रतिमा बनावे और भक्ति में तत्पर होकर विधि के साथ उस प्रतिमा की पूजा करे ॥५१॥ पुरुषोत्तम मास के पुरुषोत्तम देवता हैं। पुरुषोत्तम मास के आने पर उनकी पूजा करनी चाहिये ॥५२॥ जो इस संसारसागर में डूबे हुए को उबारता है उसकी इस लोक में कौन मृत्यु धर्म वाला मनुष्य पूजा नहीं करता है ? ॥५३॥ फिर ग्राम मिलते हैं, फिर धन मिलता है, फिर पुत्र मिलते हैं फिर शुभ अशुभ कर्म मिलते हैं परन्तु शरीर

फिर फिर नहीं मिलता है ॥५४॥ उस शरीर की रक्षा धर्म के लिए और धर्म की रक्षा ज्ञान के ही लिये करता है तो उस ज्ञान से मोक्ष सुलभ कहा है इस धर्म को करना चाहिये ॥५५॥ देहरूप वृक्ष का फल सनातनधर्म कहा गया है जो शरीर धर्म से रहित है वह वन्ध्य (बाँझ) वृक्ष के समान निष्फल है ॥५६॥ सहायता के लिये न माता कही गई है और न स्त्री पुत्र आदि कहे गये हैं तथा न पिता, न सहोदर भाई, न धन कहे गये हैं केवल धर्म स्थित रहता है ॥५७॥ जरा (वृद्धावस्था) सिंहनी के समान भय देनेवाली है और राग

क्षितं तु धर्मार्थे धर्मो ज्ञानार्थमेव हि ॥ ज्ञानेन सुलभो मोक्षस्तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥५५॥ देहरूपस्य वृक्षस्य फलं धर्मः सनातनः ॥ धर्महीनस्तु यो देहो निष्फलो वन्ध्यवृक्षवत् ॥५६॥ न माता च सहायार्थे न कलत्रसुतादयः ॥ न पिता सोदरा वित्तं धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥५७॥ जरा व्याघ्रीव भयदा व्याधयः शत्रवो यथा ॥ आयुर्याति प्रतिदिनं भग्नभाण्डात् पयो यथा ॥५८॥ तरङ्गतरला लक्ष्मीर्यौवनं कुसुमोपमम् ॥ विषयाः स्वप्नविषया इव सर्वे निरर्थकाः ॥५९॥ चलं वित्तं चलं चित्तं चलं संसारजं सुखम् ॥ एवं ज्ञात्वा विरक्तः सन् धर्माभ्यासपरो भवेत् ॥६०॥ अर्धग्रस्तोऽहिना भेको मक्षिकामत्तुमिच्छति ॥

शत्रु के समान पीड़ा देनेवाले हैं। फूटे हुए वर्तन से जल गिरने के समान आयु प्रतिदिन क्षीण होती है ॥५८॥ लक्ष्मी जल के तरङ्ग के समान चञ्चल होती हैं। युवावस्था पुष्प के समान मुरझाने वाली कही है। स्वप्न के राज्यसुख के समान संसार के विषयसुख हैं। ये सब निरर्थक हैं ॥५९॥ धन चञ्चल है, चित्त चञ्चल है और संसार में होने वाला सुख चञ्चल है। ऐसा जान कर संसार से विरक्त होकर धर्म के साधन में तत्पर होवे [illegible]

करता है उसी प्रकार काल से मूसा (पकड़ा) हुआ जीव दूसरे को पीड़ा देने में तथा दूसरे का धन हरण करने में प्रेम करता है ॥६१॥ अहो! (आश्चर्य है) मृत्यु से ग्रस्त आयुवाले पुरुष को सुख क्या हर्ष को करते हैं ?। वध के लिये वधस्थान को पहुँचाये जाने वाले पशु के समान सब सुख व्यर्थ हैं ॥६२॥ जब धर्म करने के लिए चित्त होता है तो उस समय धन का मिलना सुलभ नहीं होता है जब धन होता है तो उस समय चित्त धर्म करने के लिए उन्मुख नहीं होता है ॥६३॥ जब चित्त और धन दोनों होते हैं तो

कालग्रस्तस्तथा जीवः परपीडाधनाहृतः ॥६१॥ मृत्युग्रस्तायुषः पुंसः किं सुखं हर्षयत्यहो ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव निरर्थकम् ॥६२॥ धर्मार्थं च यदा चित्तं न वित्तं सुलभं तदा ॥ यदा वित्तं न च तदा चित्तं धर्मोन्मुखं भवेत् ॥६३॥ चित्तं वित्तं यदा स्यातां सत्पात्रं न तदा भवेत् ॥ एतत्त्रितयसम्बन्धो यदा काले तु सम्भवेत् ॥६४॥ अविचार्य तदा धर्मं यः करोति स बुद्धिमान् ॥ वित्तप्राचुर्यसंसाध्यधर्माः सन्ति सहस्रशः ॥६५॥ पुरुषोत्तमे स्वल्पवित्तसाध्यो धर्मो महान् भवेत् ॥ स्नानं दानं कथायां च विष्णुः स्मरणमेव च ॥६६॥ एतन्मात्रोऽपि सद्धर्मस्त्रायते महतो भयात् ॥६७॥ गङ्गैव तीर्थं स्मर एव धन्वी

उस समय सत्पात्र नहीं मिलते हैं। इस लिये चित्त, वित्त (धन), सत्पात्र इन तीनों का जिस समय सम्बन्ध हो जाय ॥६४॥ जो उस समय बिना विचार किये ही धर्म को करता है वह बुद्धिमान् कहा गया है अधिक धन करके होने वाले हजारों धर्म हैं ॥६५॥ पुरुषोत्तम मास में थोड़े धन से महान् धर्म होता है। स्नान, दान और कथा में विष्णु भगवान् का स्मरण ॥६६॥ इतना भी उत्तम धर्म महान् भय से रक्षा करता है ॥६७॥ जिस प्रकार गङ्गा ही तीर्थ हैं, कामदेव ही धनुर्धारी है, विद्या ही धन है और गुण ही रूप

है उसी तरह समस्त महीनों में उत्तम पुरुषोत्तम मास साक्षात् पुरुषोत्तम ही हैं ॥६८॥ यद्यपि पुरुषोत्तम मास प्रथम समस्त कार्यों में तथा यज्ञों में अत्यन्त निन्द्य था तथापि भगवान् के प्रसाद से पृथिवी में साक्षात् भगवान् के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६९॥ जिस प्रकार हाथी के पैर में सब प्राणियों के पैर लीन हो जाते हैं उसी तरह समस्त धर्म, कला और समस्त पुरुषोत्तम में विलीन हो जाते हैं ॥७०॥

वित्तं तु विद्यैव गुणास्तु रूपम् ॥ मासेषु तथैव साक्षान्माषोत्तमोऽयं पुरुषोत्तमो हि ॥६८॥ मद्यप्यसौ निन्द्यतमः पुराऽसीत् सर्वेषु कृत्येषु मखादिकेषु ॥ तथापि साक्षाद्भगवत्प्रसादा-त्तन्नामनाम्ना भुवि विश्रुतोऽभूत् ॥६९॥ यथा हस्तिपदे लीनं सर्वप्राणिपदं भवेत् ॥ धर्माः कलास्तथा सर्वे विलीनाः पुरुषोत्तमे ॥७०॥ यथाऽमरतरङ्गिण्या न समाः सकलापगाः ॥ कल्पवृक्षेण न समा यथा सकलपादपाः ॥७१॥ चिन्तारत्नेन रत्नानि न समानि यथा भुवि ॥ कामधेन्वा यथा गावो न राज्ञा पुरुषाः समाः ॥७२॥ न वेदैः सर्वशास्त्राणि पुण्यकालास्तथाखिलाः ॥ पुरुषोत्तममासेन समो मासो न कर्हिचित् ॥७३॥ पुरुषोत्तम-मासस्य दैवतं पुरुषोत्तमः तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या श्रद्धया पुरुषोत्तमम् ॥७४॥ शास्त्रज्ञं निपुणं

जिस प्रकार गङ्गा के समान समस्त नदी नहीं कही जाती हैं। कल्पवृक्ष के समान अन्य समस्त वृक्ष नहीं कहे जाते हैं ॥७१॥ चिन्ता-मणि के समान दूसरे रत्न पृथिवी में नहीं हैं। कामधेनु के समान दूसरी गौ नहीं है। राजा के समान दूसरे पुरुष नहीं हैं ॥७२॥ वेदों के समान समस्त शास्त्र नहीं हैं उसी प्रकार और समस्त पुण्यकाल इस पुरुषोत्तम मास के समान पुण्यकाल कहीं भी नहीं है ॥७३॥ पुरुषोत्तम मास के देवता पुरुषोत्तम भगवान् हैं इसलिये भक्ति और श्रद्धा से पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा करना ॥७४॥ शास्त्र को जानने

वाला, निपुण (कुशल), शुद्ध, वैष्णव, सत्यवादी और विप्र (ब्राह्मण) आचार्य को बुलाकर उस आचार्य के द्वारा पुरुषोत्तम की पूजा करे ॥७५॥ अन्तःकरण में होनेवाले मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य :आदि रूप मछलियों से पूर्ण, अत्यन्त गम्भीर वेगवाले इस संसाररूप सागर को लाँघ कर जो पार जाने की इच्छा करता है वह इस भारत वर्ष में आदि देवता पुरुषोत्तम भगवान् को अच्छी

शुद्धं वैष्णवं सत्यवादिनम् ॥ विप्राचार्यमथाहूय पूजां तेन प्रकल्पयेत् ॥७५॥ संसारसागरमतीवगभीरवेगमन्तः स्थमोहमदनादितिमिङ्गिलौघम् ॥ उल्लङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति भारतेऽस्मिन् सम्पूजयेत् पुरुषोत्तममादिदेवम् ॥७६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने आह्निककथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

वाल्मीकिरुवाच ॥ अनलोत्तारणं कृत्वा प्रतिमायास्ततः परम् ॥ प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत ह्यन्यथा धातुरेव सा ॥१॥ प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वै हरेः ॥२॥ अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च ॥ यथा पूर्वं

तरह पूजन करे ॥७६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने आह्निककथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

वाल्मीक मुनि बोले। इसके बाद प्रतिमा की अनुलोत्तारण क्रिया के द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करे। अन्यथा यदि प्राणप्रतिष्ठा नहीं करता है तो वह प्रतिमा धातु ही कही जायगी अर्थात् उसमें देवता का अंश नहीं होता है ॥१॥ दाहिने हाथ से प्रतिमा के दोनों कपोलों

का स्पर्श कर हरि भगवान् की उस प्रतिमा में प्राणप्रतिष्ठा अवश्य करे ॥२॥ प्रतिमाओं में प्राणों की प्रतिष्ठा न करने से सुवर्ण आदि का भाग पूर्व के समान ही रहता है उनमें देवता वास नहीं करते हैं ॥३॥ हे पार्थिव ! अन्य देवताओं की प्रतिमा में भी देवत्वसिद्धि के लिए प्राणप्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥४॥ पुरुषोत्तम भगवान् के बीजमन्त्र से और "तद्विष्णोः परमम्पद ँ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥" (जजुर्वेद, अध्याय ६, मन्त्र ५) इस मन्त्र से करना चाहिये। मन्त्रवेत्त उसी प्रकार प्रतिमा के हृदय पर अङ्गुष्ठ

तथा भागः स्वर्णादीनां न देवताः ॥३॥ अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव ॥ प्राण-
प्रतिष्ठा कर्तव्या तासु देवत्वसिद्धये ॥४॥ पुरुषोत्तमबीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च ॥ तथैव
हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥५॥ एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेऽपि समाचरेत् ॥ अस्यै
प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः चरन्तु च ॥६॥ अस्यै देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरीरयन् ॥
मूलमन्त्रैरङ्गमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च ॥७॥ प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत् ॥ अथवा
नाममन्त्रैश्च चतुर्थ्यन्तैः प्रयत्नतः ॥८॥ स्वाहान्तश्च प्रकुर्वीत तत्तद्देवाननुस्मरन् ॥ एवं
प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ध्यायेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ॥९॥ श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥

निरन्तर रख कर ॥५॥ हृदय में भी इन मन्त्रों से प्राणप्रतिष्ठा को करे। इस प्रतिष्ठा में प्राण प्रतिष्ठित हों, इस प्रतिमा में प्राण चलायमान हों ॥६॥ इस प्रतिमा की देवत्व संख्या के लिए स्वाहा यह यजुर्मन्त्र को कहता हुआ मूलमन्त्रों से, अङ्गमन्त्रों से, वैदिक मन्त्रों में ॥७॥ सर्वत्र प्रतिमाओं में प्राणप्रतिष्ठा को करे अथवा अच्छी तरह चातुर्थ्यन्त नाममन्त्रों से ॥८॥ स्वाहा पद अन्त में जोड़कर तत्तद्
[illegible]

चिन्ह से चिन्हित वक्षःस्थल (छाती) वाले, शान्त, नील कमल के दल (पत्र) के समान छविवाले, तीन जगहों टेढ़ी आकृति होने से सुन्दर, राधा के सहित पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करे ॥१०॥ देश, काल को कहकर अर्थात् सङ्कल्प करे नियम में स्थित होकर मौन होकर पवित्र होकर षोडशोपचार से पुरुषोत्तम भगवान् का पूजन करे ॥११॥ हे देव ! हे देवेश ! हे श्रीकृष्ण ! हे पुरुषोत्तम !

त्रिभङ्गललितं ध्यायेत् सराधं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥ देशकालौ समुल्लिख्य नियतो वाग्यतः शुचिः ॥ षोडशैरुपचारैश्च पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥११॥ आगच्छदेव देवेश श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम ॥ राधया सहिश्चात्र गृहाण पूजनं मम ॥१२॥ श्रीराधिकासहितपुरुषोत्तमाय नमः, आवाहनं समर्पयामि ॥ इत्यावाहनम् ॥ नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ आसनं देवदेवेश गृहाण पुरुषोत्तम ॥१३॥ श्रीराधिकासहितपुरुषोत्तमाय नमः, आसनं समर्पयामि ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाऽऽहृतम् ॥ तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥१४॥ इति पाद्यम् ॥ नन्दगोपगृहे जातो गोपिकानन्दहेतवे ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥१५॥ इत्यर्घ्यम् ॥ गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशस्थितम् ॥ आच-

राधा के साथ आप यहाँ मुझसे दिये हुए पूजन को ग्रहण करें ॥१२॥ श्रीराधिका सहित पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार है यह कह कर आवाहन करे । हे देवदेवेश ! हे पुरुषोत्तम ! अनेक रत्नों से युक्त अर्थात् जटित और कार्तस्वर (सुवर्ण) विभूषित इस आसन को ग्रहण करें । इस तरह कह कर आसन समर्पण करे ॥१३॥ गङ्गादि समस्त तीर्थों से प्रार्थना पूर्वक लाया हुआ यह सुख स्पर्श वाला जल पाद्य (पैर धोने) के लिए ग्रहण करें । इस प्रकार कह कर पाद्य समर्पण करे ॥१४॥ हे हरे ! गोपिकाओं के आनन्द के लिये

महाराज नन्द गोप के घर में प्रकट हुए आप राधिका के सहित मेरे से दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करें। यह कह कर अर्घ्य समर्पण करे ॥१५॥ हे हृषीकेश ! अर्थात् हे विषयेन्द्रिय के मालिक ! हे पुराण ! हे पुरुषोत्तम ! अच्छा तरह से लाया गया और सुवर्ण के कलश में स्थित गङ्गाजल को आप आचमन करें। यह कह कर आचमन समर्पण करे ॥१६॥ हे हरे ! मेरे से लाये गये पञ्चामृत से राधिका के सहित जगत के आनन्द दाता आपके पूजित होने पर अर्थात आपके पूजन से मेरे कार्य सिद्धि को प्राप्त हों ॥१७॥ हे

म्यतां हृषीकेश पुराण पुरुषोत्तम ॥१६॥ इत्याचमनम् ॥ कार्यं मे सिद्धिमायातु पूजिते त्वयि धातरि ॥ पञ्चामृतैर्मयाऽऽनीतै राधिकासहितो हरे ॥१७॥ इति स्नानम् ॥ पयो दधि घृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा ॥ गृहाणेमानि द्रव्याणि राधिकानन्ददायक ॥१८॥ इति पञ्चामृतस्नानम् ॥ योगेश्वराय देवाय गोवर्धनधराय च ॥ यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमो नमः ॥१९॥ गङ्गाजलसमंशीतं नदीतीर्थसमुद्भवम् ॥ स्नानं दत्तं मया कृष्ण गृह्यताम् नन्दनन्दन ॥२०॥ इति पुनः स्नानम् ॥ पीताम्बरयुगं देव ! सर्वकामार्थसिद्धये ॥ मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरसत्तम ॥२१॥ इति वस्त्रम् ॥ आचमनम् ॥ दामोदर

राधिका के आनन्द दाता ! दूध, दही, गौ का घृत, सहित और चीनी, इन द्रव्यों को ग्रहण करें। यह कह कर पञ्चामृत से स्नान समर्पण करे ॥१८॥ हे नाथ ! योगेश्वर, देव, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, यज्ञों के स्वामी गोविन्द भगवान को नमस्कार है ॥१९॥ हे कृष्ण ! गङ्गाजल के समान मेरे से दिया गया यह जल है। नन्द को आनन्द देने वाले ! आप इसको ग्रहण करें। यह कह कर फिर स्नान समर्पण करे ॥२०॥ हे देव ! समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए इन दो पीताम्बरों को भक्ति के साथ मैंने निवेदन किया है।

हे सुरत्तम आप ग्रहण करें। यह कह कर वस्त्र समर्पण करे और वस्त्र धारण के बाद आचमन देवे ॥ २१ ॥ हे दामोदर! आपको नमस्कार है इस भवसागर से मेरी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! उत्तरीय वस्त्र (उपरना) के साथ ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) को आप ग्रहण करें। यह कह कर उपवीत अर्थात् जनेऊ समर्पण करे और आचमन देवे ॥२२॥ हे सुरश्रेष्ठ! अत्यन्त मनोहर सुगन्धित, दिव्य, श्रीखण्ड

नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् ॥ ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम॥ २२॥ उपवीतम् ॥ आचमनम् श्रीखण्डं चन्दनम् दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ॥ विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥ चन्दनम् ॥ अक्षतास्तु सुरश्रेष्ठ! कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ॥ मया निवेदिता भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ॥२४॥ इत्यक्षतान् ॥ माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्या-दीनि वै प्रभो ॥ मयाऽऽहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥२५॥ इति पुष्पाणि ॥ ततोऽङ्ग पूजा ॥ नन्दात्मजो यशोदायास्तनयः केशिसूदनः ॥ भूभारोत्तिरकश्चैव ह्यनन्तो विष्णुरूपधृक् ॥२६॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च नीलकण्ठः सकलास्त्रधृक् ॥ वाचस्पतिः केशवश्च सर्वात्मेति च नामतः ॥२७॥ पादौ गुल्फौ तथा जानू जघने च कटी तथा ॥ मेढ्रं नाभिं

चन्दन विलेपन आपके लिए है। इसको ग्रहण करें। यह कहकर चन्दन समर्पण करे ॥२३॥ हे सुरश्रेष्ठ! कुङ्कुम (केशर) से रँगे हुए शोभमान अक्षतों को भक्ति से मैंने निवेदन किया है हे पुरुषोत्तम! आप ग्रहण करें। यह कहकर अक्षत समर्पण करे ॥ ४॥ हे प्रभो! मैंने मालती आदि सुगन्धित पुष्पों को आपके पूजन के लिए लाया। आप इन पुष्पों को ग्रहण करें। यह कहकर समर्पण करे ॥२५॥ बाद अङ्गों का पूजन करें। नन्दात्मज, यशोदातनय, केशिसूदन, भभारोत्तारक, अनन्त विष्णुरूपधृक् ॥२६॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध,

श्रीकण्ठ, सकलाघधृक्, वाचस्पति, केशव और सर्वात्मा, इन नामों से ॥२७॥ पाद, गुल्फ, जानु जघन, कटी, मेढ्र, नाभि, हृदय, कण्ठ, बाहु और मुख ॥२८॥ नेत्र, शिर और सर्वाङ्ग का पुष्पों को हाथों में लेकर चतुर्थ्यन्त नामों को कहकर विश्वरूपी जगत्पति भगवान् का पूजन करे ॥२९॥ इस प्रकार प्रत्यङ्ग का पूजन कर फिर चतुर्थ्यन्त केशवादि नाममन्त्रों से ॥३०॥ एक एक पुष्प हाथ में लेकर पुरुषोत्तम भगवान् का पूजन करे ॥३१॥ वनस्पतियों का रस, दिव्य, गन्ध से युक्त, उत्तम गन्ध, समस्त देवताओं का आघ्राण (सूँघने)

च हृदयं कण्ठं बाहू मुखं तथा ॥२८॥ नेत्रे शिरश्च सर्वाङ्गं विश्वरूपिणमर्चयेत् ॥ पुष्पाण्यादाय क्रमश्चतुर्थ्यन्तर्जगत्पतिम् ॥२९॥ प्रत्तङ्गपूजां कृत्वा तु पुनश्च केशवादिभिः ॥ चतुर्विंशतिमन्त्रैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः ॥३०॥ पुष्पमादाय प्रत्येकं पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥३१॥ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ॥ आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥३२॥ इति धूपम् ॥ त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमम् ॥ आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥३३॥ इति दीपम् ॥ नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥ ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च वरां गतिम् ॥३४॥ इति नैवेद्यम् ॥ मध्ये

के योग्य यह धूप है इसको आप ग्रहण करें। यह कहकर धूप समर्पण करे ॥३२॥ हे परमधाम! आप समस्त देवताओं के ज्योति हैं, तेजों के उत्तम तेज हैं, आत्मज्योति हैं, यह दीप आप ग्रहण करें। यह कहकर दीप समर्पण करे ॥३३॥ हे देव! नैवेद्य को ग्रहण करें और मेरी भक्ति को अचल करें। ईप्सित (इच्छानुकूल) वर को देवें और परलोक में उत्तम गति को देवें। यह कहकर नैवेद्य अर्पण करे। मध्य जल में समर्पण करे। उत्तरापोशन (आखीर में आचमन जल) को देवे ॥३४॥ हे हृषीकेश! हे त्रैलोक्य के व्याधियों को

नाश करने वाले ! अच्छी तरह से सुवर्ण के कलश में गङ्गाजल को लाया हूँ इस जल से आचमन करें। यह कहकर आचमन देवे ॥३५॥ हे देव ! मैंने इस फल को आपके सामने स्थापित किया है इस लिये मेरे को जन्म जन्म में सुन्दर फलों की प्राप्ति हो। यह कह-कर श्रीफल (बेल) समर्पण करे ॥३६॥ हे देव ! हे परमेश्वर ! गन्ध कर्पूर से युक्त, कस्तूरी आदि से सुवासित इस करोद्वर्तन (हाथ-

पानीयम् ॥ उत्तरापोशनम् ॥ गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ॥ आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन ॥३५॥ इत्याचमनम् ॥ इदं फलं मया देव स्थापितं पुरस्तव ॥ तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि २ ॥३६॥ इति श्रीफलम् ॥ गन्धकर्पूरसंयुक्तं कस्तूर्यादिसुवासितम् ॥ करोद्वर्तनकं देव ! गृहाण परमेश्वर ॥३७॥ इतिकरोद्वर्तनम् ॥ पूगीफलसमायुक्तं सकर्पूरं मनोहरम् ॥ भक्त्या दत्तं मया देव ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥३८॥ इति ताम्बूलम् ॥ हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥३९॥ इतिदक्षिणाम् ॥ शारदेन्दीवरश्यामं त्रिभङ्गललिताकृतिम् ॥ नीराजयामिदे वेशराधया सहितं हरिम् ॥४०॥ इति नीराजनम् ॥ रक्ष रक्ष जगन्नाथ रक्ष त्रैलो-

की शुद्धि के लिये उबटन) को ग्रहण करें। यह कहकर करोद्वर्तन समर्पण करे ॥३७॥ हे देव ! पूगीफल (सुपारी) से युक्त कर्पूर सहित, मनोहर, भक्ति से दिया गया इस ताम्बूल को ग्रहण करें। यह कह कर ताम्बूल समर्पण करे ॥३८॥ हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के गर्भ में स्थित, अग्नि के बीज, अनन्त पुण्य के फल को देनेवाला सुवर्ण आप ग्रहण करें और मेरे लिये शान्ति को देवें। यह कह-कर दक्षिणा समर्पण करे ॥३९॥ शरत् काल में होनेवाले कमल के समान श्याम, तीन जगहों से टेढ़े होने से सुन्दर आकृति वाले, देवेश,

राधिका सहित हरि भगवान् की आरती करता हूँ। यह कह कर नीराजन समर्पण करे ॥४०॥ हे जगन्नाथ! रक्षा करो, रक्षा करो। हे त्रैलोक्य के नायक! रक्षा करो। आप भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले हो मेरी इस प्रदक्षिणा को ग्रहण करें। यह कर प्रदक्षिणा समर्पण करे ॥४१॥ यज्ञेश्वर, देव, यज्ञ के कारण, यज्ञों के स्वामी, गोविन्द भगवान् को नमस्कार है। यह कहकर मन्त्रपुष्पाञ्जलि समर्पण करे ॥४२॥ विश्वेश्वर, विश्वरूप विश्व के कारण, विश्व के स्वामी, नाथ, गोविन्द, भगवान् को नमस्कार है। यह कहकर नमस्कार सम-

क्यनायक ॥ भक्तानुग्रहकर्त्ता त्वं प्रदक्षिणां गृहाण मे ॥४१॥ इति प्रदक्षिणाम् ॥ यज्ञेश्व-राय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ॥ यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमो नमः ॥४२॥ इति मन्त्रपुष्पम् ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः ॥४३॥ इति नमस्कारान् ॥ मन्त्रहीनेति मन्त्रेण क्षमाप्य पुरुषोत्तमम् ॥ स्वाहा-न्तैर्नाममन्त्रैश्च तिलहोमो दिने दिने ॥४४॥ दीपः कार्यस्त्वखण्डश्च यावन्मासं च सर्पिषा ॥ पुरुषोत्तमस्य प्रीत्यर्थं सर्वार्थफलसिद्धये ॥४५॥ यस्य स्मृत्येति मन्त्रेण नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ यदूनं तत्तु सम्पूर्णं विधाय विचरेत् सुखम् ॥४६॥ इत्थं श्रीपुरुषोत्तमं नवघनश्यामं सराधं

र्पण करे ॥४३॥ 'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे'। इस मन्त्र से पुरुषोत्तम भगवान् को क्षमापन समर्पण करके स्वाहान्त नाम मन्त्रों से प्रतिदिन तिल से हवन करे ॥४४॥ पुरुषोत्तम मास पर्यन्त घृत का अखण्ड दीप समस्त फल का सिद्ध के लिए और पुरुषोत्तम भगवान् के प्रीत्यर्थं समर्पण करे ॥४५॥ "यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्" इस मन्त्र से जनार्दन भगवान को नमस्कार करके 'प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥' इस मन्त्र से जो कुछ कमी रह गई हो उसको सम्पूर्ण करके यथासुख विचरे ।४६॥ इस प्रकार जो इस पृथिवी तल पर मनुष्यशरीर प्राप्त करके पुरुषोत्तम मास के आने पर वैष्णव ब्राह्मण को गुरु (आचार्य) बनाकर मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, राधा के सहित श्रीपुरुषोत्तम भगवान् का हर्ष और भक्ति के साथ प्रतिदिन पूजन करेगा वह इस पृथिवी के अतुल समस्त सुखों को भोग कर बाद परमपद को जायगा ॥४७॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायण-

मुदा सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमेऽवनितले लब्ध्वा जनुर्मानवम् ॥ भक्त्या यः परिपूजयेत् प्रतिदिनं कृत्वा गुरुं वैष्णवं भुक्त्वा ह्यत्र सुखं समस्तमतुलं पश्चात् स गच्छेत् परम् ॥४७॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तमपूजनविधिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

राजोवाच—पुरुषोत्तमस्य नियमान् व्रतिना वद विस्तरात् ॥ किं भोज्यं किमभोज्यं वा वर्ज्यावर्ज्यं तपोधन ॥१॥ श्रीनारायण उवाच—स एवं भगवान् पृष्टो भूभृता वाल्मिको मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयार्थाय तमाह बहुमानयन् ॥२॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ पुरुषोत्तममासे ये

नारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तमपूजनविधिर्नामैकविंशोऽध्यायः ।२१॥

दृढधन्वा राजा बोला । हे तपोधन ! पुरुषोत्तम मास के व्रती के लिए विस्तार पूर्वक नियमों को कहिये । भोजन क्या करना चाहिये ? और क्या नहीं करना चाहिये । और व्रती को व्रत में मना क्या है ? विधान क्या है ? ॥१॥ श्रीनारायण बोले । इस प्रकार राजा दृढधन्वा ने वाल्मीकि मुनि से पूछा । बाद लोगों के कल्याण के लिए वाल्मीकि मुनि ने सम्मान पूर्वक राजा से कहा ॥२॥

वाल्मीकि बोले—हे राजन ! पुरुषोत्तम मास में जो नियम कहे गये हैं मुझसे कहे जाने वाले उन नियमों को संक्षेप में सुनिये ॥३॥ नियम में स्थित होकर पुरुषोत्तम मास में हविष्यान्न भोजन करे गेहूँ, चावल, मिश्री, मूँग, जौ, तिल ॥४॥ मटर, साँवा, नीवार (तिन्नी का चावल), वथुवा, हिमलोचिका अदरख, कालशाक, मूल, कन्द, ककड़ी, ॥५॥ केला, सेंधा नोन, दही, घी, बिना माखन

नियमाः परिकीर्तिताः ॥ तान् शृणुष्व मया राजन् कथ्यमानान् समासतः ॥३॥ हविष्यान्नं च भुञ्जीत प्रयतः पुरुषोत्तमे ॥ गोधूमा शालयः सर्वा सिता मुद्गा यवास्तिलाः ॥४॥ कलायकङ्गुनिवारा वास्तुकं हिमलोचिका ॥ आर्द्रकं कालशाकं च मूलं कन्दं च कर्कटीम् ॥५॥ रम्भा सैन्धवसामुद्रे लवणे दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रे हरीतकी ॥६॥ पिप्पली जीरकं चैव नागरं चैव तिन्त्रिणी ॥ क्रमुकं लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् ॥७॥ अतैलपक्वं मुनयो हविष्यं प्रवदन्ति च ॥ हविष्यभोजनं नृणामुपवाससमं विदुः ॥८॥ सर्वामिषाणि मांसं च क्षौद्रं सौवीरकं तथा ॥ राजमाषादिकं चैव राजिका मादकं तथा ॥९॥ द्विदलं तिलतैलं च तथान्नं शल्यदूषितम् ॥ भावदुष्टं क्रियादुष्टं शब्ददुष्टं च वर्ज-

निकाला हुआ दूध, पनस (कटहर) आम्र (आम), हरड़ ॥६॥ पीपर, जीरा, सोंठ, तिन्तिड़ी (इमली), सुपारी, लवली, आंवला, ईख का गुड़ छोड़कर इन फलों को ॥७॥ और बिना तेल के पके हुए पदार्थ को हविष्यान्न कहते हैं । हविष्यान्न भोजन मनुष्यों को उपवास के समान कहा गया है ॥८॥ समस्त आमिष, मांस, शहद, बेर, राजमाष आदिक, राई और मादक पदार्थ ॥९॥ दाल, तिल का तेल,

लोह से दूपित, शब्द से दूषित, अन्न का त्याग करे ॥१०॥ दूसरे का अन्न, दूसरे से वैर, दूसरे की स्त्री से गमन, तीर्थ के विना देशान्तर को जाना व्रती छोड़ देवे ॥११॥ देवता, वेद, द्विज, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा और महात्माओं की निन्दा करना पुरुषोत्तम मास में छोड़ देवे ॥१२॥ सूतिका का अन्न मांस है, फलों में जम्बीरी नीबू मांस है, धान्यों में मसूर की दाल मांस है और वासी अन्न मांस

येत् ॥१०॥ परान्नं च परद्रोहं परदारागमं तथा ॥ तीर्थं विना प्रयाणं च परदेशं परित्यजेत् ॥११॥ देववेदद्विजानां च गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेत् पुरुषोत्तमे॥१२॥ प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम् ॥ धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥ ॥१३॥ अजागोर्महिषीदुग्धादन्यद्दुग्धादि चामिषम् ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥१४॥ ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं चर्मणि संस्थितम् ॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्बुधैः स्मृतम् ॥१५॥ ब्रह्मचर्यमधःशय्यां पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ चतुर्थकाले भुक्तिं च प्रकुर्यात् पुरुषोत्तमे ॥१६॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितैर्व्रात्यकैः सह ॥ द्विजद्विट्वेदवाह्यैश्च न वदेत् पुरुषोत्तमे ॥१७॥ एभिर्दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत् ॥ द्विःपाचितं च दग्धान्नं

है ॥१३॥ बकरी, गौ, भैंस के दूध को छोड़कर और सब दूध आदि मांस है। और ब्राह्मण से खरीदा हुआ समस्त रस, पृथिवी से उत्पन्न नोन (सांभर नोन) मांस है ॥१४॥ तांबे के पात्र में रखा हुआ दूध, चमड़े में रखा हुआ जल, अपने लिये पकाया गया अन्न को विद्वानों ने मांस कहा है ॥१५॥ पुरुषोत्तम मास में ब्रह्मचर्य, पृथिवी में शयन, पत्रावली (पत्तल) में भोजन और दिन के चौथे काल अर्थात् चौथे पहर में भोजन करे ॥१६॥ पुरुषोत्तम मास में रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, व्रात्य (संस्कार हीन)

ब्राह्मण से द्वेष करने वाला, वद से गिरा हुआ, इनके साथ बातचीत न करे ॥१७॥ इन लोगों से देखा गया और काक पक्षी का देखा गया, सूतक का अन्न, दो बार पकाया हुआ, भूंजा हुआ अन्न को पुरुषोत्तममास में भोजन नहीं करे ॥१८। प्याज, लहसुन, मोथा, छत्राक, गाजर, नालिक, मूली, शिग्रु, इनको पुरुषोत्तम मास में त्याग देवे ॥१६॥ व्रती इन पदार्थों को समस्त व्रतों में हमेशा त्याग

नैवाद्यात् पुरुषोत्तमे ॥ १८ ॥ पलाण्डुं लशुनं मुस्तां छत्राकं गृञ्जनं तथा नालिकं मूलकं शिग्रुं वर्जयेत् पुरुषोत्तमे ॥१६॥ एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वव्रतेष्वपि ॥ कृच्छ्राद्यं चापि कुर्वीत स्वशक्त्या विष्णुतुष्टये ॥२०॥ कूष्माण्डं बृहती चैव तरुणी मूलकं तथा ॥ श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीफलं तथा ॥२१॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलंबरीफलम् ॥ चर्मवृन्ताजिकं वल्ली शाकं तु जलजं तथा ॥२२॥ शाकान्येतानि वर्ज्याणि क्रमात् प्रतिपदादिषु ॥ धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत् सर्वदा गृही ॥२३॥ यद्यद्यो वर्जयेत्किञ्चित्पुरुषोत्तमतुष्टये ॥ तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत्सर्वदैव हि ॥२४॥ कुर्यादेतांश्च नियमान् व्रती कार्तिकमाघयोः नियमेन विना राजन् फलं नैवाप्नुयाद्व्रती ॥२५॥ उपोषणेन कर्त्तव्यः शक्तिश्चेत्

करे। विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ अपनी शक्ति के अनुसार कृच्छ्र आदि व्रतों को करे ॥२०॥ कोहड़ा, कण्टकारिका, लटजीरा, मूली, वेल, इन्द्रयव, आंवला के फल ॥२१॥ नारियल अलाबू, परवल, वेर, चर्मशाक, बैगन, आजिक, वल्ली और जल में उत्पन्न होनेवाले शाक ॥२२॥ प्रतिपद से आदि तिथियों में क्रम से इन शाकों को त्याग करना। गृहस्थाश्रली रविवार को आंवला सदा ही त्याग करे ॥२३॥ पुरुषोत्तम भगवान् के प्रीत्यर्थ जिन जिन वस्तुओं का त्याग करे उन वस्तुओं को प्रथम ब्राह्मण को देकर फिर हमेशा भोजन करे ॥२४॥

व्रती कार्तिक और माघ मास में इन नियमों को करे। हे राजन्! व्रती नियम के बिना फलों को नहीं प्राप्त करता है ॥२५॥ यदि शक्ति है तो उप ास करके पुरुषोत्तम का व्रत करके अथवा घृत पान करे अथवा दुग्ध पान करे अथवा बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसको भोजन करे ॥२६॥ अथवा व्रत करनेवाला यथाशक्ति फलाहार आदि करे जिसमें व्रत भङ्ग न हो। विद्वान् ऐसा व्रत का नियम धारण

पुरुषोत्तमः ॥ अथवा घृतपानं च पयःपानमयाचितम् ॥२६॥ फलाहारादि वा कार्यं यथा-शक्त्या व्रतार्थिना ॥ व्रतभङ्गो यथा न स्यात्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥२७॥ पुण्येऽह्नि प्रात-रुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः गृह्णीयान्नियमं भक्त्या श्रीकृष्णं च हृदि स्मरन् ॥२८॥ उपवासस्य नक्तस्य चैकभुक्तस्य भूपते ॥ एकं च निश्चयं कृत्वा व्रतमेतत् समाचरेत् ॥२९॥ श्रीमद्भागवतं भक्त्या श्रोतव्यं पुरुषोत्तमे ॥ तत्पुण्यं वचसा वक्तुं विधाताऽपि न शक्नु-यात् ॥३०॥ शालिग्रामार्चनं कार्यं मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ तुलसीदल लक्षेण तस्य पुण्य-मनन्तकम् ॥३१॥ यथोक्तव्रतिनं दृष्ट्वा मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ यमदूताः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ॥३२॥ एतन्मासव्रतं राजन् श्रेष्ठं क्रतुशतादपि ॥ क्रतुं कृत्वाऽप्नुयात् स्वर्गं

करे ॥२७॥ पवित्र दिन प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्ण की क्रिया को करके भक्ति से श्रीकृष्ण भगवान् का हृदय में स्मरण करता हुआ नियम को ग्रहण करे ॥२८॥ हे भूपते! उपवास व्रत, नक्त व्रत, और एकभुक्त इनमें से एक का निश्चय करके इस व्रत को करे ॥२९॥ पुरुषोत्तममास में भक्ति से श्रीमद्भागवत का श्रवण करते तो उस पुण्य को ब्रह्मा भी कहने में सामर्थ नहीं होगा ॥३०॥ श्री पुरुषोत्तम मास में लाख तुलसीदल से शालग्राम का पूजन करे तो उसको अनन्त पुण्य होता है ॥३१॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में कथनानुसार व्रत में

स्थित उसी व्रत को देखकर यमदूत सिंह को देखकर हाथी के समान भाग जाते हैं ॥३२॥ हे राजन्! यह पुरुषोत्तम मासव्रत सौ यज्ञों से भी श्रेष्ठ है क्योंकि यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पुरुषोत्तम मासव्रत करने से गोलोक को जाता है ॥३३॥ जो पुरुषोत्तम मास व्रत करता है उसके शरीर में पृथ्वी के जो समस्त तीर्थ हैं और क्षेत्र हैं तथा समस्त देवता हैं वे सब वास करते हैं ॥३४॥ श्रीपुरुषोत्तम मास का व्रत करने से दुःस्वप्न, दारिद्र्य, और कायिक वाचिक मानसिक पाप से सब नाश को प्राप्त होते हैं ॥३५॥

गोलोकं पुरुषोत्तमे ॥३३॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राणि सर्वदेवताः ॥ तद्देहे तानि तिष्ठन्ति यः कुर्यात् पुरुषोत्तमम् ॥३४॥ दुःस्वप्नं चैव दारिद्र्यं दुष्कृतं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं विलयं याति कृते श्रीपुरुषोत्तमे ॥३५॥ श्रीपुरुषोत्तमसेवायां निश्चलं हरिसेवम् ॥ विघ्नाद्रक्षन्ति शक्राद्याः पुरुषोत्तमतुष्टये ॥३६॥ पुरुषोत्तमस्य व्रतिनो यत्र यत्र वसन्ति च ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या न तिष्ठन्ति तदग्रतः ॥३७॥ एवं यो विधिना राजन् कुर्याच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ॥ सहस्रवदनो नालं तत्फलंवक्तुमञ्जसा ॥३८॥ श्रीनारायण उवाच—पुरुषोत्तमं प्रियममुं परमादरेण कुर्यादनन्यमनसा पुरुषोत्तमोयः ॥ पुरुषोत्तमप्रियतमः पुरुषः स भूत्वा पुरुषोत्त-

पुरुषोत्तम भगवान् की प्रसन्नता के लिये इन्द्रादि देवता, पुरुषोत्तम मासव्रत में तत्पर हरिभक्त की विघ्नों से रक्षा करते हैं ॥३६॥ पुरुषोत्तम मासव्रत को करनेवाले जिन स्थानों में वास करते हैं वहाँ उनके सामने भूत प्रेत पिशाच आदि नहीं रहते हैं ॥३७॥ हे राजन्! इस प्रकार जो विधि से पुरुषोत्तम मासव्रत को करेगा उस मासव्रत के फलों का यथार्थ रूप से कहने के लिये साक्षात् शेषनाग भगवान भी समर्थ नहीं हैं ॥३८॥ श्रीनारायण बोले—जो पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष अनन्य (एकाग्र) मन से अत्यन्त आदर के साथ इस प्रिय

पुरुषोत्तम मासव्रत को करता है वह पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुषोत्तम का अत्यन्त प्रिय होकर रसिकेश्वर पुरुषोत्तम भगवान् के साथ गोलोक में आनन्द करता है ॥३६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तम-व्रतनियमकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

मेन रमते रसिकेश्वरेण ॥३६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने पुरुषोत्तमव्रतनियमकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

राजोवाच—किं फलं दीपदानस्य मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ तन्मे वद मुनिश्रेष्ठ कृपया दीन-वत्सल ॥१॥ श्रीनारायण उवाच—इत्थं विज्ञापितः प्राह वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः । प्रवृद्धहर्षो राजानं विनीतं प्रहसन्निव ॥२॥ वाल्मीकिरुवाच—शृणुष्व राजशार्दूल कथां पापप्रणाशि-नीम् ॥ यां श्रुत्वा याति विलयं पापं पञ्चविधं महत् ॥३॥ सौभाग्यनगरे राजा चित्रबाहु-

दृढधन्वा राजा बोला—हे मुनियों में श्रेष्ठ! हे दीनों पर दया करनेवाले! पुरुषोत्तम मास में दीपदान का फल क्या है? सो कृपा करके कहिये ॥१॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार राजा दृढधन्वा के पूछने पर अत्यन्त प्रसन्न, मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि मुनि ने हँसते हुए विनीत (अत्यन्त नम्र) राजा दृढधन्वा से कहा ॥२॥ वाल्मीकि मुनि बोले—हे राजशार्दूल! अर्थात् राजाओं में सिंहसदृश पराक्रमवाले! पापों का नाश करनेवाली कथा को सुनिये जिसके सुनने से पाँच प्रकार के महान् पाप नाश को प्राप्त होते हैं ॥३॥ सौभाग्य

नगर में चित्रवाहु नाम से प्रसिद्ध, वड़ा बुद्धिमान्, अत्यन्त शूर राजा था ॥४॥ वह क्षमाशील, समस्त धर्मों को जानने वाला, शील रूप और दया से युक्त, ब्राह्मणों का भक्त, कथा के श्रवण में तत्पर ॥५॥ हमेशा अपनी स्त्री में प्रेम करनेवाला, पशु पुत्र से युक्त, चतुरङ्गिणी सेना से युक्त, ऐश्वर्य में कुवेर के समान था ॥६॥ उसकी चन्द्रकला नाम की स्त्री चौंसठ कला को जाननेवाली, पतिव्रता, महान्

रिति श्रुतः ॥ सत्यसन्धो महाप्राज्ञश्चासोच्छूरतरः परः ॥४॥ सहिष्णुः सर्वधर्मज्ञऽ शीलरूप-दयान्वितः ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तः कथाश्रवणतत्परः ॥५॥ स्वदारनिरतः शश्वत् पशुपुत्र-समन्वितः ॥ चतुरङ्गबलोपेतः समृद्धया धनदोपमः ॥६॥ तस्य भार्या चन्द्रकला चतुःषष्टि-कलान्विताः ॥ पतिव्रता महाभागा भगवद्भक्तिसंयुता ॥७॥ तया सह महीपालो बुभुजे मेदिना युवा ॥ विना श्रीकृष्णदेवं स नैव जानाति दैवतम् ॥८॥ एकस्मिन्दिवसे राजा चित्रबाहुर्महीपतिः ॥ दृष्ट्वा समागतं दूरादगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ॥९॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ विधिना तमपूजयत् ॥ कल्पयित्वाऽऽसनं भक्त्या तस्थौ मुनिवराग्रतः ॥१०॥ विनयावनतो भूत्वा जगाद मुनिसत्तमम् ॥ राजोवाच——अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलं दिनम् ॥११॥ अद्य

भाग्यवती, भगवान् की भक्ति को करनेवाली थी ॥७॥ सके साथ युवा चित्रवाहु राजा पृथ्वी का भोग करने लगा। बिना श्रीकृष्णचन्द्र के वह दूसरे देवता को नहीं जानता था ॥८॥ एक दिन पृथ्वीपति राजा चित्रवाहु ने दूर से आये हुए मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य मुनि को देखकर ॥९॥ पृथिवी में दण्डवत् प्रणाम कर उनकी पूजा विधिपूर्वक की और भक्ति से आसन देकर मुनिश्रेष्ठ के सम्मुख बैठ गये ॥१०॥ विनय से नम्र होकर मुनिश्रेष्ठ से कहा। राजा बोला—आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरा दिन सफल हुआ ॥११॥ आज मेरा

राज्य सफल हुआ, आज मेरा गृह सफल हुआ जो आप श्रीकृष्णचन्द्र के सेवक आज मेरे गृह में आये हैं ॥१२॥ आप से देखा गया मैं पापपुञ्ज से मुक्त हो गया। आपके लिए हाथी घोड़े रथ से युक्त राज्य को समर्पण किया ॥१३॥ हे मुनि श्रेष्ठ! आप वैष्णव हो आपके लिए कोई भी अदेय वस्तु नहीं है। वैष्णव को थोड़ा भी दिया हुआ मेरु पर्वत के समान होता है ॥१४॥ जो कौड़ी के बराबर

मे सफलं राज्यमद्य मे सफलं गृहम् ॥ यत्त्वं समागतो मेऽद्य गृहे श्रीकृष्णसेवकः ॥१२॥ मुक्तोऽहं पापसङ्घाताद्यत्त्वयाऽहं निरीक्षितः ॥ तुभ्यं समर्पितं राज्यं गजाश्वरथसंयुतम् ॥१३॥ वैष्णवोऽसि मुनिश्रेष्ठ नास्त्यदेयं मया तव ॥ मेरुतुल्यं भवेत् स्वल्पं वैष्णवाय समर्पितम् ॥१४॥ कपर्दिकाप्रमाणं तु व्यञ्जनं वान्नमुत्तमम् ॥ न यच्छति दिने यस्तु वैष्णवाय द्विजन्मने ॥१५॥ तद्दिनं विफलं तस्य कथितं वेदपारगैः ॥ विष्णुभक्ताश्च ये केचित् सर्वे पूज्या द्विजातयः ॥१६॥ तेषां सम्भावना कार्या वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ कथितं मम गर्गेण गौतमेन सुमन्तुना ॥१७॥ तावत्प्रभा च ताराणां यावन्नोदयते रविः ॥ तावदन्ये द्विजन्मानो यावान्नायाति वैष्णवः ॥१८॥ अगस्त्य उवाच—चित्रबाहो महाभाग धन्यस्त्वं साम्प्रतं नृप ॥

शाक अथवा उत्तम अन्न जिस दिन वैष्णव ब्राह्मण को नहीं देता है ॥१५॥ वह दिन उसका विफल है ऐसा वेद के जाननेवालों ने कहा है। जो कोई द्विजाति (ब्राह्मण) विष्णु भक्त हों वे सब पूज्य हैं ॥१॥ उनका वाणी मन कर्म से सत्कार करना चाहिये। ऐसा मुझसे गर्ग गौतम सुमन्तु ऋषि ने कहा है ॥१७॥ जब तक सूर्योदय नहीं होता है तब तक तारागण की प्रभा रहती है। जब तक वैष्णव ब्राह्मण नहीं आता है तभी तक दूसरे ब्राह्मण कहे गये हैं ॥१८॥ अगस्त्य मुनि बोले—हे चित्रबाहो! हे महाभाग! हे नृप! इस समय तुम

धन्य हो, ये सब प्रजा धन्य हैं जो वैष्णव तुम इनकी रक्षा करते हो ॥ १६ ॥ जो राजा वैष्णव नहीं हो उसके राज्य में वास नहीं करना। शून्य वन में वास करना अच्छा है परन्तु अवैष्णव के राज्य में रहना अच्छा नहीं है ॥ २० ॥ जिस प्रकार नेत्रहीन शरीर, पतिहीन स्त्री, निरक्षर अर्थात् बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण निन्द्य है वैसे ही वैष्णव रहित देश निन्द्य है ॥ २१ ॥ जैसे दाँत के बिना हाथी, पङ्ख के

इमा धन्या प्रजाः सर्वा यस्त्वं रक्षसि वैष्णवः ॥१६॥ तस्मिन् राष्ट्रे न वस्तव्यं यस्य राजा न वैष्णवः ॥ वरो वासो वने शून्ये न तु राष्ट्रे ह्यवैष्णवे ॥२०॥ चक्षुर्हीनो यथा देहः पतिहीना यथा प्रिया ॥ निरक्षरो यथा विप्रस्तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥२१॥ दन्तहीनो यथा हस्ती पक्ष-हीनो यथा खगः ॥ द्वादशी दशमीविद्धा तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥२२॥ दर्भहीना यथा सन्ध्या तिलहीनं च तर्पणम् ॥ वृत्त्यर्थं देवसेवा च तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥२३॥ सकेशी विधवा यद्वद्व्रतं स्नानविवर्जितम् ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीगामी तथा राष्ट्रमवैष्णवम् ॥२४॥ स राजा प्रोच्यते सद्भिर्यः श्रीकृष्णपदाश्रयः ॥ तद्राष्ट्रं वर्धते नित्यं सुखी भवति तत्प्रजा ॥२५॥ दृष्टिर्मे सफला राजन् यन्मया त्वं निरीक्षितः ॥ अद्य मे सफला वाणी ह्यच्युते

बिना पक्षी, दशमीविद्धा द्वादशी (एकादशी) कही गई हैं वै. ही वैष्णव रहित राष्ट्र (देश) है ॥ २२ ॥ जैसे कुशा रहित सन्ध्या, तिलहीन तर्पण, वृत्ति (जीविका) के लिये देवता की सेवा है वैष्णव रहित राष्ट्र (देश) कहा है ॥ २३ ॥ जैसे केशों को धारण करने-वाली विधवा स्त्री, स्नान रहित व्रती, ब्राह्मणी में गमन करनेवाला शूद्र है वैसे ही बिना वैष्णव का राष्ट्र निन्द्य है ॥ २४ ॥ जो श्रीकृष्ण-चन्द्र के चरणों का आश्रय करनेवाला है वह सज्जनों से राजा कहा गया है। उसका राष्ट्र हमेशा वृद्धि को प्राप्त होता है और उसः?

प्रजा सुखी होती है ॥ २५ ॥ हे राजन्! जो मैंने तुमको देखा इस लिये मेरी दृष्टि सफल हुई भगवद्भक्त आपके साथ बात करने से आज मेरी वाणी सफल हुई ॥ २६ ॥ हे राजन्! मेरी आज्ञा से यह राज्य तुमको करना चाहिये। मैंने इस राज्य में तुमको प्रतिष्ठित किया। तुम्हारा कल्याण हो मैं जाऊँगा ॥ २७ ॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार कहकर जाने की इच्छा करनेवाले मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य मुनि को चित्रबाहु राजा की पतिव्रता स्त्री ने परमभक्ति के साथ प्रणाम किया ॥ २८ ॥ अगस्त्य मुनि बोले—हे शुभे! तू सदा सौभाग्-

यत्त्वया सह ॥२६॥ इदं राज्यं त्वया राजन् प्रकर्त्तव्यं ममाज्ञया ॥ प्रतिष्ठितो मया राज्ये गमिष्याम्यस्तु स्वस्ति ते ॥२७॥ श्रीनारायण उवाच——इत्युक्त्वा गन्तुकामं तमगस्त्यं मुनि-पूङ्गवम् ॥ ननाम परया भक्त्या महिषी सा पतिव्रता ॥२८॥ अगस्त्य उवाच——अवैधव्यं सदा तेऽस्तु सदा भक्तिः श्रीगोपीजनवल्लभे ॥२६॥ इत्थमाशीर्ददानं तं भूयः प्राह मही-पतिः ॥ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः ॥३०॥ चित्रबाहुरुवाच——विपुला मे कथं लक्ष्मीः कथं राज्यमकण्टकम् ॥ पतिव्रता कथं पत्नी किं कृतं सुकृतं मया ॥३१॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र तवाहं शरणं गतः ॥ करामलकवत्सर्वं जानासि त्वं मुनीश्वर ॥३२॥ श्रीनारा-

वती हो और भक्ति से पति की सेवा कर। श्री गोपीजन के वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र में तेरी सदा दृढ़ भक्ति हो ॥ २६ ॥ इस प्रकार आशीर्वाद देते हुये अगस्त्य ऋषि से विनय से शिर नवाकर और अञ्जलि बाँधकर चित्रबाहु राजा ने फिर कहा ॥ ३० ॥ चित्रबाहु बोले—हे विप्रेन्द्र! यह विपुल लक्ष्मी कैसे हुई?—निष्कण्टक राज्य कैसे हुआ? किस सुकृति के फल से स्त्री पतिव्रता होती हैं ॥३१॥ हे विप्रेन्द्र! यह सब मेरे से आप कहिये मैं आपके शरण में आया हूँ। हे मुनीश्वर! आप हाथ में स्थित दर्पण के समान सब जानते

हो ॥ ३२ ॥ श्रीनारायण उवाच—इस प्रकार राजा चित्रबाहु के कहने पर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य एकाग्र मन होकर राजश्रेष्ठ चित्रबाहु से बोले ॥ ३३ ॥ अगस्त्य मुनि बोले—हे राजन्! मैंने तुम्हारे पूर्वजन्म का सब चरित्र देख लिया है वह सब इतिहास के सहित प्राचीन चरित्र को कहता हूँ ॥ ३४ ॥ सुन्दर चमत्कार पुर में जीवों को हिंसा करनेवाले शूद्र जाति के मणिग्रीव नामधारी तुम हुये ॥ ३५ ॥ सो

यण उवाच—इत्थमावेदितो राज्ञा ह्यगस्त्यो मुनिपुङ्गवः ॥ समाहितमना भूत्वा जगाद नृपसत्तमम् ॥३३॥ अगस्त्य उवाच—मया विलोकितं सर्वं प्राक्तनं चरितं तव ॥ तत्सर्वं कथयाम्यद्य सेतिहासं पुरातनम् ॥३४॥ चमत्कारपुरे रम्ये मणिग्रीवाभिधानभृत् ॥ त्वमभूः शूद्रजातीयो जीवहिंसापरायणः ॥३५॥ नास्तिको दुष्टचारित्रः परदारप्रधर्षकः ॥ कृतघ्नो दुर्विनीतश्च शिष्टाचारविवर्जितः ॥३६॥ या चेयं भवतो भार्या पूर्वजन्मनि सुन्दरी ॥ कर्मणा मनसा वाचा पतिसेवापरायणा ॥३७॥ पतिव्रता महाभागा धर्मनिष्ठा मनस्विनी ॥ भावं न कुरुते दुष्टं तवोपरि कदाचन ॥३८॥ ज्ञातिभिस्त्वं परित्यक्तो बन्धुभिः पापकर्मकृत् ॥ राज्ञा क्रुद्धेन ते सर्वं गृहीतम् धनमुत्तमम् ॥३९॥ ततोऽवशिष्टं यत्किञ्चिद्गृहीतं ज्ञाति-

तुम नास्तिक, दुष्ट चरित्रवाले, दूसरे की स्त्री को हरण करनेवाले, कृतघ्न, दुर्विनीत (उद्धत) शिष्टाचार से रहित हुये ॥ ३६ ॥ और तुम्हारी यह जो स्त्री है वह पूर्व जन्म में स्त्री थी। यह कर्म, मन और वचन से पतिसेवा में परायण थी ॥ ३७ ॥ पतिव्रता, महाभागा, धर्म में प्रेम करनेवाली, मनस्विनी इसने कभी भी तुम्हारे विषय में दुष्टभाव नहीं किया ॥ ३८ ॥ पापकर्म को करनेवाले तुम्हारा जाति और बान्धवों ने त्याग कर दिया और क्रुद्ध होकर राजा ने सब उत्तम धन ले लिया ॥ ३९ ॥ बाद उस समय बचा हुआ जो कुछ

शेष धन था उसको जातिवालों ने ले लिया। तब उस समय धन के चले जाने से तुमको धन की बहुत इच्छा हुई ॥ ४० ॥ परन्तु धन के नाश होने पर मन मलीन होकर इस पतिव्रता ने तुम्हारा त्याग नहीं किया। इस प्रकार सब लोगों से तिरस्कृत होने पर तुम निर्जन वन को गये ॥ ४१ ॥ हे महीपते! वहाँ जाकर अनेक जीवों को मारकर अपनी आत्मा का पोषण किया इस प्रकार स्त्री के साथ जीवन

भिस्तदा ॥ गते द्रव्ये धनाकाङ्क्षा तवाऽऽसी द्विपुला तदा ॥४०॥ क्षीयमाणे धने साध्वी न त्वामत्यजदुन्मनाः ॥ एवं तिरस्कृतः सर्वैर्गतवान्निर्जनं वनम् ॥४१॥ हत्वा जीवाननेकांश्च त्वं चकर्थात्मपोषणम् ॥ एवं वर्तय तस्तस्य पत्न्या सह महीपते ॥४२॥ एकदा धनुरुद्यम्य मणिग्रीवो वनं गतः ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं मृगमांसजिघृक्षया ॥४३॥ तस्मिन्निर्मानुषेऽरण्ये मध्येमार्गं महामुनिः ॥ उग्रदेव इति ख्यातो दिङ्मूढो विह्वलोऽभवत् ॥४४॥ तृषा सम्पीडितोऽत्यर्थं मध्यन्दिनगते रवौ ॥ तत्रैव पतितो राजन् मुमूर्षुरभवत्तदा ॥४५॥ तं दृष्ट्वा ते दया जाता दिग्भ्रष्टं दुःखितं द्विजम् ॥ उत्थाप्य तं द्विजन्मानं गृहीत्वा स्वाश्रमं गतः ॥४६॥ दम्पतिभ्यां कृता सेवा दुःखितस्य द्विजन्मनः ॥ उग्रदेवो महायोगी मुहूर्तानन्तरं

निर्वाह करते हुये ॥ ४२ ॥ धनुष को उठाकर मणिग्रीव मृग के मांस को खाने की इच्छा से बहुत से सर्प और मृग से भरे हुए वन को गया ॥ ४३ ॥ उस निर्जन वन के मध्य मार्ग में उग्रदेव नामक महामुनि दिशाज्ञान के नष्ट हो जाने से व्याकुल हो गये ॥ ४४ ॥ हे राजन्! मध्याह्न के समय पिपासा से अत्यन्त पीड़ित होकर वहाँ ही गिरकर मरणासन्न हो गये उस समय ॥ ४५ ॥ मार्ग के भूले हुए उस दुःखित ब्राह्मण को देखकर तुमको दया हो आई। बाद उस ब्राह्मण को उठाकर और उसको साथ लेकर तुम अपने आश्रम को

गये ॥ ४६ ॥ उस दुःखित ब्राह्मण को तुम दोनों स्त्री पुरुष ने सेवा की एक मुहूर्त के बाद उस समय महायोगी उग्रदेव ॥ ४७ ॥ चेतनता को प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे कि मैं वहाँ था यहाँ कैसे आ गया ? उस वन के बीच से कौन लाया ? ॥ ४८ ॥ श्रीनारायण बोले— मणिग्रीव ने उस ब्राह्मण से कहा कि यह सुन्दर तालाब है इसमें कमलिनी के पुष्प से सुगन्धित शीतल जल है ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् उस

तदा ॥४७॥ अवाप्य चेतनां तत्र विस्मयं समजीगमत् ॥ तत्रस्थोऽहंकुतश्चात्र केनानीतो वनान्तरम् ॥४८॥ श्रीनारायण उवाच—मणिग्रीवोऽवदद्विप्रं रमणीयमिदं सरः ॥ अत्रास्ते शीतलं वारि पद्मिनीपुष्पवासितम् ॥४६॥ तत्र स्नात्वा जले शीते कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः ॥ कुरु ब्रह्मन् फलाहारं पिबवारि सुशीतलम् ॥५०॥ सुखेन कुरु विश्रामं मया संरक्षितोऽधुना ॥ उत्तिष्ठ त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५१॥ अगस्त्य उवाच—लब्ध-संज्ञस्तदा विप्र उग्रदेवो गतश्रमः ॥ मणिग्रीववचः श्रुत्वा समुत्तस्थौ तृषातुरः ॥५२॥ मणि-ग्रीवभुजालम्बी जगाम सरसीतटम् ॥ उपविष्टश्चित्रबाहो तत्तटे वटशोभिते ॥५३॥ विश्रम्य तत्क्षणं विप्रो वटच्छायामधिश्रितः ॥ स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा वासुदेवमपूजयत् ॥५४॥

शीतल जल में स्नान करके मध्याह्न की क्रिया करके फलहार को करें और सुन्दर शीतल जल का पान करें ॥ ५० ॥ इस समय मैंने रक्षा की है। आप सुख से विश्राम करें। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उठिये और कृपा करने के आप योग्य हैं ॥ ५१ ॥ अगस्त्य मुनि बोले— उस समय उग्रदेव ब्राह्मण श्रमरहित सावधान हो मणिग्रीव का वचन सुनकर प्यास से व्याकुल हो उठता हुआ ॥ ५२ ॥ हे चित्रबाहो ! मणिग्रीव का हाथ पकड़ कर वट वृक्ष से शोभित तालाब के तट पर जाकर बैठे गये ॥ ५३ ॥ वट की छाया में बैठकर क्षण भर विश्राम

कर वासुदेव भगवान का पूजन किया ॥ ५४ ॥ देवता पितरों को तर्पण कर सुन्दर शीतल जल को पीकर बाद उग्रदेव ब्राह्मण शीघ्र वट वृक्ष के मूल भाग में आकर बैठ गये ॥ ५५ ॥ सपत्नीक मणिग्रीव ने मुनिश्रेष्ठ उग्रदेव को नमस्कार किया और अतिथिसत्कार करने की इच्छा से विनयपूर्वक वचन कहा ॥ ५६ ॥ मणिग्रीव बोला—हे ब्रह्मन्! आज मुझको तारने के लिये आप मेरे आश्रम को आये।

देवान् पितृंश्च सन्तर्प्य पपौ नीरं सुशीतलम् ॥ उग्रदेवस्ततः शीघ्रं वटमूलमुपाश्रितः ॥५५॥ मणिग्रीवः सपत्नीको ननाम मुनिसत्तमम् ॥ विनयेनामदद्वाचमातिथ्यं कर्तुमुन्मनाः ॥५६॥ मणिग्रीव उवाच—अस्मत्सन्तारणायाद्य मदाश्रममुपागतः ॥ ब्रह्मंस्त्वद्दर्शनादेव पापं मे विलयं गतम् ॥५७॥ इत्युक्त्वा तं प्रियामाह मणिग्रीवो मुदान्वितः ॥ अयि सुन्दरि पक्वानि स्वादूनि यानि यानि च ॥५८॥ तानि चूतफलानि त्वं शीघ्रमानय मा चिरम् ॥ अन्यत्कन्दादि यत्किञ्चित्तदानय शुभानने ॥५९॥ निजनाथवचः श्रुत्वा फलान्यादाय सुन्दरी ॥ कन्दादिकं च विप्राग्रे स्थापयामस हर्षतः ॥६०॥ मणिग्रीवः पुनर्वाक्यमुवाच मुनिसत्तमम् ॥ फलान्यङ्गीकुरु ब्रह्मन् कृतार्थीकुरु दम्पती ॥६१॥ उग्रदेव उवाच—त्वामहं नैव जानामि कस्त्वं

आप के दर्शनमात्र से मेरे पाप नष्ट हो गये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मण से कहकर प्रसन्न मणिग्रीव स्त्री से बोला अयि! जो जो स्वादिष्ट पके हुए फल हैं ॥ ५८ ॥ उन आम्रफलों को तुम शीघ्र ले आओ। देर मत करो। हे शुभानने! और जो कुछ कन्द आदि हों उनको भी ले आओ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार सुन्दरी (स्त्री) अपने पति के वचन को सुन फलों को और कन्दादिकों को लाकर हर्ष से ब्राह्मण के सामने रखती हुई ॥ ६० ॥ मणिग्रीव फिर मुनिश्रेष्ठ से वचन बोला कि हे ब्रह्मन्! इन फलों को स्वीकार कर मुझ स्त्री पुरुष

को कृतार्थ करें ॥ ६१ ॥ उग्रदेव ब्राह्मण बोला—तुमको मैं नहीं जानता हूँ। तुम कौन हो सो मेरे से कहो। विद्वान् ब्राह्मण को चाहिये कि अज्ञात (अपरिचित) का भोजन नहीं करे ॥ ६२ ॥ मणिग्रीव बोला—हे द्विजशार्दूल ! मैं मणिग्रीव नामक शूद्र जाति का स्वजनों से (जातिवालों से) अपने बान्धवों से त्यागा हुआ हूँ ॥ ६३ ॥ इस प्रकार शूद्र के वचन को सुनकर प्रसन्नात्मा उग्रदेव ने फलों को

भो कथयस्व मे ॥ अज्ञातस्य न भोक्तव्यं ब्राह्मणेन विजानता ॥६२॥ मणिग्रीव उवाच—
शूद्रोऽहं द्विजशार्दूल मणिग्रीवाभिधानतः ॥ स्वजनैर्जातिवर्गैश्च परित्यक्तः स्वबान्धवैः
॥६३॥ इत्थं शूद्रवचः श्रुत्वा फलाहारमचीकरत् ॥ उग्रदेवः प्रसन्नात्मा ततो नीरमपीपिबत्
॥६४॥ ततो विप्रं सुखासीनं मणिग्रीवोऽवदद्वचः ॥ लालयंस्तत्पदाम्भोजयुगं स्वाङ्कगतं मुहुः
॥६५॥ मणिग्रीव उवाच—क्व गन्तव्यं मुनिश्रेष्ठ कुतस्त्वं चेह कानने ॥ निर्जने निर्जले दुष्टे
हिंस्रजन्तुसमाकुले ॥६६॥ उग्रदेव उवाच—ब्राह्मणोऽहं महाभागं प्रयागं गन्तुमुत्सहे ॥
अधुनाऽज्ञातमार्गेण सम्प्राप्तो दारुणे वने ॥६७॥ तत्र श्रान्तस्तृषाक्रान्तो मुमूर्षुरभवं
क्षणात् ॥ जीवितं मे त्वया दत्तं ब्रूहि किं ते ददाम्यहम् ॥६८॥ अरण्यं केन दुःखेन दम्प-

खाया बाद जल को पीया ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण को सुख से बैठे देखकर मणिग्रीव उग्रदेव ब्राह्मण के पैरों को आपने गोद में रखकर दाबता हुआ फिर वचन बोला ॥ ६५ ॥ मणिग्रीव बोला—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप कहाँ को जायँगे ? इस निर्जन, जलरहित हिंसक जन्तुओं से भरे दुष्ट वन में कहाँ से आये ? ॥ ६६ ॥ उग्रदेव बोला—हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण हूँ प्रयाग जाना चाहता हूँ। इस समय मार्ग न जानने के कारण दारुण वन में चला आया हूँ ॥ ६७ ॥ उस जगह थकावट और तृषा के कारण क्षण भर में ही मरणासन्न हो गया।

बाद तुमने मेरे को जीवन (प्राण) दिया। हे मणिग्रीव ! बोलो। तुमको मैं क्या दूँ ॥ ६८ ॥ हे मणिग्रीव ! तुम दोनों स्त्री पुरुष ने किस दुःख के कारण वन में आश्रय लिया। उस दुःख को मुझसे कहो मैं उस दुःख को दूर करूँगा ॥ ६९ ॥ अगस्त्य मुनि बोले— इस प्रकार उग्रदेव ब्राह्मण के वचन को सुनकर अपनी स्त्री के सामने उस मुनीश्वर उग्रदेव की प्रार्थना कर दरिद्रता रूप समुद्र को पार करने की इच्छावाले मणिग्रीव ने अपने कर्म का भयङ्कर फलस्वरूप वृत्तान्त को कहा ॥ ७० ॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तम-

तीभ्यां समाश्रितम् ॥ तद्दुःखमपनेष्यामि मणिग्रीव वदस्व मे ॥६९॥ अगस्त्य उवाच— इत्युग्रदेववचनं ललितं निशम्य पत्न्याः समक्षमनुनीय मुनीश्वरं तम् ॥ दारिद्र्यसागरतितीर्षुरसौ स्वकीयं वृत्तान्तमाह निजकर्मविपाकमुग्रम् ॥७०॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

मणिग्रीव उवाच—चमत्कारपुरे रम्ये विद्वज्जनसमाकुले ॥ मम वासोऽभवत्तत्र धर्मपत्न्या सह द्विज ॥१॥ धनाढ्यस्य पवित्रस्य परोपकृतिशालिनः ॥ कदाचिद्दैवयोगेन दुर्बुद्धिः समपद्यत ॥२॥ निजधर्मपरित्यागः कृतो मे दुष्टबुद्धिना ॥ परस्त्रीसेवनं नित्यमपेयं पीयते स्म ह ॥३॥ चौर्य-

मासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

मणिग्रीव बोला। हे द्विज ! विद्वानों से पूर्ण सुन्दर चमत्कारपुर में धर्मपत्नी (स्त्री) के साथ मेरा रहना हुआ ॥१॥ धनाढ्य, पवित्र आचरणवाला, परोपकार में तत्पर मुझ को किसी समय प्रारब्धवश से दुष्ट बुद्धि पैदा हुई ॥२॥ दुष्ट बुद्धि के कारण मैंने अपने धर्म का त्याग किया, दूसरे की स्त्री का सेवन किया और नित्य अपेय (नहीं पीने योग्य) वस्तु का पान किया ॥३॥ चोरी, हिंसा में

हिंसापरश्चाहं परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ॥ बृहद्बलेन भूपेन मद्गृहं लुण्ठितं तदा ॥४॥ अव-
शिष्टं च यत्किञ्चिद्गृहीतं बन्धुभिर्धनम् ॥ एवं तिरस्कृतः सर्वैर्वनवासमचीकरम् ॥५॥ कृत्वा
जीववधं नित्यं जीवेयं भार्यया सह ॥ एतस्मिन्विपिने घोरे वसतौ मे दुरात्मनः ॥६॥ कुरु-
ष्वानुग्रहं ब्रह्मन् पापयुक्तस्य साम्प्रतम् ॥ प्राचीनपुण्यपुञ्जेन सम्प्राप्तो गहने भवान् ॥७॥
तवाहं शरणं यातः सपत्नीको महामुने ॥ उपदेशप्रसादेन कृतार्थीकर्तुमर्हसि ॥८॥ येन मे
तीव्रदारिद्र्यं विलयं याति तत्क्षणात् ॥ अतुलं वैभवं लब्ध्वा विचरामि यथासुखम् ॥९॥
उग्रदेव उवाच ॥ कृतार्थोऽसि महाभाग यदातिथ्यं कृतं मम ॥ अतस्ते भावि कल्याणं
सपत्नीकस्य साम्प्रतम् ॥१०॥ विना व्रतैर्विना तीर्थैर्विना दानैरयत्नतः ॥ दारिद्र्यं ते लयं

तत्पर रहता था इस लिये बन्धुओं ने मेरा त्याग किया उस समय महाबलवान् राजा मेरा घर लूट लिया ॥४॥ बाद बचा हुआ जो कुछ धन था उसको बन्धुओं ने ले लिया। इस प्रकार सबों से तिरस्कृत होने के कारण वन में वास किया ॥५॥ स्त्री के साथ इस घोर वन में वास करते हुए मुझ दुरात्मा का नित्य जीवों का वध कर जीवन-निर्वाह होता है ॥६॥ हे ब्रह्मन्! इस समय आप मुझ पातकी पर अनुग्रह करें। प्राचीन पुण्य के समूह से आप इस घोर वन में आये हैं ॥७॥ हे महामुने! स्त्री के साथ मैं आपकी शरण में आया हूँ आप उपदेशरूप प्रसाद से कृतार्थ करने के योग्य हैं ॥८॥ जिस उपाय के करने से मेरी तीव्र दरिद्रता उसी क्षण में नष्ट हो जाय और अतुल वैभव को प्राप्त कर यथासुख विचरूँ ॥९॥ उग्रदेव बोला। हे महाभाग! तुम कृतार्थ हो गये। जो तुमने मेरा अतिथिसत्कार किया इसलिये इस समय सपत्नीक तुमको होनेवाले कल्याण को कहता हूँ ॥१०॥ जो बिना व्रत के, बिना तीर्थ के, बिना दान के,

विना प्रयास के तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जायगी ऐसा मैंने विचार किया है ॥११॥ इसके बाद तीसरा श्रीपुरुषोत्तम मास आनेवाला है उस श्रीपुरुषोत्तम मास में सावधानी के साथ विधिपूर्वक तुम दोनों स्त्री पुरुष ॥१२॥ श्रीपुरुषोत्तम भगवान् के प्रसन्नतार्थ दीपदान करना। उस दीपदान से तुम्हारी तीव्र दरिद्रता जड़ से नष्ट हो जायगी ॥१३॥ तिल के तेल से दीपदान करना चाहिये यदि धन हो तो

याति तथा निर्धारितं मया ॥११॥ अतः परं तृतीयोऽस्ति मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ भवद्भ्यां तत्र विधिना दम्पतीभ्यां प्रयत्नतः ॥१२॥ कर्तव्यं दीपदानं च पुरुषोत्तमतुष्टये ॥ तेन ते तीव्रदारिद्र्यं समूलं नाशमेष्यति ॥१३॥ तिलतैलेन कर्तव्यः सर्पिषा वैभवे सति ॥ तयो-र्मध्ये न किञ्चित्ते कानने वसतोऽधुना ॥१४॥ इङ्गुदीजेन तैलेन दीपः कार्यस्त्वयाऽनघ ॥ यावन्मासं सनियमं मणिग्रीव स्त्रिया सह ॥१५॥ अस्मिन्सरोवरे स्नात्वा सह पत्न्या निरं-तरम् ॥ एवमेव हि कर्तव्यं मासमात्रं त्वया वने ॥१६॥ अयमेवोपदेशस्तु सपत्नीकाय मे कृतः ॥ त्वदातिथ्यप्रसन्नेन मया निगमनिश्चितम् ॥१७॥ अन्यथा दीपदानं हि रमावृद्धि-करं नृणाम् ॥ विधिना क्रियामाणं चेत्किं पुनः पुरुषोत्तमे ॥१८॥ वेदोक्तानि च कर्माणि

घी से। परन्तु इस समय वन में वास के कारण घृत तेल में से तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है ॥१४॥ हे अनघ ! हे मणिग्रीव ! पुरुषोत्तम मास भर स्त्री के साथ नियम पूर्वक इङ्गुदी के तेल से तुम दीपदान करना ॥१५॥ स्त्री के साथ इस तालाब में नित्य स्नान करके दीप-दान करना। इसी प्रकार तुम इस वन में एक मास व्रत करना ॥१६॥ तुम्हारे अतिथिसत्कार से प्रसन्न मैंने यह वेद में कहा हुआ तुम दोनों स्त्री पुरुष के लिए उपदेश किया है ॥१७॥ विधिहीन भी दीपदान करने से मनुष्यों को लक्ष्मी की वृद्धि होती है। यदि पुरुषोत्तम

मास में विधिपूर्वक दीपदान किया तो क्या कहना है ॥१८॥ वेद में कहे हुए कर्म और विविध (अनेक प्रकार) के दान पुरुषोत्तम मास में दीपदान की सोलहवीं कला (एक कला) की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥१९॥ समस्त तीर्थ, समस्त शास्त्र पुरुषोत्तममास के दीपदान की सोलहवीं कला को नहीं पा सकते हैं ॥२०॥ योग. ज्ञान, साङ्ख्य, समस्त तन्त्र भी पुरुषोत्तम मास के दीपदान की सोल-

दानानि विविधानि च ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१९॥ तीर्थानि सकलान्येव शास्त्राणि सकलानि च ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२०॥ योगो ज्ञानं तथा साङ्ख्यं तन्त्राणि सकलान्यपि ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि व्रतानि निखिलानि च ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२२॥ वेदाभ्यासो गयाश्राद्धं गोमतीतटसेवनम् ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२३॥ उपरागसहस्राणि व्यतीपातशतानि च ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२४॥ कुरुक्षेत्रादिक्षेत्राणि दण्डकादिवनानि च ॥ पुरुषोत्तमदीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२५॥ एतद्गुह्यतमं वत्स नाख्येयं यस्य कस्यचित् ॥ धनधान्यपशु-

हवीं कला को नहीं पा सकते हैं ॥२१॥ कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि समस्त व्रत पुरुषोत्तम मास के दीपदान की सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥२२॥ वेद का प्रतिदिन पाठ करना गयाश्राद्ध, गोमती नदी के तट का सेवन पुरुषोत्तम मास के दीपदान की सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥२३॥ हजारों ग्रहण सैकड़ों व्यतीपात पुरुषोत्तम मास के दीपदान की सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥२४॥ कुरुक्षेत्र आदि श्रेष्ठ क्षेत्र, दण्डक आदि वन पुरुषोत्तम मास के दीपदान की सोलहवीं कला की

बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥२५॥ हे वत्स ! यह अत्यन्त गुप्त व्रत जिस किसी से कहने लायक नहीं है। यह धन, धान्य पशुसमुदाय, अर्थात सब प्रकार के पशु, पुत्र, पौत्र, यश को करनेवाला है ॥२६॥ वन्ध्या स्त्री के बाँझपन को नाश करनेवाला है और स्त्रियों को सौभाग्य देनेवाला है। राज्य देनेवाला है और प्राणियों को इच्छानुसार फल देनेवाला है ॥२७॥ यदि कन्या व्रत करती है तो गुणी चिरञ्जीवी पति को प्राप्त करती है, स्त्री की इच्छा करने वाला पुरुष सुशीला और पतिव्रता स्त्री को प्राप्त करता है ॥२८॥ विद्यार्थी विद्या

व्रातपुत्रपौत्रयशस्करम् ॥२६॥ वन्ध्यावन्ध्यत्वशमनमवैधव्यकरं स्त्रियाः ॥ राज्यदं राज्य-भ्रष्टस्य चिन्तितार्थकरं नृणाम् ॥२७॥ कन्या विन्देत भर्त्तारं गुणिनं चिरजीविनम् ॥ कान्तार्थी लभते कान्तां सुसीलां च पतिव्रताम् ॥२८॥ विद्यार्थी लभते विद्यां सुशिद्धिं सिद्धिकामुकः ॥ कोशकामो लभेत् कोशं मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥२९॥ विना विधिं विना शास्त्रं यः कुर्यात् पुरुषोत्तमे ॥ दीपं तु यत्र कुत्रापि कामितं सर्वमाप्नुयात् ॥३०॥ किं पुनर्विधिना वत्स दीपं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥ तस्माद्दीपः प्रकर्तव्यो मासे श्रीपुरुशोत्तमे ॥३१॥ एतदुक्तं मया तेऽद्य तीव्रदारिद्र्यनाशनम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सन्तुष्टः

को प्राप्त करता है। सिद्धि को चाहनेवाला अच्छी तरह सिद्धि को प्राप्त करता है। कोश (खजाना) को चाहने वाला कोश को प्राप्त करता है मोक्ष को चाहनेवाला मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२९॥ बिना विधि के, विना शास्त्र के जो पुरुषोत्तम मास में जिस किसी जगह दीपदान अर्थात दीपक बालता है तो इच्छानुसार फल को प्राप्त करता है ॥३०॥ हे वत्स ! विधिपूर्वक नियम से जो दीपदान करता है तो फिर क्या कहना है। इसलिये श्रीपुरुषोत्तम मास में दीपदान करना चाहिये ॥३१॥ मैंने इस समय यह तीव्र दरिद्रता

को नाश करने वाला दीपदान तुमसे कहा तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी सेवा से मैं प्रसन्न हूँ ॥३२॥ अगस्त्य मुनि बोले। इस प्रकार वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मनसे दो भुजाधारी, मुरली (वंशी) को धारण करने वाले श्रीहरि भगवान का स्मरण करते हुए प्रयाग को गये ॥३३॥ वे दोनों अपने आश्रम से उग्रदेव के पीछे जाकर उनके पास कुछ मास पर्यन्त वास करके प्रसन्न मन हो दोनों स्त्री पुरुष उग्रदेव को नमस्कार कर फिर अपने आश्रमको लौट आये ॥३४॥ अपने आश्रम में आकर भक्ति से पुरुषोत्तम में मन लगाकर ब्राह्मण की भक्ति

सेवया तव ॥३२॥ अगस्त्य उवाच—इत्युक्त्वा विप्रवर्योऽसौ प्रयागं सञ्जगाम ह द्विभुजं मुरलीहस्तं मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥३३॥ अनुगत्वोग्रदेवं तं कियन्मासं निजाश्रमात् ॥ पुनरावव्रतुर्नत्वा दम्पती हृष्टमानसौ ॥३४॥ आसाद्य स्वाश्रमं भक्त्या पुरुषोत्तममानसौ ॥ निन्यतुर्मासयुगलं द्विजभक्तिपरायणौ ॥३५॥ गते मासद्वये श्रीमानागतः पुरुषोत्तमः ॥ तौ तस्मिंश्चक्रतुर्दीपं गुरुभक्तिपरायणौ ॥३६॥ इङ्गुदीजेन तैलेन वैभवार्थमतन्द्रितौ ॥ एवं तयोः कृतवतोर्जगाम पुरुषोत्तमः ॥३७॥ उग्रदेवप्रसादेन विनिर्धूतमनोमलौ ॥ कालस्य वशमापन्नौ पुरन्दरपुरीं गतौ ॥३८॥ तत्रत्यं भोगमासाद्य पृथिव्यां भारताजिरे ॥ उग्र-

तत्पर उन दोनों स्त्री पुरुष ने दो मास को बिताया ॥३५॥ दो मास बीत जाने पर श्रीमान् पुरुषोत्तम मास आया उस पुरुषोत्तम मास में वे दोनों गुरुभक्ति में परायण (तत्पर) हो दीपदान को करते हुए ॥३६॥ आलस्य को छोड़कर वे दोनों में ऐश्वर्य के लिये इङ्गुदी के तेल से दीपदान करते हुए। इस प्रकार दीपदान करते उन दोनों का श्रीपुरुषोत्तम मास बीत गया ॥३७॥ उग्रदेव ब्राह्मण के प्रसाद से शुद्धान्तःकरण होकर समय पर काल के वशीभूत हो इन्द्र की पुरी को गये ॥३८॥ वहाँ होनेवाले सुखों को भोगकर पृथ्वी पर

भारतखण्ड में उग्रदेव के प्रसाद से श्रेष्ठ जन्म को उन दोनों स्त्री पुरुष ने प्राप्त किया ॥३९॥ पूर्व जन्म में जो मृग की हिंसा में तत्पर मणिग्रीव था वह तुम वीरबाहु के पुत्र चित्रबाहु नाम से प्रसिद्ध राजा भये ॥४ ॥ इस समय यह चन्द्रकला नामक तुम्हारी स्त्री है वह पूर्वजन्म से सुन्दरी नाम से तुम्हारी स्त्री थी ॥४१॥ पतिव्रत धर्म से यह तुम्हारे अर्धाङ्ग की भागिनी है। जो स्त्री पतिव्रता होती हैं वे

देवप्रसादेन वरं जनुरवापतुः ॥३९॥ वीरबाहुसुतस्त्वं च चित्रबाहुरिति श्रुतः ॥ पूर्वस्मिन्यो मणिग्रीवो मृगहिंसापरायणः ॥४०॥ इयं चन्द्रकला नाम्नी महिषी योऽधुना तव ॥ सुन्दरीति समाख्याता पुनर्जनुषि तेऽङ्गना ॥४१॥ पातिव्रत्येन धर्मेण तवाद्याङ्गार्धहारिणी ॥ पतिव्रता हि या नारी पतिपुण्यार्धभागिनी ॥४२॥ कृतेन दापदानेन मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ इङ्गुदीजेन तैलेन तव राज्यमकण्टकम् ॥४३॥ किं पुनः सर्पिषा दीपं तिलतैलेन वा पुनः ॥ यः करोति ह्यखण्डं वै मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥४४॥ पुरुषोत्तमदीपस्य फल मेतन्न संशयः ॥ किं पुनश्चोपवासाद्यैश्चरतः पुरुषोत्तमम् ॥४५॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ चित्रबाहुचरितं पुरातनं सन्निरूप्य कलशोद्भवोमुनिः ॥ सत्कृतिं समधिगम्य तत्कृतामक्षयाशिषमुदीर्य निर्ययौ

अपने पति के पुण्य का आधा भाग लेनेवाली होती है ॥४२॥ श्रीपुरुषोत्तममास में इङ्गुदी के तेल से दीपदान करने से तुमको यह निष्कण्टक राज्य मिला ॥४३॥ जो पुरुष श्रीपुरुषोत्तममास में घृत से अथवा तिल के तेल से अखण्ड दीपदान करता है तो फिर कहना ही क्या है ॥४४॥ पुरुषोत्तममास में दीपदान का यह फल कहा है इसमें कुछ सन्देह नहीं है जो उपवास आदि नियमों से श्रीपुरुषोत्तम मास का सेवन करता है तो कहना ही क्या है ? ॥४५॥ वाल्मीकि मुनि बोले—इस प्रकार अगस्त्यमुनि राजा चित्रबाहु के पुरातन

(पूर्वजन्म) का चरित्र कहकर और चित्रबाहु से किये गये सत्कार को लेकर तथा अक्षय आशीर्वाद कहकर चले गये ॥४६॥ इति श्रीबृहन्नारदयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने दीपमहात्म्यकथनं नाम चतुर्विन्शोऽध्यायः ॥२४॥

दृढधन्वा बोला—हे ब्रह्मन् ! हे मुने ! अब आप पुरुषोत्तम मास के व्रत करने वाले मनुष्यों के लिये कृपाकर उद्यापन विधि को

॥४६॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने दीपमात्म्यकथनं नाम चतुर्विन्शोऽध्यायः ॥२४॥

दृढधन्वोवाच ॥ अथ सम्यग्वद ब्रह्मन्नुद्यापनविधिं मुने ॥ पुरुषोत्तममासीयव्रतिनां कृपया नृणाम् ॥१॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ समासतः प्रवक्ष्यामि मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ उद्यापनविधिं सम्यग्व्रतसम्पूर्णहेतवे ॥२॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां नवम्यां पुरुषोत्तमे ॥ अष्टम्यां वाथ कर्तव्यमुद्यापनमुदीरितम् ॥३॥ यथालब्धोपहारेण मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ पुण्येऽस्मिन्प्रातरुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः ॥४॥ समाहितमना भूत्वा त्रिंशद्विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ सपत्नीकान् सदाचारान् विष्णुभक्तिपरायणान् ॥५॥ यथाशक्त्याऽथवा सप्त पञ्च वित्तानु-

अच्छी तरह से कहिये ॥१॥ वाल्मीकि मुनि बोले पुरुषोत्तम मास व्रत के सम्पूर्ण फल की प्राप्ति के लिए पुरुषोत्तम मास का उद्यापन विधि को थोड़े में अच्छी तरह से कहूँगा ॥२॥ पुरुषोत्तम मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, नवमी अथवा अष्टमी को उद्यापन करना कहा है ॥३॥ पवित्र इस पुरुषोत्तम मास में प्रातःकाल उठकर तथालब्ध पूजन समान से पूर्वाह्न की क्रिया को कर ॥४॥ एकाग्र मन होकर सदाचारी, विष्णुभक्ति में तत्पर, सपत्नीक ऐसे ३० ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे ॥५॥ हे भूपते ! अथवा यथाशक्ति अपने धन के

अनुसार सात अथवा पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। बाद मध्याह्न के समय एक द्रोण (सोलह सेर) तौल भर ॥६॥ अथवा उसका आधा अथवा यथाशक्ति उसका आधा पञ्चधान्य से उत्तम सर्वतोभद्र बनावे ॥७॥ सर्वतोभद्र मण्डल के ऊपर सुवर्ण, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टी के छिद्र रहित शुद्ध चार कलश स्थापन करना चाहिये ॥८॥ चार व्यूह के प्रीत्यर्थ चारों दिशाओं में बेल से युक्त, उत्तम वस्त्र से

सारतः ॥ ततो मध्याह्नसमये द्रोणमानेन भूपते ॥६॥ तदर्धेन तदर्धेन निजशक्त्यानुसारतः ॥ पञ्चधान्येन कुर्वीत सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥७॥ चत्वारः कलशाः स्थाप्या हैमा वा राजताः शुभाः ॥ ताम्रा वा मृन्मयाः शुद्धा अव्रणा मण्डलोपरि ॥८॥ चतुर्दिक्षु चतुर्व्यूहप्रीतये श्रीफलान्विताः ॥ सद्वस्त्रवेष्टिता नागवल्लीदलसमन्विताः ॥९॥ वासुदेवं हलधरं प्रद्युम्नं देवमुत्तमम् ॥ अनिरुद्धं चतुर्थं वै स्थापयेत्कलशेषु च ॥१०॥ पुरुषोत्तमव्रतारम्भे स्थापितं पुरुषोत्तमम् ॥ सराधं देवदेवेशं कलशेन समन्वितम् ॥११॥ तत आनीय तन्मध्ये मण्डलोपरि विन्यसेत् ॥ आचार्यं वैष्णवं कृत्वा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥१२॥ विप्राश्चत्वार एवात्र वरणीया जपार्थिना ॥ द्वे द्वे वस्त्रे च दातव्ये हस्तमुद्रादिसंयुते ॥१३॥

वेष्टित, पान से युक्त करना ॥९॥ उन चार कलशों पर क्रम से वसुदेव, हलधर, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध देव को स्थापित करे ॥१०॥ जो पुरुषोत्तम मासव्रत के आरम्भ में कलशयुक्त राधिका के सहित देवदेवेश पुरुषोत्तम भगवान् को स्थापित किया है ॥११॥ वहाँ से उनको लाकर मण्डल के ऊपर मध्यभाग में स्थापित करे। वेद वेदाङ्ग के जाननेवाले वैष्णव को आचार्य बनाकर ॥१२॥ जप के चार ब्राह्मणों का वरण करे। उनको अंगूठी के सहित दो दो वस्त्र देना चाहिये ॥१३॥ प्रसन्न मन से वस्त्र आभूषण आदि से आचार्य को अलंकृत

करके बाद शरीरशुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करे ॥१४॥ तदन्तर स्त्री के साथ पूर्वोक्त विधि से पूजा करनी चाहिये। और चार व्यूह का जप वरण किये हुए चार ब्राह्मणों से कराना चाहिये ॥१५॥ चार दिशाओं में चार चार दीपक ऊपर के भाग के स्थापित करना चाहिये। बाद नारियल आदि फलों से क्रम के अनुसार अर्घ्य दान करना चाहिये ॥१६॥ घुटनों के बल पृथिवी में स्थित होकर पञ्चरत्न और

आचार्यं समलङ्कृत्य वस्त्रभूषादिभिर्मुदा ॥ ततो देहविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१४॥ ततः पूर्वोक्तविधिना पूजा कार्या सह स्त्रिया ॥ चतुर्व्यूहजपः कार्यो वृतैर्विप्रैश्चतुर्विधैः॥१५॥ चतुर्दिक्षु प्रकर्तव्या दीपाश्चत्वार उद्धृताः ॥ अर्घ्यदानं ततः कार्यं नारिकेलादिभिः क्रमात् ॥१६॥ पञ्चरत्नसमायुक्तैर्जानुभ्यां सक्तभूतलः ॥ स्वपाणिपुटमध्यस्थैर्यथालब्धैः फलैः शुभैः ॥१७॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्तः सपत्नीको मुदान्वितः अर्घ्यं दद्यात् प्रहृष्टेन मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१८॥ अथ अर्घ्यमन्त्रः ॥ देवदेव नमस्तुभ्यं पुराण पुरुषोत्तमम् ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥१९॥ वन्दे नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् ॥ पीताम्बरधरं देवं सराधं पुरुषोत्तमम् ॥२०॥ एवं भक्त्या हरिं नत्वा सराधं पुरुषोत्तमम् ॥ चतुर्थ्यन्तै-

यथालब्ध अच्छे फलों को दोनों हाथ में लेकर ॥१७॥ श्रद्धा भक्ति से युक्त पत्नी के साथ हर्ष से युक्त हो प्रसन्न मन से श्रीहरि भगवान् का स्मरण करता हुआ अर्घ्यदान करे ॥१८॥ अर्घ्यदान का मन्त्र—हे देवदेव ! हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। हे हरे ! राधिका के साथ आप मुझसे दिये गये अर्घ्य को ग्रहण करें ॥१९॥ नवीन मेघ के समान श्यामवर्ण, दो भुजाधारी, मुरली हाथ में धरण किये, पीताम्बर धारी, देव, राधिका के सहित पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार है ॥२०॥ इस प्रकार भक्ति के साथ राधिका के सहित पुरु-

श्रीराम भगवान को नमस्कार करके चतुर्थ्यन्त नाममन्त्रों से तिल की आहुति देवे ॥२१॥ इसके बाद उन मन्त्रों से तर्पण और मार्जन करे। बाद राधिका के सहित पुरुषोत्तम देव की आरती करे ॥२२॥ अब नीराजन का मन्त्र लिखते हैं—कमल के दल के समान कान्ति वाले, राधिका के रमण, कोटि कामदेव के सौन्दर्य को धारण करने वाले देवेश की प्रेम से आरती करता हूँ ॥२३॥ अथ ध्यान मन्त्र

र्नाममन्त्रैस्तिलहोमं च कारयेत् ॥२१॥ ततस्तदन्ते तन्मन्त्रैः कार्ये तर्पणमार्जने ॥ नीराजयेत्ततो देवं सराधं पुरुषोत्तमम् ॥२२॥ अथ नीराजनमन्त्रः ॥ नीराजयामि देवेशमिन्दोवरदलच्छविम् ॥ राधिकारमणं प्रेम्णा कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥२३॥ अथ ध्यानम् ॥ अन्तर्ज्योतिरनन्तरत्नरचिते सिंहासने संस्थितं वंशीनादविमोहितव्रजवधूवृन्दावने सुन्दरम् ॥ ध्यायेद्राधिकया सकौस्तुभमणिप्रद्योतितोरस्थलं राजद्रत्नकिरीटकुण्डलधं प्रत्यग्रपीताम्बरम् ॥२४॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रधिका सहिते हरौ ॥ नमस्कारं पकुर्वीत साष्टाङ्गं गृहिणीयुतः ॥२५॥ नौमि नवघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् ॥ श्रीवत्सभासितोरस्कं राधिकासहितं हरिम् ॥२६॥ पूर्णपात्रं ततो दद्याद्ब्रह्मणे सहिरण्यकम् ॥ आचार्याय ततो दद्या-

लिखते हैं—अनन्त रत्नों से शोभमान सिंहासन पर स्थित, अन्तर्ज्योति स्वरूप, वंशी के नाद से अत्यन्त मोहित व्रज की वधुओं से घिरे हुए हैं इस लिए वृन्दावन में अत्यन्त शोभमान, राधिका कौस्तुभमणि से शोभमान उरुस्थल वाले, शोभमान रत्नों से जटित किरीट और कुण्डल को धारण करने वाले, आप नवीन पीताम्बर को धारण किये हैं इस प्रकार पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करे ॥२४॥ बाद राधिका के सहित पुरुषोत्तम भगवान् को पुष्पाञ्जलि देकर स्त्री के साथ साष्टाङ्ग नमस्कार करे ॥२५॥ नमस्कार मन्त्र-नवीन मेघ के

समान श्यामवर्ण, पीतवस्त्रधारी, अच्युत, श्रीवत्स चिह्न से शोभित उरस्थल, राधिका सहित हरि भगवान् को नमस्कार है ॥२६॥ ब्रह्मा को सुवर्ण के साथ पूर्णपात्र देवे बाद प्रसन्नता के साथ आचार्य को बहुत सी दक्षिणा देवे ॥२७॥ सपत्नीक आचार्य को भक्ति से वस्त्र आभूषण से प्रसन्न करे बाद ऋत्विजों को उत्तम दक्षिणा देवे ॥२८॥ बछवा सहित, वस्त्र सहित, दूध देनेवाली, सुशील गौ को घण्टा आभूषण से भूषित करके एक गौ देना चाहिये ॥२९॥ ताँबे का पीठ, सुवर्ण का शृङ्ग, चाँदी के खुर से भूषित कर देवे बाद घृत-

दक्षिणां विपुलां मुदा ॥२७॥ आचार्यं तोषयेद्भक्त्या वस्त्रैराभरणैरपि ॥ सपत्नीकं ततो दद्यादृत्विग्भ्यो दक्षिणां पराम् ॥२८॥ धेनुरेका प्रदातव्या सुसीला च पयस्विनी ॥ सचैला च सवत्सा च घण्टाभरणभूषिता ॥२९॥ ताम्रपृष्ठी हेमशृङ्गी सरौप्यखुरभूषिता ॥ घृतपात्रं ततो दद्यात्तिलपात्रं तथैव च ॥३०॥ उमामहेश्वरं दद्याद्दम्पत्योः परिधायकम् ॥ पदमष्टविधं दद्यादुपानद्युगलं तथा ॥३१॥ श्रीमद्भागवतं दद्याद्वैष्णवाय द्विजन्मने ॥ शक्तिश्चेन्न विलम्बेत चलमायुर्विचारयन् ॥३२॥ श्रीमद्भागवतं साक्षाद्भगवद्रूपमद्भुतम् ॥ यो दद्याद्वैष्णवायैव पण्डिताय द्विजन्मने ॥३३॥ स कोटिकुलमुद्धृत्य ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ विमानमधि-

पात्र देवे और उसी प्रकार तिलपात्र देवे ॥३०॥ स्त्री पुरुष को पहिरने के लिए उमा महेश्वर के प्रीत्यर्थ वस्त्र का दान करे। आठ प्रकार का पद देवे और एक जोड़ा जूता, देवे ॥३१॥ वैष्णव ब्राह्मण को श्रीमद्भागवत की पुस्तक का दान करे। यदि शक्ति हो तो आयु की चञ्चलता को विचारता हुआ देरी नहीं करे ॥३२॥ श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान् का अद्भुत रूप है। जो वैष्णव पण्डित ब्राह्मण को देवे ॥३३॥ वह कोटि कुल का उद्धार कर अप्सरागणों से सेवित विमान पर सवार हो योगियों को भी दुर्लभ गोलोक को जाता

है ॥३४॥ हजार कन्यादान, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ, धान्य के साथ क्षेत्रों के दान और जो तुलादान आदि ॥३५॥ आठ महादान हैं और वेददान हैं ये सब श्रीमद्भागवत दान के सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥३६॥ इस लिए श्रीमद्भागवत को सुवर्ण के सिंहासन पर स्थापित कर वस्त्र आभूषण से भूषित कर यत्न पूर्वक वैष्णव ब्राह्मण को देवे ॥३७॥ कांसे के तीस सम्पुट में तीस तीस

स्त्यैति गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥३४॥ कन्यादानसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ सधान्यक्षेत्रदानानि तुलादानानि यानि च ॥३५॥ महादानानि यान्यष्टौ छन्दोदानानि यानि च ॥ श्रीभागवतदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥ तस्माद्यत्नेन तद्देयं वैष्णवाय द्विजन्मने ॥ सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिर्हेमसिंहासनस्थितम् ॥३७॥ कांस्यानि सम्पुटान्येव त्रिंशद्देयानि सर्वथा ॥ त्रिंशत्त्रिंशदपूपैश्च मध्ये सम्पूरितानि च ॥३८॥ प्रत्यपूपं तु यावन्ति छिद्राणि पृथिवीपते ॥ तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसते नरः ॥३९॥ ततः प्रयाति गोलोकं निर्गुणं योगिदुर्लभम् ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते ज्योतिर्धाम सनातनम् ॥४०॥ सार्धप्रस्थद्वयं कांस्यसम्पुटं परिकीर्तितम् ॥ निर्धनेन यथाशक्त्या कार्याणि व्रतपूर्तये ॥४१॥ अथवाऽ-

मालपूआ रखकर ब्राह्मणों को देवे ॥३८॥ हे पृथिवीपते ! हर एक मालपूआ में जितने छिद्र होते हैं उतने हजार वर्ष पर्यन्त वैकुण्ठ लोक में जाकर वास करता है ॥३९॥ बाद योगियों को दुर्लभ, निर्गुण गोलोक को जाता है। जिस सनातन ज्योतिर्धाम गोलोक को जाकर नहीं लौटते हैं ॥४०॥ अढ़ाई सेर काँसे का सम्पुट कहा गया है निर्धन पुरुष यथाशक्ति व्रतपूर्ति के लिए सम्पुट दान करे ॥४१॥ अथवा

पुरुषोत्तम भगवान् के प्रीत्यर्थ मालपूआ का कच्चा सामान फल के साथ सम्पुट में रखकर देवे ॥४२॥ हे नराधिप! निमन्त्रित सपत्नीक ब्राह्मणों को पुरुषोत्तम भगवान् के समीप सङ्कल्प करके देवे ॥४३॥ अब प्रार्थना लिखते हैं—हे श्रीकृष्ण! हे जगदाधार! हे जगदानन्ददायक! अर्थात् हे जगत् को आनन्द देने वाले! मेरे समस्त इस लोक तथा परलोक के कामनाओं को शीघ्र पूर्ण करें ॥४४॥

पूपसामग्रीमपक्वां सफलां पराम् ॥ तत्राधाय प्रदेयानि पुरुषोत्तमप्रीतये ॥४२॥ निमन्त्रितानां विप्राणां सस्त्रीकाणां नराधिप ॥ सङ्कल्पं च प्रकुर्वीत पुरुषोत्तमसन्निधौ ॥४३॥ अथ प्रार्थना ॥ श्रीकृष्ण जगदाधार जगदानन्ददायक ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामान्न निखिलान्पूरयाशु मे ॥४४॥ इति सम्प्रार्थ्य गोविन्दं भोजयेद्ब्राह्मणान्मुदा ॥ सपत्नीकान् सदाचारान् संस्मरन्पुरुषोत्तमम् ॥४५॥ सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या भोजयेद्घृतपायसैः ॥ विप्ररूपं हरिं स्मृत्वा स्त्रीरूपां राधिकां स्मरन् ॥४६॥ भोजनस्य तु सङ्कल्पमाचरेद्विधिना व्रती ॥ द्राक्षाभिः कदलीभिश्च चूतैश्च विविधैरपि ॥४७॥ घृतपाचितपक्वान्नैः शुभैश्च माषकैर्वटैः ॥ शर्कराघृतपक्वैश्च फाणितैः खण्डमण्डकैः ॥४८॥ ऊर्वारुकर्कटीशाकैरार्द्रकैश्च सुनिम्बुकैः ॥

इस प्रकार गोविन्द भगवान् की प्रार्थना कर प्रसन्नता पूर्वक पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण करता हुआ सपत्नीक सदाचारी ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥४५॥ ब्राह्मणरूप हरि, ब्राह्मणीरूप राधिका का स्मरण करता हुआ घृत पायस (घी से भुने हुए दूध की खीर) भक्ति पूर्वक गन्धाक्षत से पूजन कर भोजन करावे ॥४६॥ व्रत करने वाला विधिपूर्वक भोजन सामान का सङ्कल्प करे। अंगूर, केदली, अनेक प्रकार के आम के फल ॥४७॥ घी के पके हुए, सुन्दर उड़दी के बने बड़े, चीनी घी के बने घेवर, फेनी, खाड़ के बने मण्डक ॥४८॥

खरबूजा, ककड़ी का शाक, अदरख, सुन्दर नीबू और अनेक प्रकार के शाक, विविध प्रकार के अलग अलग आम ॥४९॥ इस प्रकार षड् रसों से प्राप्त युक्त चार प्रकार का भोजन (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य), सुगन्धित पदार्थ (पानड़ी, इलायची, केशर, कस्तूरी, आदि) से वासित गोरस (दूध) को परोस कर कोमल वाणी बोलता हुआ ॥५०॥ यह स्वादिष्ट है इसको आपके लिये तैयार किया

अन्यैश्च विविधैः शाकैराम्रैः पक्वैः पृथक् पृथक् ॥४९॥ चतुर्धा भोजनैस्वे षड्रसैः सह सङ्गतैः ॥ वासितान् गोरसांस्तत्र परिवेष्य मृदु ब्रुवन् ॥५०॥ इदं स्वादु मुदा भोज्यं भव-दर्थे प्रकल्पितम् ॥ याच्यतां रोचते ब्रह्मन् यन्मया पाचितं प्रभो ॥५१॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि जातं मे जन्म सार्थकम् ॥ भोजयित्वा मुदा विप्रान् देयास्ताम्बूलदक्षिणाः ॥५२॥ एलालवङ्गकर्पूरनागवल्लीदलानि च ॥ कस्तूरी मूरमांसा च चूर्णं च खदिरं शुभम् ॥५३॥ एभ्यश्च मीलितैर्देयं ताम्बूलं भगवत्प्रियम् ॥ तस्मादेवं विधायैव देयं ताम्बूलमादरात् ॥५४॥ ताम्बूलं यो द्विजाग्र्याय एवं कृत्वा प्रयच्छति ॥ सुभगश्च भवेदत्र परत्रामृतभुग्भवेत् ॥५५॥ परितोष्य सपत्नीकान् हस्ते दद्याच्च मोदकान् ॥ पत्नीभ्यो वेणवीर्दद्यादलङ्कृत्य विधा-

है प्रसन्नता के साथ भोजन कीजिये। हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! जो इन पकाये हुए पदार्थों में अच्छा मालूम हो उसको मांगिये ॥५१॥ आज मैं धन्य हूँ, आज में ब्राह्मणों के अनुग्रह का पात्र हुआ, आज मेरा जन्म सफल हुआ, इस प्रकार कह कर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराके ताम्बूल और दक्षिणा देवे ॥५२॥ इलायची, लौंग, कपूर, नागरपान, कस्तूरी, जावित्री, कत्था और चूना ॥५३॥ इन सब पदार्थों को मिला कर भगवान् को प्रिय ताम्बूल को देना चाहिये। इसलिये इन सामानों से युक्त करके ही आदर के साथ

ताम्बूल देना चाहिये ॥५४॥ जो इस प्रकार ताम्बूल को ब्राह्मण श्रेष्ठ के लिए देता है वह इस लोक में ऐश्वर्य सुख भोग कर परलोक में अमृत का भोक्ता होता है ॥५५॥ स्त्री के साथ (सपत्नीक) ब्राह्मणों को प्रसन्न कर हाथ में मोदक (लड्डू) देवे और ब्राह्मणियों को विधि पूर्वक वस्त्र आभूषण से अलङ्कृत कर वैष्णवी (वंशलोचन) देवे ॥५६॥ सीमा तक उन ब्राह्मणों को पहुँचाकर विसर्जन करे। "मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्ण तदस्तु मे" ॥१॥ इस मन्त्र से पुरुषोत्तम भगवान् को क्षमापन

नतः ॥५६॥ आसीमान्तमनुव्रज्य ब्राह्मणांस्तान् विसर्जयेत् ॥ मन्त्रहीनेति मन्त्रेण क्षमाप्य पुरुषोत्तमम् ॥५७॥ यस्य स्मृत्येति मन्त्रेण नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ यदूनं तत्तु सम्पूर्णं विधाय विचरेत् सुखम् ॥५८॥ अन्नं विभज्य भूतेभ्यो यथाभागमकुत्सयन् ॥ भुञ्जीत स्वजनैः सार्धं मिथ्यावादविवर्जितः ॥५९॥ दर्शस्य दिवसे प्राप्ते कुर्याज्जागरणं निशि ॥ राधिका सहितं हैमं पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥६०॥ पूजान्ते च नमस्कृत्य सपत्नीको मुदान्वितः ॥ व्रती विसर्जयेद्देवं सराधं पुरुषोत्तमम् ॥६१॥ आचार्याय ततो दद्यादुपहारं समूर्तिकम् ॥

समर्पण करके ॥५७॥ "यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्" ॥१॥ इस मन्त्र से जनार्दन भगवान् को नमस्कार कर जो कुछ कमी रह गई हो वह अच्युत भगवान् की कृपा से पूर्ण फल देने वाला हो यह कह कर यथासुख विचरे ॥५८॥ अन्न का यथाभाग विभाग कर भूतों को देकर मिथ्याभाषण से रहित हो अन्न की निन्दा न करता हुआ स्वजनों के साथ भोजन करे ॥५९॥ अमावास्या के दिन रात्रि में जागरण करे सुवर्ण की प्रतिमा में राधिका के सहित पुरुषोत्तम भगवान की पूजा करे ॥६०॥ पूजन के अन्त में सपत्नीक व्रती प्रसन्न चित्त हो नमस्कार कर राधिका के साथ पुरुषोत्तम देव का विसर्जन करे

॥६१॥ बाद आचार्य को मूर्ति के सहित उपहार (चढ़ा हुआ सामान) को देवे [illegible] किसी उपाय से इस व्रत को कर और

॥६१॥ बाद आचार्य को मूर्ति के सहित उपहार (चढ़ा हुआ सामान) को देवे ॥६२॥ जिस किसी उपाय से इस व्रत को करे और उत्तम भक्ति से धन के अनुसार दान को करे ॥६३॥ स्त्री अथवा पुरुष इस व्रत को करें तो जन्म जन्म में दुःख दारिद्रय और दौर्भाग्य को नहीं प्राप्त होते हैं ॥६४॥ जो लोग इस व्रत को करते हैं वे इस लोक में अनेक प्रकार के मनोरथों को प्राप्त करके सुन्दर विमान पर

तिकम् ॥ अन्नदानं यथायोग्यं दद्यादिच्छानुसारतः ॥६२॥ येन केनाप्युपायेन व्रतमेतत् समाचरेत् ॥ कुर्याच्च परया भक्त्या दानं वित्तानुसारतः ॥६३॥ नारी वाथ नरो वापि व्रत-मेतत् समाचरेत् ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यं नाप्नुयाज्जन्मजन्मनि ॥६४॥ ये कुर्वन्ति जना लोके नानापूर्णमनोरथाः ॥ विमानान्यधिरुह्यात्र यान्ति वैकुण्ठमुत्तमम् ॥६५॥ श्रीनारा-यण उवाच ॥ इत्थं यो विधिमवलम्ब्य चर्करीति श्रीकृष्णप्रियतममासमादरेण ॥ गोलोकं व्रजति विधूय पापराशिं चात्रत्यं सुखमनुभूय पूर्वपुम्भिः ॥६६॥ इति श्रीबृहन्नारदीय-पुराणे नारायणनारदसंवादे दृढधन्वोपाख्याने व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम पञ्चविंशो-ऽध्यायः ॥२५॥

सवार हो श्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक को जाते हैं ॥६५॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार जो पुरुष श्रीकृष्ण भगवान् का प्रिय पुरुषोत्तम मासव्रत विधिपूर्वक आदर के साथ करता है वह इस लोक के सुखों को भोगकर और पापराशि से मुक्त होकर अपने पूर्व पुरुषों के साथ गोलोक को जाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने व्रतोद्यापनविधिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अब उद्यापन के बाद व्रत के नियम का त्याग लिखते हैं। वाल्मीकि मुनि बोले। समस्त पापों के नाश के लिये गरुड़ध्वज भगवान् के प्रीत्यर्थ धारण किये व्रत नियम का विधि- पूर्वक त्याग कहते हैं ॥१॥ हे राजन्! नक्तव्रत करनेवाला मनुष्य समाप्ति में ब्राह्मणों को भोजन करावे और अयाचित व्रत (विना मांगे जो कुछ मिल जाय उसको खाकर रहने) में सुवर्णदान करना ॥२॥ अमा-

अथोद्यापनान्तरं व्रतनियममोक्षणमुच्यते ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ अशेषपापनाशार्थं प्रीतये गरुड़ध्वजे ॥ गृहीतनियमत्यागश्चोच्यते विधिपूर्वकः ॥१॥ नक्तभोजी नरो राजन् ब्राह्मणान् भोजयेदथ ॥ अयाचिते व्रते चैव स्वर्णदानं समाचरेत् ॥२॥ अमावास्याशनो यस्तु प्रदद्याद् गां सदक्षिणाम् ॥ धात्रीस्नानं नरो यस्तु दधि वा क्षीरमेव च ॥३॥ फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृतस्थाने पयस्तथा ॥ ४ ॥ धान्यानां नियमे राजन् गोधूमान् शालितण्डुलान् ॥ भूमौ च शयने राजन् सतूलीं सपरिच्छदाम ॥ ५ ॥ सुखदां चात्मनो न्यस्य ह्यन्तर्यामीप्रियो जनः ॥ पत्रभोजी नरो यस्तु भोजनं घृतशर्कराम् ॥ ६ ॥ मौने घण्टां तिलांश्चैव

वास्या में भोजन का नियम पालन करने वाला दक्षिणा के साथ गोदान देवे। जो आंवला के जल से स्नान करता है वह दही अथवा दूध का दान करे ॥३॥ हे राजन्! फलों का नियम किया है तो फलों का दान करे। तेल का नियम किया है अर्थात् तैल छोड़ा है तो समाप्ति में घृतदान करे और घृत का नियम किया है तो दूध का दान करे ॥४॥ हे राजन्! धान्यों के नियम में गेहूँ और शालि का दान करे। हे राजन! यदि पृथ्वी में शयन का नियम किया है तो रूई भरे हुए गद्दे और चाँदनी के सहित ॥५॥ अपने सुख

देने वाली तकिया आदि रख कर शय्या का दान करे वह मनुष्य भगवान् को प्रिय होता है। जो मनुष्य पत्र में भोजन करता है वह ब्राह्मणों को भोजन घृत चीनी दान करे ॥६॥ मौनव्रत में सुवर्ण के सहित घण्टा और तिलों का दान करे। सपत्नीक ब्राह्मण को घृतयुक्त पदार्थ से भोजन करावे ॥७॥ हे राजन्! नख तथा केशों को धारण करने वाला बुद्धिमान् दर्पण (सीसा) का दान करे। जिसने जूता का त्याग किया है, तो जूता का दान करे ॥८॥ लवण के त्याग में अनेक प्रकार के रसों का दान करे। दीपदान किया है

सहिरण्यान् प्रदापयेत् ॥ दम्पत्योर्भोजनं चैव सस्नेहं च सुभोजनम् ॥७॥ नखकेशधरो राजन्नादर्शं दापयेद्बुधः ॥ उपनहौ प्रदातव्ये उपानहविवर्जनात् ॥८॥ लवणस्य परित्यागे दातव्या विविधा रसाः ॥ दीपदाने नरो दद्यात् पात्रयुक्तं च दीपकम् ॥६॥ अधिमासे नरो भक्त्या स वैकुण्ठे वसेत् सदा ॥ दीपं च सघृतं ताम्रं काञ्चनीवर्तिसंयुतम् ॥१०॥ फलमात्रं प्रदेयं स्याद्व्रतसम्पूर्ण हेतवे ॥ एकान्तरोपवासे च कुम्भानष्टौ प्रदापयेत् ॥११॥ सवस्त्रान् काञ्चनोपेतान् मृन्मयानथ काञ्चनान् ॥ मासान्ते मोदकांस्त्रिंशच्छत्रोपानहसंयुतान् ॥१२॥ अनड्वांश्च प्रदातव्यो धौरेयस्तु धुरिक्षमः ॥ सर्वेषामप्यलाभे च यथोक्तकरणं विना ॥१३॥

तो मय पात्र के दीपक का दान करै ॥६॥ जो मनुष्य अधिकमास में भक्ति से नियमों का पालन करता है वह सदा बैकुण्ठ में जाकर वास करता है। तांबे के पात्र में घृत सुवर्ण की बत्ती रखकर दीपक का दान करे ॥१०॥ व्रत की पूर्ति के लिए फलमात्र का ही दान देवे। एकान्त में वास करने वाला आठ घंटों का दान करे ॥११॥ वे घट सुवर्ण के हों या मिट्टी के उनको वस्त्र और सुवर्ण के टुकड़ों के साथ देवे। और मास के अन्त में छाता जूता के साथ ३० मोदक (लड्डू) का दान करे ॥ १२ ॥ और ढोने में समर्थ बैल का दान

करे। इन वस्तुओं के न मिलने पर अथवा यथोक्त (कहे मुताबिक) करने में असमर्थ होने पर ॥१३॥ हे राजन्! सम्पूर्ण व्रतों के सिद्धि को देने वाला ब्राह्मणों का वचन कहा गया है अर्थात् ब्राह्मण से सुफल के मिलने पर व्रत पूर्ण हो जाता है। जो मलमास में एक अन्न का सेवन करता है ॥१४॥ वह चतुर्भुज होकर परम गति को जाता है। इस लोक में एकान्न से बढ़कर दूसरा कोई भी पवित्र नहीं है ॥१५॥ एक अन्न के सेवन से मुनि लोग सिद्ध होकर परम मोक्ष के भागी हो गये। अधिकमास में जो मनुष्य नक्तव्रत करता है वह

द्विजवाक्यं स्मृतं राजन् सम्पूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥ एकान्नेन नरो यस्तु मलमासं निषेवते ॥१४॥ चतुर्भुजो नरो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥ एकान्नान्नापरं किञ्चित्पवित्रमिह विद्यते ॥१५॥ एकन्नान्मुनयः सिद्धाः परं निर्वाणमागताः ॥ अधिमासे नरो नक्तं यो भुङ्क्ते स नराधिपः ॥१६॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नरो नैवात्र संशयः ॥ पूर्वाह्णे भुञ्जते देवा मध्याह्ने मुनयस्तथा ॥१७॥ अपराह्णे पितृगणाः स्वात्मार्थस्तु चतुर्थकः ॥ सर्ववेला-मतिक्रम्य यस्तु भुङ्क्ते नराधिप ॥१८॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नाशं यान्ति जनाधिप ॥ नक्तभोजी महीपाल सर्वपुण्याधिको भवेत् ॥१९॥ दिने दिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति

राजा होता है ॥१६॥ वह मनुष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। देवता लोग दिन के पूर्वाह्ण में भोजन करते हैं और मुनि लोग मध्याह्न में भोजन करते हैं ॥१७॥ अपराह्न में पितृगण भोजन करते हैं इसलिये अपने लिए भोजन का समय चतुर्थ प्रहर कहा गया है। हे नराधिप! जो सब वेला को अतिक्रमण कर चतुर्थ प्रहर में भोजन करता है ॥१८॥ हे जना-धिप! उसके ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं। हे महीपाल! नक्तव्रत करने वाला समस्त पुण्यों से अधिक पुण्य फल का भागी होता

है ॥१९॥ और वह मनुष्य प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ के करने का फल प्राप्त करता है। भगवान को प्रिय पुरुषोत्तम मास में उरदी का त्याग करे ।।२०॥ वह उरद छोड़ने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है। जो पातकी ब्राह्मण होकर यन्त्र में तिल पेरता है ॥२१॥ हे राजन्! वह ब्राह्मण तिल की संख्या के अनुसार उतने वर्ष पर्यन्त रौरव नरक में वास करता है बाद चाण्डाल योनि में जाता है और कष्ट रोग से पीड़ित होता हैं ॥२२॥ जो मनुष्य शुक्ल और कृष्ण पक्ष को एकादशी तिथि में उपवास करता है वह

मानवः ॥ तस्मिन्विवर्जयेन्माषमधिमासे हरिप्रिये ॥२०॥ सर्वस्मान्मुच्यते पापाद्विष्णुलोकं स गच्छति ॥ तिलयन्त्राणि पापात्मा कुरुते ब्राह्मणोऽपि सन् ॥२१॥ तिलानां संख्यया राजन् स वै तिष्ठति रौरवे ॥ चाण्डालयोनिमाप्नोति कुष्ठरोगेण पीड्यते ॥२२॥ शुक्ले कृष्णे नरो भक्त्या द्वादशीं समुपोषयेत् ॥ आरुह्य गरुडं याति नरो भूत्वा चतुर्भुजः ॥२३॥ स देवैः पूज्यमानोऽपि ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ दशमीं द्वादशीं चैव एकभुक्तं च कारयेत् ॥२४॥ प्रीतये देव देवस्य नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ भक्त्या च सर्वदा राजन् दर्भकूर्चं न वर्जयेत् ॥२५॥ दर्भेण मार्जयेद्यस्तु पुरीषं मूत्रमेव च ॥ श्लेष्माणं रुधिरं वापि विष्ठायां जायते कृमिः ॥२६॥

मनुष्य चतुर्भुज हो गरुड़ पर सवार होकर वैकुण्ठ लोक को जाता है ॥२३॥ और वह देवताओं से पूजित तथा अप्सरोगणों से सेवित होता है। एकादशी व्रत करनेवाला दशमी और द्वादशी के दिन एक बार भोजन करे ॥२४॥ जो मनुष्य देवदेव विष्णु भगवान् के प्रीत्यर्थ व्रत करता है वह मनुष्य स्वर्ग को जाता है। हे राजन्! हमेशा भक्ति से कुशा का मुट्ठा धारण करे, कुशमुष्टि का त्याग न करे ॥२५॥ जो मनुष्य कुशा से मल, मूत्र, कफ, रुधिर को झारता है अर्थात् झाड़ू का काम लेता है वह विष्ठा में कृमियोनि में जाकर वास

करता है ॥२६॥ कुशा अत्यन्त पवित्र कहे गये हैं बिना कुशा की क्रिया व्यर्थ कही गई है क्योंकि कुशा के मूल भाग में ब्रह्मा और मध्य भाग में जनार्दन वास करते हैं ॥२७॥ कुशा के अग्रभाग में उमानाथ (महादेव) वास करते हैं इसलिये कुशा से मार्जन करे। शूद्र जमीन से कुशा को न उखाड़े और कपिला गौ का दूध न पीवे ॥२८॥ हे भूपते ! ब्रह्मपत्र (ढाक के पत्र) में भोजन न करे, प्रणवमन्त्र का उच्चारण न करे, पुरोडाश (यज्ञ का बचा हुआ अन्न) न खाय ॥२६॥ शूद्र कुशासन पर न बैठे, जनेऊ को धारण न करे और

पवित्राः परमा दर्भा दर्भहीना वृथा क्रियाः ॥ दर्भमूले वसेद् ब्रह्मा मध्ये देवी जनार्दनः ॥२७॥ दर्भाग्रे तु ह्युमानाथस्तस्माद्दर्भेण मार्जयेत् ॥ न दर्भानुद्धरेच्छूद्रो न पिबेत्कपिलापयः ॥२८॥ मध्यपत्रोन भुञ्जीत ब्रह्मपत्रस्य भूपते ॥ नोच्चरेत् प्रणवं मन्त्रं पुरोडाशं न भक्षयेत् ॥२६॥ नासनं नोपवीतं च नाचरेद्वैदिकीं क्रियाम् ॥ निर्विध्याचरणं कुर्वन् पितृभिः सह मज्जति ॥३०॥ पतन्ति नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पश्चाच्च कौक्कुटीं योनिं सूकरीं वानरीं च वा ॥३१॥ एतस्मात्कारणाच्छूद्रः प्रणवं वर्जयेत्सदा ॥ नमस्कारेण विप्राणां शूद्रो नश्यति भूमिप ॥३२॥ एतत्कृत्वा महाराज परिपूर्णं व्रतं चरेत् ॥ अदत्त्वा दक्षिणां वापि नरकं यान्ति वै नराः ॥३३॥ व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यन्धः कुष्ठी प्रजायते

वैदिकी क्रिया को न करे। यदि विधि का त्याग कर मनमाना काम करता है तो वह शूद्र अपने पिता के साथ नरक में डूब जाता है ॥३०॥ चौदह इन्द्र तक नरक में पड़ा रहता है बाद मुरगा, सूकर, वानर योनि को जाता है ॥३१॥ इस लिए शूद्र हमेशा प्रणव का त्याग करे। हे भूमिप ! शूद्र ब्राह्मणों के नमस्कार करने से नष्ट हो जाता है ॥३२॥ हे महाराज ! इतना करने से व्रत परिपूर्ण कहा है।

अथवा ब्राह्मणों को दक्षिणा न देने से मनुष्य नरक के भागी होते हैं ॥३३॥ व्रत में विघ्न होने से अन्धा और कोढ़ी होता है ॥३४॥

अथवा ब्राह्मणों को दक्षिणा न देने से मनुष्य नरक के भागी होते हैं ॥३३॥ व्रत में विघ्न होने से अन्धा और कोढ़ी होते हैं ॥३४॥ हे भूप! मनुष्यों में श्रेष्ठ मनुष्य पृथ्वी के देवता ब्राह्मणों के वचन से स्वर्ग को जाते हैं। हे भूप! इसलिए कल्याण को चाहने वाला विद्वान् मनुष्य उन ब्राह्मणों के वचनों के उलङ्घन न करे ॥३५॥ यह मैंने उत्तम, कल्याण करनेवाला, पापों का नाशक, उत्तम फल

॥३४॥ धरामराणां वचनैर्नरोत्तमा दिवौकसां वै पदमाप्नुवन्ति ॥ नोल्लङ्घयेद्भूप वचांसि तेषां श्रेयोऽभिकामी मनुजः स विद्वान् ॥३५॥ इदं मया धर्मरहस्यमुत्तमं श्रेयस्करं पापविमर्दनं च ॥ फलप्रदं माधवतुष्टिहेतोः पठेच्च नित्यं मनसोऽभिरामम् ॥३६॥ यः शृणोति नरो राजन् पठते वापि सर्वदा ॥ स याति परमं लोकं यत्र योगीश्वरो हरिः ॥३७॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे गृहीतनियमत्यागो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

श्रीनारायण उवाच—इत्युक्त्वा विरतं राजा मुनीश्वरमनीनमत् ॥ अपूजयत्ततो भक्त्या सपत्नीको मुदान्वितः ॥१॥ उररीकृत्य तत्पूजामाशीर्वादमुदीरयत् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमि-

को देने वाला, माधव भगवान् को प्रसन्न करने वाला, मन को प्रसन्न करने वाला धर्म का रहस्य कहा इसको जो नित्य पढ़ेगा ॥३६॥ हे राजन्! जो इसको हमेशा सुनता है अथवा पढ़ता है वह उत्तम लोक को जाता है जहाँ पर योगीश्वर हरि भगवान् वास करते हैं ॥३७॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे गृहीतनियमत्यागो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

श्रीनारायण बोले—इस प्रकार कह कर मौन स्थित मुनीश्वर बाल्मीकि मुनि को सपत्नीक राजा दृढधन्वा ने नमस्कार किया

वाद प्रसन्नता के साथ भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥१॥ उस राजा दृढधन्वा से की हुई पूजा को लेकर आशीर्वाद को दिया। तुम्हारा कल्याण हो। पापों को नाश करने वाली सरयू नदी को मैं जाऊँगा ॥२॥ इस समय हम दोनों को इस प्रकार बात करते सायङ्काल हो गया है। यह कह कर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि मुनि शीघ्र चले गये ॥३॥ राजा दृढधन्वा भी सीमा तक वाल्मीकि मुनि को पहुँचा कर अपने गृह लौट आया। घर आकर अपनी गुणसुन्दरी नामक सुन्दरी स्त्री से बोला ॥४॥ राजा दृढधन्वा बोला। अयि सुन्दरि! राग,

ष्यामि सरयूं पापनाशिनीम् ॥२॥ आवयोर्वदतोरेवं सायङ्कालोऽधुनाऽभवत् इत्युक्त्वाऽशु जगामैव वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ॥३॥ आसीमान्तमनुव्रज्य राजाऽप्यागतवान् गृहम् ॥ आगत्य स्वप्रियामाह सुन्दरीं गुणसुन्दरीम् ॥४॥ दृढधन्वोवाच ॥ अयि सुन्दरि संसारे ह्यसारे किं सुखं नृणाम् ॥ रागद्वेषादिषट्शत्रौ गन्धर्वनगरोपमे ॥५॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते देहे मे किं प्रयोजनम् ? ॥ वातपित्तकफोद्रेकमलमूत्रासृगाकुले ॥६॥ अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवमर्जयितुं वने ॥ गमिष्यामि वरारोहे संस्मरन् पुरुषोत्तमम् ॥७॥ तदाकर्ण्य प्रिया प्राह साध्वी सा गुणसुन्दरी ॥ विनयावनता भूत्वा बद्धाञ्जलिपुटा शुचा ॥८॥ गुणसुन्दर्युवाच ॥ अहं-

द्वेष, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं से युक्त, गन्धर्व नगर के समान इस असार संसार में मनुष्यों का क्या सुख है ? ॥५॥ कृमि, विट्, भस्म नाम पड़ने वाले, वात पित्त कफ युक्त, मल मूत्र रुधिर से व्याप्त इस देह से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥६॥ हे वरारोहे ! इस अनित्य शरीर से नित्य वस्तु का अर्जन करने के लिए पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण करता हुआ वन को जाऊँगा ॥७॥ पतिव्रता गुणसुन्दरी स्त्री अपने पति के वचन को सुनकर विनय से नम्र और शोक करती हुई हाथ जोड़कर पति से बोली ॥८॥ गुण-

सुन्दरी बोली। हे भूपते! आपके साथ में भी आऊँगी क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों के लिए पति ही देवता हैं ॥९॥ पति के चले जाने पर जो स्त्री पुत्र के गृह में पुत्रवधू के अधीन होकर रहती है तो वह पराये घर में कुतिया के समान ही कही जाती है ॥१०॥ पिता परिमित (थोड़ी) वस्तु को ही देता है, भाई भी परिमित वस्तु को ही देता है इसी प्रकार पुत्र भी परिमित वस्तु को देता है परन्तु अपरिमित (अगणित) वस्तु को देनेवाला पति ही है ऐसे पति का अनुगमन कौन स्त्री नहीं करेगी ? ॥११॥ इस प्रकार अपनी स्त्री के वचन को

मय्यागमिष्यामि त्वयैव सह भूपते ॥ पतिव्रतानां स्त्रीणां तु पतिरेव हि दैवतम् ॥९॥ पत्यौ गते तु या नारी गृहे तिष्ठति सौनवे ॥ स्नुषाधीना तु सा नारी शुनीव परवेश्मनि ॥१०॥ मितं पिता ददात्येव मितं भ्राता मितं सुतः ॥ अमितस्य प्रदातारं भर्तारं काऽनु न व्रजेत् ॥११॥ प्रियावाक्यमुरी कृत सुतं राज्येऽभिषिच्य च ॥ सह पत्न्यो ययौ शीघ्रमरण्यं मुनिसेवितम् ॥१२॥ हिमाचलसमीपे च गङ्गामासाद्य दम्पती ॥ त्रिकालं चक्रतुः स्नानं सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥१३॥ पुरुषोत्तमं समासाद्यविधिना तत्र नारद ॥ तपस्तेपे सपत्नीकः संस्मरन् पुरुषोत्तमम् ॥१४॥ ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बः पादाङ्गुष्ठेन संस्थितः ॥ नभोदृष्टि-

स्वीकार कर और पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त (बैठा) कर अपनी स्त्री के साथ मुनियों से सेवित वन को शीघ्र चला गया ॥१२॥ हिमालय के समीप गङ्गा को प्राप्त कर दोनों स्त्री-पुरुष श्रीपुरुषोत्तम मास के आने पर त्रिकाल (प्रातःकाल, मध्यान्ह, सायङ्काल) स्नान करते भये ॥१३॥ हे नारद! पुरुषोत्तम मास के आने पर दोनों स्त्री-पुरुष विधिपूर्वक वहाँ पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण करते हुए तप करने लगे ॥१४॥ ऊपर को हाथ कर बिना किसी अवलम्ब के पैर के अँगूठे के बल पर स्थित आकाश में दृष्टि लगाकर निरा-

हार राजा दृढधन्वा श्रीकृष्ण भगवान् का जप करता हुआ ॥१५॥ इस प्रकार तपोनिधि राजा के व्रतविधि में स्थित होने पर उसकी पतिव्रता स्त्री पति की सेवा करने में तत्पर थी ॥१६॥ इस प्रकार व्रत करते हुए पुरुषोत्तम मास के पूर्ण होने पर छोटी २ घण्टियों और जाल से शोभित विमान वहाँ आया ॥१७॥ पुण्यशील सुशील से सेवित सहसा आये हुए विमान को देखकर सपत्नीक राजा आश्चर्य-

र्निहारः श्रीकृष्णं तमजीजपत् ॥१५॥ एवं व्रतविधौ तस्य तस्थुषश्च तपोनिधे ॥ सेवाविधौ प्रपन्नाऽसीन्महिषी सा पतिव्रता ॥१६॥ एवं कृतवतस्तस्य सम्पूर्णे पुरुषोत्तमे ॥ विमान-मागमत्तत्र किङ्किणीजालमण्डितम् ॥१७॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यां सेवितं सहसागतम् ॥ तद्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः सपत्नीको महीपतिः ॥१८॥ अनीनमद्विमानस्थौ पुण्यशीलसुशीलकौ ॥ नतस्तौ तं सपत्नीकं विमानं निन्यतुर्नृपम् ॥ १९ ॥ विमानमधिरुह्याथ सपत्नीको नराधिपः ॥ गोलोकं गतवान् शीघ्रं दिव्यं धृत्वा वपुर्नवम् ॥२०॥ एवं दृष्ट्वा तपो राजा मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ निर्भयं लोकमासाद्य मुमोद हरिसन्निधौ ॥२१॥ पतिव्रता च तत्पत्नी सापि तल्लोकमाययौ ॥ पुरुषोत्तमे तपस्यन्तं संसेव्य निजवल्लभम् ॥२२॥ श्रीनारायण

युक्त हो गया ॥१८॥ और विमान पर स्थित पुण्यशील सुशील को नमस्कार किया बाद पुण्यशील सुशील राजा दृढधन्वा को सपत्नीक विमान पर ले गये ॥१९॥ सपत्नीक राजा विमान पर सवार होकर और दिव्य नवीन शरीर को धारण कर शरीर शीघ्र गोलोक को गया ॥२०॥ इस प्रकार श्रीपुरुषोत्तम मास के तपः फल को देखकर भयरहित गोलोक को प्राप्त कर हरि भगवान् के समीप आनन्द प्राप्त हुआ ॥२१॥ उस राजा दृढधन्वा की पतिव्रता स्त्री भी पुरुषोत्तम मास में तप करते हुए अपने पति की सेवा कर पति के लोक

(गोलोक) को गई ॥२२॥ श्रीनारायण बोले—हे नारद ! इस समय एक जिह्वा होने से मैं पुरुषोत्तम मास का क्या वर्णन करूँ। हे नारद ! इस पृथिवी तल में पुरुषोत्तम मास के समान कुछ भी नहीं है ॥२३॥ जो फल पुरुषोत्त मास में पुरुषोत्तम के सेवन से प्राप्त होता है वह फल हजार जन्म तपस्या करने पर भी नहीं मिलता ॥२४॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में व्याज से भी किये गये उपवास, दान,

उवाच ॥ वर्णयामि किमद्याहं यदेकरसना मम ॥ पुरुषोत्तमसमं किञ्चिन्नास्ति नारद भूतले ॥२३॥ सहस्रजन्मतप्तेन तपसा तन्न लभ्यते ॥ यत्फलं लभ्यते पुम्भिः पुरुषोत्तमसेवनात् ॥२४॥ व्याजतोऽपि कृते तस्मिन्मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ उपवासेन दानेन स्नानेन च जपादिना ॥२५॥ कोटिजन्मकृतानेकपापराशिर्लयं व्रजेत् ॥ यथा शाखामृगस्याशु त्रिरात्रस्नानमात्रतः ॥२६॥ अजानतोऽपि दुष्टस्य प्राक्तनानां कुकर्मणाम् सञ्चयो विलयं यातो मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥२७॥ सोऽपि दिव्यं वपुर्धृत्वा विमानमधिरुह्य च ॥ अगमद्दिव्यगोलोकं जरामृत्युविवर्जितम् ॥२८॥ अतः श्रेष्ठतमो मासः सर्वेभ्यः पुरुषोत्तमः ॥ दुष्टं शाखामृगं योऽसौ व्याजेनापि हरिं नयेत् ॥२९॥ अहो मूढा न सेवन्ते मासं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ ते धन्याः कृत-

स्नान, जप आदि से ॥२५॥ कोटि जन्म किये गये अनेक पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह पुरुषोत्तम मास में तीन दिन स्नानमात्र से शाखामृग (वानर) अनेक अनेक पापसमूह से शीघ्र मुक्त हो गया ॥२६॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में अज्ञानवश किये गये स्नान से दुष्ट वानर के पूर्वजन्म के कुकर्मों का समूह (पापसमूह) नष्ट हो गया ॥२७॥ वह वानर श्री दिव्य शरीर को धारण कर विमान पर चढ़ कर जरा (वृद्धावस्था) मृत्यु से रहित गोलोक को गया ॥२८॥ इसलिये समस्त मासों में अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास है।

जिस पुरुषोत्तम मास ने व्याज से पुरुषोत्तम मास में किये गये स्नानमात्र से दुष्ट वानर को हरि भगवान् के समीप पहुँचाया ॥२६॥ अहो आश्चर्य है ! ये मूढ़ पुरुष श्रीपुरुषोत्तममास का सेवन नहीं करते हैं। वे धन्य हैं और कृतकृत्य हैं तथा उनका जन्म सफल है ॥३०॥ जो पुरुष श्रीपुरुषोत्तममास का विधि के साथ स्नान, दान, जप, हवन, उपवासपूर्वक सेवन करते हैं ॥३१॥ नारद मुनि बोले— वेद में समस्त अर्थों का साधन करने वाला मनुष्य शरीर कहा गया है। परन्तु यह वानर भी व्याज से पुरुषोत्तम मास का सेवन कर

कृत्यास्ते तेषां च सफलो भवः ॥३०॥ पुरुषोत्तममासं ये सेवन्ते विधिपूर्वकम् ॥ स्नानदान-जपैर्होमैरुपोषणपुरःसरः ॥३१॥ नारद उवाच ॥ सर्वार्थसाधनं वेदे मानुषं जनुरुच्यते ॥ अयं शाखामृगोऽप्यद्धा मुक्तो यद्व्याजसेवनात् ॥३२॥ तद्वदस्व कथामेतां सर्वलोकहिताय मे ॥ कुत्रासौ कृतवान् स्नानं त्रिरात्रं तपसां निधे ॥३३॥ कोऽसौ कपिः किमाहारः कुत्र जातः क चावसत् ॥ व्याजेन तस्य किं पुण्यं जातं श्रीपुरुषोत्तमे ॥३४॥ तत्सर्वं विस्तरेणैव मह्यं शुश्रूषवे वद ॥ तृप्तिर्जायते त्वत्तः शृण्वतो मे कथामृतम् ॥३५॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कश्चित्केरलदेशीयो द्विजः परमलोलुपः ॥ नित्यं धनचये दक्षः सरघेव धनप्रियः ॥३६॥

साक्षात् मुक्त हो गया ॥३२॥ हे तपोनिधे ! समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए मुझसे इस कथा को कहिये। इस वानर ने तीन रात्रि तक स्नान कहाँ पर किया ? ॥३३॥ यह वानर कौन है ? भोजन क्या करता था ? उत्पन्न कहाँ हुआ ? कहाँ रहता था ? और श्रीपुरुषोत्तम मास में व्याज से उसको क्या पुण्य हुआ ? ॥३४॥ यह सब विस्तार से सुनने की इच्छा करने वाले मेरे से कहिये। आपसे कथामृत श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है ॥३५॥ श्रीनारायण बोले—कोई केरल देश का अत्यन्त लालची, सहत की मक्खियों के समान

धन से प्रेम करने वाला, हमेशा धन के सञ्चय करने में तत्पर ब्राह्मण था ॥३६॥ उसी कर्म से लोक में कन्दर्य नाम से प्रसिद्ध था। उसके पिता ने प्रथम उसका नाम चित्रशर्मा रक्खा था ॥३७॥ उस कदर्य ने सुन्दर अन्न, सुन्दर वस्त्र का उपभोग नहीं किया। उस कुबुद्धि ने स्वाहा (अग्नि में आहुति) स्वाधा (पितरों का श्राद्ध) भी नहीं किया ॥३८॥ यश के लिये कुछ नहीं किया और पोष्यवर्ग

लोके कदर्य इत्याख्यं गतस्तेनैव कर्मणा ॥ चित्रशर्मा पुरा नाम तस्यासीत्पितृकल्पितम् ॥३७॥ सदन्नं च सुवस्त्रं च न भुक्तं तेन कुत्रचित् ॥ न स्वाहा न स्वधा वापि कृता तेन कुबुद्धिना ॥३८॥ यशोऽर्थें न कृतं किञ्चित्पोष्यवर्गो न पोषितः। सर्वं भूमिगतं चक्रे धनमन्यायसञ्चितम् ॥३९॥ न माघे तिलदानं च कृतं तेन कदाचन ॥ कार्तिके दीपदानं च ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥४०॥ वैशाखे धान्यदानं च व्यतीपाते च काञ्चनम् ॥ वैधृतौ राजतं दानं सर्वदानान्यमूनि च ॥४१॥ रविसंक्रमणे काले न दत्तानि कदाचन ॥ चन्द्र-सूर्योपरागे च न जप्तं न हुतं क्वचित् ॥४२॥ अवीवदद्दीनवाचं सर्वत्राश्रुपरिप्लुतः ॥ वर्ष-वातातपक्लिष्टः कृशः श्यामकलेवरः ॥४३॥ चचार धनलोभेन मूढधीर्भूतले सदा ॥

(आश्रित वर्ग) का पोषण नहीं किया। अन्याय से धन को इकट्ठा कर पृथिवी में गाड़ दिया ॥३९॥ माघमास में उसने कभी तिलदान नहीं किया। कार्तिक मास में दीपदान और ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया ॥४०॥ वैशाख मास में धान्य (चावल) का दान नहीं किया। वैधृति योग में चाँदी दान नहीं किया और ये सब दान ॥४१॥ कभी सूर्यसंक्रान्ति काल में नहीं दिया। चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहण के समय न जप किया और न अग्नि में आहुति दी ॥४२॥ सर्वत्र नेत्रों में आँसू भरकर दीन वचनों को कहा करता था। वर्षा, वायु,

आतप से दुःखित, दुबला, काला शरीर का था ॥४३॥ हमेशा धन के लोभ से पृथिवी पर मूढ़ घूमा करता था। "कोई भी इस पामर को कुछ दे दे"। इस तरह बार बार कहता हुआ ॥४३॥ गौ के दोहन समय तक कहीं भी ठहरने में असमर्थ था। लोक के प्राणियों के धिक्कारने से जला हुआ और उद्विग्न मन होकर घूमता था ॥४५॥ उसका मित्र कोई वनेचर वाटिका (बगीचा) का मालिक था

कोऽपि यच्छतु यत्किञ्चित्पामराय मुहुर्वदन् ॥४४॥ स गोदोहनमात्रं हि कुत्रापि स्थातु-मक्षमः ॥ लोकधिकारसंदग्धो बभ्रामोद्विग्नमानसः ॥४५॥ तन्मित्रं वाटिकानाथः कश्चिदा-सीद्वनेचरः ॥ सतं निवेदयामास स्वदुःखं संरुदन्मुहुः ॥४६॥ तिरस्कुर्वन्ति मां नित्यं पुट-भेदनवासिनः ॥ अतस्तत्र मया स्थातुं न शक्यं पुटभेदने ॥४७॥ इत्येवं वदतस्तस्य कदर्यस्य द्विजन्मनः ॥ अतिदीनतरां वाचमाकर्ण्य कृपयाऽप्लुतः ॥४८॥ मालाकरः प्रपन्नं तं दीनं मत्वाऽकरोद्दयाम् ॥ हे कदर्य त्वमत्रैव वाटिकायां वसाऽधुना ॥४९॥ मालाकारवचः श्रुत्वा कदर्यः सर्वनागरैः ॥ तिरस्कृतःस तद्वाटीमध्युवास मुदा युतः ॥५०॥ नित्यं तन्निकटस्थायी तदाज्ञापरिपालकः ॥ तेन वाटीपतिस्तस्मिन्विश्वासमकरोद्दृढम् ॥५१॥ अतिविश्वस्तचित्तेन

उस कदर्य ने उस माली से बार बार रोदन करता हुआ अपने दुःख को कहा ॥४६॥ नगर के वासी मेरा नित्य तिरस्कार करते हैं इस लिए उस नगर में मैं नहीं रह सकता हूँ ॥४७॥ इस प्रकार कहते हुए उस कदर्य ब्राह्मण के अत्यन्त दीन वचन को सुनकर माली दयार्द्र चित्त हो गया ॥४८॥ शरण में आये हुए उस दीन ब्राह्मण पर माली ने दया कर कहा कि हे कदर्य! इस समय तुम इसी वाटिका में बास करो ॥४९॥ नगरवासियों से तिरस्कृत हुआ कदर्य ने उस माली के वचन को सुन प्रसन्न होकर उस वाटिका में वास

किया ॥५०॥ नित्य उस माली के पास वास करता और उसकी आज्ञा का पालन करता था इस लिए उस कदर्य में माली ने दृढ़ विश्वास किया ॥५१॥ और उस कदर्य में अत्यन्त विश्वास होने के कारण वाटिकापति (माली) ने उस कदर्य ब्राह्मण को अपने से छोटा बगीचे का माली बना दिया ॥५२॥ इसके बाद उस माली ने यह निश्चय किया कि यह कदर्य हमारा आदमी है इस लिए वाटिका की चिन्ता को छोड़ कर राजमन्दिर का सेवन किया ॥५३॥ राजा के यहाँ उस माली को बहुत कार्य रहता था इसलिए और

तस्मिन् स वाटिकापतिः ॥ तमेवाचोकरद्धिप्रं स्वकल्पं वाटिकापतिम् ॥५२॥ ततः सर्वात्मभावेन ममायमिति निश्चयात् ॥ विहाय वाटिकाचिन्तां सिषेवे राजमन्दिरम् ॥५३॥ राजद्वारे सदा कार्यं तस्यात्यन्तमबीभवत् ॥ पराधीनतया चासौ वाटिकां न जगामह ॥५४॥ तत्फलानि कदर्यस्तु जघास निभृतं मुदा ॥ अक्षीणतावशिष्टानि लोभेनातीव दुर्बलः ॥५५॥ अगृह्णाद्द्रविणं तज्जं सव स्वयमशङ्कितः ॥ यदाऽपृच्छद्वनाधीशस्तदग्रेऽवीवदन्मृषा ॥५६॥ भ्रामंभ्रामं च नगरं याचंयाचं च भक्षकम् ॥ घासंघासं दिवारात्रौ परिचर्यामि ते वनम् ॥५७॥ तथाप्यस्य फलान्याशन्मासं गच्छन्ति पक्षिणः ॥ पश्याश्नन्तो मया केचि-

पराधीनता वश वाटिका को नहीं गया ॥५४॥ वह अत्यन्त दुर्बल कदर्य उस वाटिका के फलों को आनन्द से अच्छी तरह भोजन करता और लोभवश बचे हुए फलों को बेच लेता था ॥५५॥ निर्भय होकर उस बगीचा के फलों को बेचकर सब धन स्वयं ले लेता था जब माली पूछता था तो उसके सामने झूठ बोलता था कि ॥५६॥ नगर में फिरता फिरता, भिक्षा माँगता २ और खाता खाता तुम्हारे वन की रक्षा करता हूँ ॥५७॥ फिर भी पक्षीगण इस बगीचे के फलों को महीनों में आकर खा जाते हैं। देखिये मैंने कुछ खाते हुए

पक्षियों को अच्छी तरह से मार डाला है ।।५८।। यहाँ चारों तरफ उन पक्षियों के मांस और पङ्ख गिरे पड़े हैं उन मांस के टुकड़ों को और पङ्खों को देखकर उसका अत्यन्त विश्वास कर माली चला गया ।।५९।। इस प्रकार अत्यन्त जर्जर उस दुष्ट कदर्य के वास करते ८७ सत्तासी वर्ष बीत गये । बाद ।।६०।। यह मूढ़ वहाँ ही मर गया और उनको अग्नि और काष्ठ भी नहीं मिला । विना भोगे पापों

न्नाशिताः खचरा भृशम् ।।५८।। तेषां मांसानि पक्षाणि पतितानीह सर्वतः ।। तद्दृष्ट्वाऽतीव विश्वस्य जगाम वाटिकापतिः ।।५९।। एवं प्रवर्तमानस्य जग्मुर्वर्षाणि दुर्मतेः ।। सप्ताशीतिः कदर्यस्य जराजर्जरितस्ततः ।।६०।। ममार मूढधीस्तत्र नैवाप वह्निदारुणी ।। नाभुक्तं क्षीयते पापमिति वेदविदोऽवदन् ।।६१।। तस्माद्धाहा प्रकुर्वाणो मुद्गराघातपीडितः ।। अजीगमन्महामार्गं कृच्छ्रेणातिविभीषणम् ।।६२।। स्मरन् पूर्वकृतं कर्म प्रलपन् बुद्बुदाक्षरम् ।। अहो मे पश्यताज्ञानं कदर्यस्य च दुर्मतेः ।।६३।। आसाद्य मानुषं देहं दुर्लभं त्रिदशैरपि ।। खण्डेऽस्मिन् भारते पुण्ये कृष्णसारमृगान्विते ।।६४।। किं कृतं धनलोभेन व्यर्थं नीतं जनुर्मया ।। तद्धनं तु पराधीनं चिरकालार्जितं मया ।।६५।। किं करोमि

का नाश नहीं होता है ऐसा वेद के जाननेवाले कहते हैं ।।६१।। इस कारण हाहाकार करता हुआ मुद्गर के आघात से पीड़ित कष्ट के साथ अत्यन्त भयङ्कर दीर्घ मार्ग को गया ।।६२।। पूर्व में किये हुए कर्मों का स्मरण करता हुआ और प्रलाप करता हुआ तथा बुद्बुद (अस्पष्ट) अक्षरों में कहता हुआ कि अहो! आश्चर्य है। इस दुष्ट कदर्य के अज्ञान को देखिये ।।६३।। कृष्णसार (मृगविशेष) से युक्त पवित्र इस भारतखण्ड में देवताओं को भी दुर्लभ मनुष्य शरीर को प्राप्त कर ।।६४।। धन के लोभ से क्या किया? अर्थात् कुछ

इस समय कालपाश में बँधा पराधीन होकर क्या करूँ ? प्रथम मनुष्य शरीर को प्राप्त कर कुछ भी पुण्यकर्म नहीं किया ॥६६॥ न तो दान दिया, न अग्नि में आहुति दी, न हिमालय को गुफा में जाकर तपस्या की, मकर के सूर्य होने पर माघ मास में न गङ्गा के जल को ही सेवन किया ॥६७॥ पुरुषोत्तम मास के अन्त में तीन दिन उपवास भी नहीं किया और कातिक मास में तारागण के रहते प्रातः

पराधीनः कालपाशावृतोऽधुना ॥ मानुषं जनुरासाद्य न किञ्चित कृतवान् शुभम् ॥६६॥
न दत्तं न हुतं वह्नौ न तप्तं हिमगह्वरे ॥ न गाङ्गं सेवितं तोयं माघे मकरगे रवौ ॥६७॥
उपवासत्रयं चान्ते न कृतं पुरुषोत्तमे ॥ न कृतं कार्तिके प्रातः स्नानं संतारकागणम् ॥६८॥
न पुष्टश्च मया देहो मानुषः पुरुषार्थदः ॥ अहो मे सञ्चितं द्रव्यं स्थितं भूमौ निरर्थकम्
॥६९॥ जीवो जीवनपर्यन्तं क्लेशितो दुष्टबुद्धिना ॥ कदाचिज्जाठरो वह्निर्नान्नैर्निर्वापितो
मया ॥७०॥ नापि सद्वसनाच्छन्नः स्वदेहः पर्वणि क्वचित् ॥ न ज्ञातयो बान्धवाश्चस्वजनाः
स्वसृजा अपि ॥७१॥ जामाता च सुता वापि पिता माताऽनुजास्तथा ॥ पतिव्रतापि

स्नान नहीं किया ॥६८॥ मैंने पुरुषार्थ को देनेवाले मनुष्य शरीर को भी पुष्ट नहीं किया । अहो ! आश्चर्य है । मेरा सञ्चित धन पृथिवी में निरर्थक गड़ा रह गया ॥ ६॥ दुष्टबुद्धि होने के कारण जीवन पर्यन्त जीव को कष्ट दिया और मैंने जठराग्नि को भी कभी अन्न से तृप्त नहीं किया ॥७०॥ किसी पर्व के समय भी उत्तम वस्त्र से शरीर का आच्छादित नहीं किया । न तो जाति के लोगों को, न बान्धवों को, न स्वजनों को, न बहिनों को, ॥७१॥ न दामाद को, न कन्या को, न पिता मा छोटे भाई को, न पतिव्रता स्त्री को न ब्राह्मणों को

प्रसन्न किया ॥७२॥ इन लोगों को एक बार भी मिष्टान्न से कभी तृप्त नहीं किया इस प्रकार विलाप करते हुए उस कदर्य का यमदूत यमराज के समीप ले गये ॥७३॥ उसको देखकर चित्रगुप्त ने शुभाशुभ (पाप पुण्य) को देखा और अपने स्वामी धर्मराज से कहा कि हे महाराज ! यह ब्राह्मणों में अधम कदर्य हैं ॥७४॥ इस दुष्ट धन के लोभी कदर्य का कुछ भी पुण्य नहीं है। वाटिका में रह कर

गृहिणी ब्राह्मणा नैव तोषिताः ॥७२॥ मिष्टान्नरकवारं च तापता न मया क्वचित् ॥ एवं विलपमानं तं निन्युः कीनाशसीन्नीधम् ॥७३॥ तं दृष्ट्वा चित्रगुप्तस्तु विलोक्यतच्छु-भाशुभम् ॥ अवोचत् स्वामिनं धर्मं कदर्योऽयं द्विजाधमः ॥७४॥ न किञ्चित् सुकृतं त्वस्य धनलुब्धस्य दुर्मतेः ॥ असावत्राकरत् पापं पुष्कलं वाटिकास्थितः ॥७५॥ अचूचुरत् फलान्यद्धा विश्वस्तो वाटिकापतः ॥ तता जघास तान्यव परिपक्कानि यानि च ॥७६॥ अक्रोणादवशिष्टानि धनलोभेन दुर्मतिः ॥ फलचौर्यकृतं पापं परम् विश्वासघातजम् ॥७७॥ एतत्पापद्वयं चास्मिन्नत्युग्रं वर्तते प्रभो ॥ अन्यान्यपि च पापानि सन्त्यस्मिन् विविधानि च ॥७८॥ नारद उवाच ॥ इत्थं निशम्य विधिनन्दनचित्रगुप्तवाक्यं क्रुधा प्रबलयाप्लुत-

इसने बहुत पाप किया है ॥७५॥ वाटिकापति (माली) का विश्वासपात्र बन कर साक्षात् स्वयं फलों को चोराया और जो जो पके हुए फल थे उनको खाया ॥७६॥ और जो खाने से बचे हुए फल थे उनको उस दुष्ट ने धन के लोभ से बेच डाला। एक फलों के चोरी का पाप, दूसरा विश्वासघात का पाप ॥७७॥ हे प्रभो ! ये दो पाप इस कदर्य में बहुत जबर हैं और भी इसमें कई प्रकार के अनेक पाप हैं ॥७८॥ नारद मुनि बोले—इस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र चित्रगुप्त के वचन को सुनकर अत्यन्त क्रोध से युक्त धर्मराज ने कहा कि यह

कदर्य एक हज़ार वानर योनि में जाय और विश्वासघात का फल इसको बाद होवेगा ॥७९॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तम-मासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कदर्योपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

श्रीनारायण बोले—चित्रगुप्त धर्मराज के वचन को सुन कर अपने भटों से बोले - यह कदर्य प्रथम बहुत समय तक अत्यन्त

धर्मराजः ॥ आहैष यातु कपिजन्मसहस्रकृत्वा विश्वासघातकृतिजं फलमस्य पश्चात् ॥७९॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कदर्योपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

श्रीनारायण उवाच—तन्निशम्य भटानाह चित्रगुप्तश्चिरं भृशम् ॥ पूर्वं लोभाभिभूतोऽयं पश्चाच्चौर्यमचीकरत् ॥१॥ अतः प्रेतत्वमासाद्य पश्चाद्भवतु वानरः ॥ ततश्चाहं प्रदास्यामि वह्वीं नरकयातनाम् ॥२॥ अयमेव क्रमः श्रेयान् धर्मराजगृहे भटाः ॥ इत्येवं चित्रगुप्तेन समादिष्टा विभीषणाः ॥३॥ तथा चक्रुर्भटाः शीघ्रं ताडयन्तश्च तं द्विजम् ॥ प्रेतत्वं प्रापितः पूर्वं कानने विफले द्विजः ॥४॥ निर्जले बाहुकालं च प्रेतयोनिमवाप्य सः ॥ क्षुत्तृड्भ्यां

लोभ से ग्रस्त होकर बाद इसने चोरी किया ॥१॥ इस लिए यह प्रथम प्रेतशरीर को प्राप्त कर बाद वानर शरीर में जाय बाद हम इसको बहुत सी नरकयातना को देंगे ॥२॥ हे भटलोग ! धर्मराज के गृह में यही श्रेष्ठ है। इस प्रकार चित्रगुप्त से आज्ञा प्राप्त होने पर वे भयङ्कर ॥३॥ भटलोगों ने चित्रगुप्त की आज्ञानुसार शीघ्र वैसा ही किया और उस ब्राह्मण को पीटते हुए प्रथम प्रेतशरीर में करके फल रहित वन में रक्खा ॥४॥ वह ब्राह्मण प्रेतयोनि को प्राप्तकर उस निर्जन गहन वन में क्षुधा तृषा से अत्यन्त व्याकुल होकर भ्रमण

करने लगा ॥५॥ प्रेतयोनि में होनेवाले दुःख को भोग कर बाद फलों के चोरी करने से होनेवाली वानर की योनि को गया ॥६॥ सुन्दर शीतल जल और छाया तथा फल पुष्प से युक्त जम्बुखंड (जामुन का वन) के मनोहर दिव्य (सुन्दर) कालञ्जर पर्वत पर ॥७॥ वहाँ इन्द्र से बनाया हुआ उत्तम कुण्ड है। तालाब के सामान पवित्र, सत्पुरुषों से सेवित पापों का नाश करने वाला ॥८॥ देवताओं को भी

ण्थाकुलोऽत्यतं बभ्राम गहने वने ॥५॥ प्रेतयोनिगतं दुःखमनुभूय ततः परम् ॥ फलचौर्यसमुद्भूतां ॥ कपियोनिमजीगमत् ॥६॥ दिव्ये कालञ्जरे शैले जम्बुखण्डमनोहरे ॥ सुशीतलजलच्छाये फलपुष्पसमन्विते ॥७॥ तत्रासीद्देवराजेन निर्मितं कुण्डमुत्तमम् ॥ सरोवरसमं पुण्यं सत्सेव्यं पापनाशनम् ॥८॥ मृगतीर्थमिति ख्यातं सुराणामपि दुर्लभम् ॥ यस्मिन् कृतेन श्राद्धेन पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥९॥ तत्र दैत्यभयाद्देवा मृगा भूत्वा निरन्तरम् ॥ अभिसस्नुर्निरातङ्का मृगतीर्थसमो विदुः ॥१०॥ तत्रायं प्रथमं जन्म कापेयं लब्धवान् द्विजः ॥ फलचौर्यकृतात् पापादासाद्य मानुषा तनुम् ॥११॥ नारद उवाच ॥ त्रैलोक्यपावने रम्ये मृगतीर्थे कथं कपिः ॥ आवासमकरोद्दुष्टः पापकोटिसमन्वितः ॥१२॥ छिन्धि मे

दुर्लभ मृगतीर्थ नाम से प्रसिद्ध था जिसमें श्राद्ध करने से पितर लोग सद्गति को चले जाते हैं ॥९॥ वहाँ पर देवता लोग दैत्यों के भय से मृग होकर निरन्तर निर्भय स्नान करने लगे इसलिए विद्वान् लोग उस कुण्ड को मृगतीर्थ कहते हैं ॥१०॥ मनुष्य शरीर को प्राप्त कर यह ब्राह्मण वहाँ पर फलों के चोरी करने के पाप से प्रथम वानर शरीर को प्राप्त करता हुआ ॥११॥ नारदमुनि बोले—त्रैलोक्य को पवित्र करने वाले रमणीय मृगतीर्थ में पाप कोटि से युक्त वह दुष्ट वानर कैसे वास करता हुआ ? ॥१२॥ हे नाथ ! हे तपोधन ! मेरे

मन के सन्देह को काटो। क्योंकि आपके समान गुरुजनों का अपने शिष्यों के विषय में कभी भी गोप्य नहीं होता है ॥१३॥ सूतजी बोले—हे विप्रलोग! इस प्रकार नारद मुनि से प्रेरित होने पर अत्यन्त प्रसन्न तपोनिधि नारायण भगवान् नारद मुनि का सत्कार करते हुए बोले ॥१४॥ श्रीनारायण बोले—कोई चित्रकुण्डल नाम से महान् वैश्य था। पतिव्रत धर्म में परायण तारका नाम की उस वैश्य की

संशयं नाथ तपोधन! मनोगतम् ॥ मत्तादृशां न गोप्यं हि स्वशिष्येषु कदाचन ॥१३॥
सूत उवाच ॥ एवं सन्नोदितो विप्रा नारदेन तपोनिधिः उवाच परमप्रीतः सत्कुर्वन्नारदं
मुनिम् ॥१४॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कश्चिद्वैश्यो महानासीन्नाम्ना वै चित्रकुण्डलः ॥
तत्पत्नी तारका नाम्नी पतिव्रत्यपरायणा ॥१५॥ तावुभौ चक्रतुर्भक्त्या पुण्यं श्रीपुरुषोत्तमम् ॥
तयोः कृतव्रतोर्मासो गतः श्रीपुरुषोत्तमः ॥१६॥ चरमेऽहनि सम्प्राप्ते उद्यापनमथाकरोत् ॥
सपत्नीको मुदा युक्तः श्रद्धया चित्रकुण्डलः ॥१७॥ द्विजानाकारयामास वेदवेदाङ्गपारगान् ॥
उद्यापनविधिं कर्तुं सपत्नीकान् गुणान्वितान् ॥१८॥ कदर्योऽप्यगमत्तत्र धनलोभेन नारद ॥
उद्यापनविधौ पूर्णे सञ्जाते चित्रकुण्डलः ॥१९॥ अत्युग्रदानैस्तान् विप्रान् सपत्नी-

स्त्री थी ॥१५॥ उन दोनों ने भक्ति से पवित्र श्रीपुरुषोत्तम मास का व्रत किया। जब श्रीपुरुषोत्तम मास व्रत करते उन दोनों का श्रीपुरुषोत्तम बीत गया ॥१६॥ तब आखीर वाले दिन के आने पर स्त्री के साथ हर्ष से युक्त श्रद्धा पूर्वक चित्रकुण्डल ने उद्यापन किया ॥१७॥ पुरुषोत्तममास के उद्यापन विधि करने के लिये वेद और वेदाङ्ग को जानने वाले गुणी सपत्नीक ब्राह्मणों को बुलाया ॥१८॥ हे नारद! वहाँ पर धन के लोभ से कदर्य भी आया। उद्यापन विधि के पूर्ण होने पर चित्रकुण्डल ॥१९॥ बहुत बड़े दानों से उन सपत्नीक ब्राह्मणों

को प्रसन्न किया। उन समस्त ब्राह्मणों के प्रसन्न होने पर भूयसी दक्षिणा को दिया ॥२०॥ उस दी हुई भूयसी दक्षिणा से प्रसन्न अन्य सब ब्राह्मण गृह को गये परन्तु अत्यन्त लोभी कदर्य उस वैश्य चित्रकुण्डल के सामने रोता हुआ खड़ा हो गया ॥२१॥ और विनय से नम्र होकर गद्गद वाणी से बोला। हे चित्रकुण्डल! हे वैश्येश! हे भगवद्भक्ति के भासुर (सूर्य)! ॥२२॥ आपने पुरुषोत्तम मास का

कानतोषयत् ॥ तुष्टेषु तेषु सर्वेषु भूयसीं दक्षिणामदात् ॥२०॥ तद्दत्तभूयसीतुष्टा अन्ये विप्रा गृहान् ययुः ॥ अतिलुब्धः कदर्यस्तु रुदंस्तस्थौ तदग्रतः ॥२१॥ विनयावनतो भूत्वा सगद्गदमुवाच ह ॥ चित्रकुण्डल वैश्येश भगद्भक्तिभासुर ॥२२॥ पुरुषोत्तमव्रतं सम्यक् भवता विधिना कृतम् ॥ न तथा च कृतं केन कुत्रापि पृथिवीतले ॥२३॥ भवानद्य कृतार्थोऽसि भाग्यवानसि सर्वथा ॥ त्वत्त्वया परया भक्त्या सेवितः पुरुषोत्तमः ॥२४॥ धन्यस्तव पिता धन्या माता च पतिदेवता ॥ याभ्यामुत्पादितः पुत्रस्त्वादृशो हरिवल्लभः ॥२५॥ धन्याद्धन्यतरश्चायं मासः श्रीपुरुषोत्तमः यत्सेवनादवाप्नोति ह्यैहिका-मुष्मिकं फलम् ॥२६॥ दृष्ट्वा हि तावकीं पूजां चकितोऽहं विशां पते ॥ अहो त्वया महत्कर्म

व्रत विधि से अच्छी तरह किया इस तरह इस पृथिवी तल में कहीं पर किसी ने नहीं किया ॥२३॥ आज आप कृतार्थ हो, सर्वथा भाग्यवान हो जो तुमने परम भक्ति से पुरुषोत्तम भगवान् का सेवन किया ॥२४॥ तुम्हारे पिता धन्य हैं और तुम्हारी पतिदेवता (पतिव्रता) माता धन्य हैं जिन दोनों ने तुम्हारे समान हरिवल्लभ पुत्र को पैदा किया ॥२५॥ यह पुरुषोत्तममास धन्य से भी धन्य है जिसके सेवन से मनुष्य इस लोक के और परलोक के फल को प्राप्त करता है ॥२६॥ हे विशांपते! तुम्हारी इस पूजा को देख कर

मैं चकित हो गया । अहो ! तुमने बहुत बड़ा काम किया इसमें सन्देह नहीं है ॥२७॥ हर्ष से दूसरे ब्राह्मणों को भी बहुत सा धन दिया । हे भूरिद ! भाग्यहीन मेरे लिये क्यों नहीं देते हो ॥२८॥ इस प्रकार कदर्य के कहने पर चित्रकुण्डल वैश्य ने कदर्य को धन दिया । कदर्य ने धन को लेकर प्रसन्नता से धन को जमीन में गाड़ दिया ॥२९॥ वहाँ पर कदर्य ने श्रीपुरुषोत्तम की बड़ी पूजा देखी

कृतमेतन्नसंशयः ॥२७॥ अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च धनं दत्तं बृहन्मुदा ॥ न ददासि कथं मह्यं भाग्यहीनाय भूरिद ॥२८॥ इति विज्ञापितस्तेन तस्मै धनमदादसौ ॥ तत्गृहीत्वाऽकरोद्विप्रो धनं भूमिगतं मुदा ॥२९॥ तत्रानेन महापूजा दृष्टा श्रीपौरुषोत्तमी ॥ पुरुषोत्तममासश्च धनलोभेन संस्तुतः ॥३०॥ पूजादर्शनमाहात्म्यात् पुरुषोत्तमसंस्तवात् ॥ धनलोभकृताच्चापि मृगतीर्थं मुपागतः ॥३१॥ सूत उवाच॥ दर्शनात् स्तवनाच्चापि धनलोभकृतादपि ॥ दुष्टशाखामृगस्यापि जातं सत्तीर्थसेवनम्॥३२॥ किं पुनः श्रद्धया कर्तुर्दर्शनस्तवने द्विजाः ॥ पुरुषोत्तमदेवस्य सपत्नीकस्य सादरम् ॥३३॥ नारद उवाच॥ सुशीतलजले ब्रह्मन् स्निग्ध-च्छाये मनोहरे ॥ सद्वृक्षमण्डितेऽरण्ये तत्स्थितेः कारणं वद॥३४॥ श्रीनारायण उवाच ॥

और धन के लोभ से श्रीपुरुषोत्तम मास की प्रशंसा की ॥३०॥ पूजा के दर्शन माहात्म्य से और पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति से तथा धन का लोभ होने पर भी मृगतीर्थ को आया ॥३१॥ सूतजी बोले—दर्शन से, स्तुति से, धन के लोभ करने से भी दुष्ट वानर को उत्तम तीर्थ का सेवन हुआ ॥३२॥ हे द्विजलोग ! श्रद्धा से आदर पूर्वक पुरुषोत्तम देव के दर्शन स्तुति में तत्पर सपत्नीक के पुण्य को क्या कहना है ? ॥३३॥ नारद मुनि बोले हे ब्रह्मन् ! सुन्दर वृक्षों से शोभित, सुन्दर शीतल जल वाले, मनोहर घनी छायावाले वन में उसके

रहने का कारण क्या है ? सो आप कहिये ॥३४॥ श्रीनारायण बोले—हे नारद ! हे अनघ ! तुम सुनो, सुनने की इच्छा करने वाले तुमको मैं कहूँगा। इसमें कुछ कारण है जिसके श्रवण से पापों का नाश हो जाता है ॥३५॥ जब समस्त अर्थ और फलों के दाता दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी ने समुद्र में सेतु बाँध कर दुष्ट रावण का वध किया ॥३६॥ उस रामचन्द्रजी ने विभीषण को छोड़कर बाकी समस्त

शृणु नारद वक्ष्यामि तुभ्यं शुश्रूषवेऽनघ ॥ अत्रास्ति कारणं किञ्चिच्छ्रवणात्पापनाशनम् ॥३५॥ यदा दाशरथी रामः सर्वार्थफलदायकः ॥ हतवान् रावणं दुष्टं बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥३६॥ विभीषणादृते तेन राक्षसा नावशेषिताः ॥ ततो वह्निविध्यासा जानकी स्वीकृताऽधुना ॥३७॥ चतुर्मुखमहेशानपुरन्दरपुरःसरैः ॥ दशवक्त्रवधप्रीतैर्हे राम त्वं वरं वृणु ॥३८॥ इत्युक्तेऽब्रवीद्रामो भक्तानामभयङ्करः ॥ सुराः शृणुत मद्वाक्यं यदि देयो वरोऽधुना ॥३९॥ अत्र ये वानराः शूरा रक्षोभिर्निहताश्च ते ॥ सञ्जीवयत तानाशु सुधावृष्ट्या ममाऽऽज्ञया ॥४०॥ तथेत्युक्त्वा सुधावृष्ट्या वानरान् समजीवयन् ॥ चतुर्मुखमहेशानपुरन्दरपुरःसराः ॥४१॥ ततः सञ्जीविताः सर्वे वानरा जयशालिनः ॥ अदुढौकन् राम-

राक्षसों का वध किया किसी को नहीं छोड़ा। बाद अग्नि में परीक्षा कर सीता ग्रहण किया ॥३७॥ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता रावण के वध से प्रसन्न होकर बोले कि हे राम ! तुम वर को माँगो ॥३८॥ ऐसा कहने पर भक्तों का अभय करनेवाले रामचन्द्र बोले—हे देवता लोग ! यदि इस समय वरदान देना है तो सुनो ॥३९॥ यहाँ पर राक्षसों से जो शूर वानर मारे गये हैं उनको हमारी आज्ञा से अमृतवृष्टि करके शीघ्र जिला दो ॥४०॥ तथास्तु (वैसा ही हो) यह कह कर ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि देवता अमृत की वृष्टि

करके वानरों को जिला दिया ॥४१॥ तदन्तर वे जयशाली समस्त वानर जीवित हो गये और चिरकाल जीवित हो गये और काल तक शयन कर उठे हुए के समान देखने में आये। बाद रामचन्द्र ॥४२॥ चारो तरफ बैठे हुए समस्त वानरों के साथ पुष्पक विमान पर सवार होकर प्रसन्न मुखकमल वाले सपत्नीक रामचन्द्र बोले ॥४३॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे सुग्रीव! हे हनुमान! हे तारात्मज! हे जामवन्त! वानरों के साथ आप लोगों ने मित्र का समस्त कार्य किया ॥४४॥ आप लोग उन वानरों को आज्ञा दो। जिससे यहाँ से

भद्रे चिरं सुप्तोत्थिता इव ॥४२॥ अथ पुष्पकमारुह्य वानरान् सर्वतः स्थितान् ॥ अजी-गदत् सपत्नीकः प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥४३॥ श्रीराम उवाच ॥ हे सुग्रीवहनूमन्तौ हे तारात्मज-जाम्बवन् ॥ मित्रकार्यं कृतं सर्वं भवद्भिः सह वानरैः ॥४४॥ आज्ञापयन्तु तान् सर्वान् भवन्तो वानरानितः ॥ भवदाज्ञापिताः सर्वे यथेष्टं यान्तु ते यतः ॥४५॥ यत्र यत्र वने एते मामका दीर्घजीविनः ॥ वसन्ति वानरास्तत्र वृक्षाः पुष्पफलान्विताः ॥४६॥ नद्यो मृष्टजला वाथ शीतलं सुभगं सरः ॥ न केऽपि धर्षयिष्यन्ति सर्वे यान्तु ममाऽऽज्ञया ॥४७॥ अतो रामप्रभावेण यतोवानर जातयः ॥ तत्र नद्यो मृष्टाजलाः सरश्च सुभगं वने ॥४८॥ लसत्फला महावृक्षाः पुष्पवल्लवसंयुताः ॥ परन्तु सुखदुःखानि प्राक्तनादृष्टजानि च ॥४९॥

आप लोगों की आज्ञा पाकर समस्त वानर यथेष्ट जाँय ॥४५॥ हमारे ये दीर्घजीवी वानर जहाँ जहाँ वास करते हैं वहाँ के वृक्ष पुष्प फलों से युक्त हो जायँगे ॥४६॥ नदी मीठे जलवाली होंगी, शीतल जल वाले सुन्दर तालाब होंगे, इनको कोई भी मना नहीं करेगा। हमारी आज्ञा से समस्त वानर जाँय ॥४७॥ इसलिये रामचन्द्र के प्रभाव से जहाँ वानर जाति के वास करते हैं वहाँ बन में मीठे जलवाली नदी और सुन्दर तालाब होते हैं ॥४८॥ पुष्प पत्र से युक्त, सुन्दर फलवाले बहुत से वृक्ष हैं परन्तु अदृष्ट से होने वाले पूर्वजन्म के सुख दुःख

॥४९॥ जहाँ जहाँ प्राणी वास करता है वहाँ वहाँ अवश्य जाते हैं क्योंकि बिना भोगे कर्म का नाश नहीं है। ऐसी वेद की आज्ञा है ।५०॥ श्रीनारायण बोले—बाद वहाँ पर वह लालची वानर पर्वत के समान बढ़ता हुआ भूख प्यास से युक्त (पीड़ित) वन में विचरने लगा ॥५१॥ उसके मुख में जल से पित्त के प्रकोप से उत्पन्न पीड़ा हुई जिस पीड़ा से मुख के घावों से दिन रात रुधिर बहा करता है ॥५२॥ अत्यन्त पीड़ा के कारण कुछ भी भोजन नहीं कर सकता था और वह वानर चञ्चलतावश वृक्षों में से उत्तम फलों को तोड़कर

यत्र यत्र वसेज्जन्तुस्तत्र तत्रोपयान्ति हि ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म इति वेदानुशासनम् ॥५०॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथासौ वानरस्तत्र ववृधे पर्वतोपमः ॥ बृहत्क्षुत्तृट्समायुक्तो लोलुपी व्यचरद्वने ॥५१॥ जन्मत्तस्तस्य वक्त्रेऽभूत् पीडा पित्तसमुद्भवा ॥ ययाऽसृक् च्यवते वक्त्रव्रणतश्च दिवानिशम् ॥५२॥ अत्यन्तवेदनाविष्टो नात्तुं शक्तस्तु किञ्चन ॥ स च वानरचापल्याद्द्रुमेभ्यः सत्फलानि च ॥५३॥ लुनीय वदनाभ्याशे नीत्वा तत्याज भूरिशः ॥ नैकत्र पीडया स्थातुं शक्तोऽसौ वानरः क्वचित् ॥५४॥ वृक्षाद्वृक्षान्तरं गच्छन् मेने मृत्युं सुखावहम् ॥ कदाचिदपतद्भूमौ विललापातिदुःखितः ॥५५॥ अरूरुदद्भग्नगात्रो नीरभ्रष्टो यथा झषः ॥ असौ क्षुत्तृट्समाविष्टः श्लथद्देहो गलन्मुखः ॥५६॥ पेतुर्दन्तास्तथा

॥५३॥ मुख के पास ले जाकर बहुत से फलों को जमीन में गिरा दिया। वहाँ वानर पीड़ा के कारण कहीं भी एक स्थान में बैठने में समर्थ नहीं था ॥५४॥ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाता हुआ मृत्यु को सुख देनेवाली मानने लगा। किसी समय पृथिवी पर गिर पड़ा और अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगा ॥५५॥ शरीर के टूट जाने से जलहीन मछली के समान तड़पड़ाता हुआ रोदन करने लगा।

और अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगा। ...

शिथिल शरीर वाला, गलित मुख वाला वह वानर भूख प्यास से पीड़ित हो गया ॥५६॥ उसके समस्त दाँत मुख के व्रण रोग से पीड़ित होकर गिर गये। पूर्व जन्म के कृतपाप से इस प्रकार दुःख को प्राप्त भया ।५७॥ इस प्रकार नित्यप्रति निराहार रहते हुए वानर को दैवयोग से श्रीपुरुषोत्तम मास आया ॥५८॥ उस पुरुषोत्तम मास में भी उसी प्रकार शीत वात आदि से पीड़ित रहा किसी समय बहुल पक्ष में गहन वन में विचरता हुआ ॥५९॥ प्यासा वानर कुण्ड के पास जलपान करने को समर्थ नहीं हुआ, भूख से युक्त भी चपलता

सर्वे भ्रणरोकेण पीडिताः ॥ पूर्वजन्मकृतात् पापादेवं दुःखमजीगमत् ॥५७॥ एवं प्रवर्त्तमानस्य निराहारस्य नित्यशः ॥ दैवयोगात् समागच्छन्मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥५८॥ तस्मिन्नपि तथैवास्ते शीतवातादिपीडितः ॥ कदाचिद्बहुले पक्षे विचरन् गहने वने ॥५९॥ तृषितः कुण्डनिकटे नाशक्नोत् पातुममृतम् ॥ क्षुधाविष्टोऽपि चापल्यात्तत्रोच्चैर्वृक्षमारुरुहत् ॥६०॥ वृक्षाद्वृक्षान्तरं गच्छन्मध्ये कुण्डमपीपतत् ॥ स चिराय निराहारः श्लथदिन्द्रियजर्जरः ॥६१॥ निर्बलः शिथिलप्राणः कुण्डप्रान्तमुपाश्रितः ॥ एवं दिनानि चत्वारि दशमीदिनतः कपेः ॥६२॥ गतानि लुण्ठतः कुण्डे मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ पञ्चमे दिवसे प्राप्ते मध्यंदिनगते रवौ ॥६३॥ व्यसुः पपात तत्तीर्थे तोयक्लिन्नवपुः कपिः ॥ स तं देहं

से वहाँ ऊँचे वृक्ष के ऊपर चढ़ गया ॥६०॥ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाता हुआ कुण्ड के बीच में गिर गया। बहुत दिनों से निराहार शिथिल इन्द्रियवाला जर्जर ॥६१॥ निर्बल, शिथिल प्राणवाला कुण्ड के तटभाग में आया इस प्रकार दशमी तिथि से चार दिन तक वानर को ॥६२॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में उस कुण्ड में लोट पोट करते बीत गये। पाँचवें दिन के आने पर मध्याह्न काल में ॥६३॥ उस

तीर्थ में जल से भीगा शरीरवाला वानर प्राण से रहित होकर गिर गया और वह उस देह को छोड़ कर पापों से रहित होकर ॥६४॥ तत्काल दिव्य आभूषणों से भूषित दिव्य देह को प्राप्त किया जो कि नील कमल के दल के समान श्यामवर्ण, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर ॥६५॥ चमकते हुए रत्नों से जटित कीरिटधारी, सुन्दर शोभमान, मत्स्यकुण्डल वाला, शोभमान, पवित्र पीतवस्त्रधारी, कमर में रत्नों जटित मेखला (करधनो) वाला ॥६६॥ शोभमान बाजूबन्त, कङ्कण, अँगूठी, हार से शोभित, नीलवर्ण के टेढ़े चिकने बालों

समुत्सृज्य विनिर्धूतमलाशयः ॥६४॥ सद्यो दिव्यवपुः प्राप दिव्योभरणभूषितम् ॥ इन्दीवरदलश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥६५॥ स्फुरद्रत्नकिरीटं च सुचरुझषकुण्डलम् ॥ लसत्पीतपटं पुण्यं सद्रत्नकटिमेखलम् ॥६६॥ लसत्केयूरवलयं मुद्रिकाहारशोभितम् ॥ नीलकुञ्चितस्निग्धचिकुरावृतसन्मुखम् ॥६७॥ तदानीमागमच्छीघ्रं विमानं वैष्णवाश्रितम् ॥ भेरीमृदङ्ग पटवहेणुवीणाबृहत्स्वनम् ॥६८॥ नृत्यद्दे वाङ्गनं दिव्यं गायद्गन्धर्वकिन्नरम् ॥ तन्निरीक्ष्य महाभागो दिव्यदेहधरः कपिः ॥६९॥ विस्मयं परमं यातो महापापस्य मे कुतः ॥ एतत्पुण्यतमस्यैव योग्यं वैमानिकं सुखम् ॥७०॥ अथ काचित्तदुपरि दधार छत्र-

से आवृत्त (घिरा हुआ) सुन्दर मुख था ॥६७॥ उसी समय शीघ्र वहाँ वैष्णवों से युक्त विमान आया जिसमें भेरी, मृदङ्ग, पटह, वेणु, वीणा का महान शब्द हो रहा है ॥६८॥ और देवाङ्गनाओं (अप्सरा) का नाच हो रहा है, गन्धर्व किन्नर के दिव्य गान हो रहे हैं ऐसे उस विमान को महाभागा दिव्यदेहधारी वानर देखकर ॥६९॥ अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो कहने लगा कि पातकी मेरे को यह कैसे हुआ ? यह अधिक पुण्यात्मा को विमान का योग्य सुख कहा है ॥७०॥ इसके बाद कोई देवाङ्गना उसके ऊपर चन्द्रकान्ति के

समान छत्र को धारण करती हुई। कोई दो अप्सरायें हर्ष से उसको दोनों तरफ चामर डुला रही है ॥७१॥ कोई पान हाथ में लिये खड़ी है और उसके सामने अप्सरायें नाच कर रही हैं। कोई गङ्गाजल से भरी हुई झारी को लिए खड़ी है ॥७२॥ कोई हाथ में लेकर और उसके सामने खड़ी गाने बजाने में तत्पर है। इस प्रकार उसके वैभव को देखकर चित्र में बने हुए के समान निश्चल हो गया ॥७३॥ यह क्या है? मुझ दुष्ट पातकी को किस पुण्य से यह हुआ, मेरा कुछ भी पुण्य नहीं है जिससे मैं हरि भगवान के

मिन्दुभम् ॥ चक्रतुश्चामरे तस्य केचिदप्सरसौ मुदा ॥७१॥ काचित्ताम्बूलहस्ता चननृतुश्चाप्सराःपरः ॥ काचिद्भृङ्गारकं हैमं स्वर्धुनीवारि सम्भृतम् ॥७२॥ हस्ते कृत्वा पुरस्तस्थौ गीतवाद्यादितत्परा ॥ एवं वैभवमालोक्य चित्रन्यस्त इवाभवत् ॥७३॥ किमेतत् केनपुण्येन ममापुण्यस्य दुर्मतेः ॥ नास्ति मे सुकृतं किञ्चिद्येन यामि हरेः पदम् ॥७४॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इत्थं तर्कयतो बृहत्सुखनिधिं दिव्यं विमानं पुरो दृष्ट्वा विस्मितचेतसो हरिभटौ ज्ञात्वास्य हार्दं परम् ॥ बद्ध्वाग्रे करसम्पुटं सविनयं नत्वा तदीयं पदं वाक्यं सुन्दरमूचतुः कपिजनुस्त्यक्त्वा पुरः संस्थितम् ॥७५॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममास-

परम पद को जाऊँ ॥७४॥ श्रीनारायण बोले—इस प्रकार तर्क करते हुए कदर्य ने बहुत सुख का खजाना दिव्य विमान को देखकर आश्चर्य किया। बाद हरिभटों ने उस कदर्य के हार्दिक अभिप्राय जानकर उसके सामने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उसके चरणों को नमस्कार कर उस वानरशरीर को त्याग कर सामने स्थित कदर्य के लिये सुन्दर वचन को कहा ॥७५॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे

श्रीपुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कदर्योपाख्याने कपिजन्मनि विमानागमनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥
पुण्यशील सुशील बोले- हे विभो ! गोलोक को चलो, यहाँ विलम्ब क्यों करते हो ? तुमको पुरुषोत्तम भगवान् का सामीप्य मिला है ॥१॥ कदर्य बोला—मेरे बहुत कर्म अनेक प्रकार से भोगने योग्य हैं परन्तु हमारा उद्धार कैसे हुआ जिससे गोलोक प्राप्त हुआ

माहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे कदर्योपाख्याने कपिजन्मनि विमानागमनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

पुण्यसीलसुशीलावूचतुः ॥ विभो प्रयाहि गोलोकं कथमत्र विलम्बसे ॥ पुरुषोत्तम-सान्निध्यं त्वया लब्धं विशेषतः ॥१॥ कदर्य उवाच ॥ बहूनि मम कर्माणि सन्ति भोज्या-न्यनेकशः ॥ केन मे निष्कृतिर्जाता यतो गोलोकमाप्नुयाम् ॥२॥ यावन्त्यो वर्षधाराश्च तृणानि भूरजःकणाः ॥ यावत्यस्तारका व्योम्नि तावत्पापानि सन्ति मे ॥३॥ कथमेतन्मया प्राप्तं वपुर्दिव्यं मनोहरम् ॥ एतत्कारणमत्युग्रं मह्यं ब्रूत हरेः प्रियौ ॥४॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति वाचमुपाकर्ण्य हरेर्दूतावथोचतुः ॥ हरिदूतावूचतुः ॥ अहो देव कथं नैव विज्ञातं साधनं महत् ॥५॥ प्रभा न ज्ञायते कस्मान्मासः सर्वोत्तमोत्तमः ॥ विष्णुप्रियो

॥२॥ जितनी वृष्टि की धारायें हैं, जितने तृण हैं, पृथिवी पर धूली के कण हैं, आकाश में जितने तारायें हैं उतने मेरे पाप हैं ॥३॥ मैंने यह सुन्दर और मनोहर शरीर कैसे प्राप्त किया हे हरि भगवान् के प्रिय ! इसका उग्रकारण मेरे लिए कहिये ॥४॥ श्रीनारायण बोले—कदर्य के इस वचन को सुनकर हरिके दूतों ने कहा । हरिदूत बोले । अहो ! आश्चर्य है । हे देव ! महान् साधन को क्यों नहीं

जाना ॥५॥ हे प्रभो ! सब में उत्तमोत्तम, विष्णु का प्रिय, महान् पुण्यफल को देनेवाला, पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध मास को क्यों नहीं जाना ॥६॥ उस पुरुषोत्तममास में देवताओं से भी न होने योग्य तप तुमने किया। हे महाराज ! वन में वानर शरीर से अज्ञान दशा में वह तप भया ॥७॥ मुखरोग के कारण अज्ञान से अनाहार (अनशन) व्रत भया और तुमने बन्दर योनि में चञ्चलतावश वृक्षों से फलों को तोड़कर ॥८॥ पृथिवी पर गिराया जिससे और दूसरे मनुष्य तृप्त हुए। अन्तःकरण में क्लेश के अधिक होने से जल भी

महापुण्यो नाम्ना वै पुरुषोत्तमः ॥६॥ तस्मिंस्त्वया तपश्चीर्णमशक्यं यत्सुरैरपि ॥ अविज्ञातं महाराज कपिदेहेन कानने ॥७॥ मुखरोगादनाहारव्रतं जातमजानतः ॥ त्वया च कपिचाञ्चल्यात् फलान्युत्यकृत्य वृन्ततः ॥८॥ क्षिप्तानि पृथिवीपीठे तृप्तास्तैरितरे जनाः ॥ पानीयमपि नो पीतमन्तर्दुःखेन भूरिशः ॥९॥ सञ्जातं ते तपस्तीव्रमज्ञानात् पुरुषोत्तमे ॥ परोपकारः सञ्जातः फलपातेन तेऽनघ ॥१०॥ शीतवातातपा रौद्रः सोढा विचरता वने ॥ महातीर्थे वरे रम्ये वञ्चाहं प्लवनं कृतम् ॥११॥ तस्मात्ते स्नानजं पुण्यं मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ एवं रुग्णस्य ते जातमज्ञानात्तप उत्तमम् ॥१२॥ तदेतत्सफलं जातमनुभूतं त्वयाऽधुना ॥

नहीं पान किया ॥९॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में अज्ञानवश तुमसे तीव्र तप हो गया। हे अनघ ! और फलों के गिराने से परोपकार भी भया ॥१०॥ वन में भ्रमण करते शीत वायु, आतप को सहन किया और श्रेष्ठ सुन्दर महातीर्थ (मृगतीर्थ) में पाँच दिन गोता लगाया ॥११॥ उससे श्रीपुरुषोत्तम मास में तुमको स्नान का पुण्य हो गया। इस प्रकार तुम्हारे रोगी के अज्ञान से उत्तम तप हो गया ॥१२॥ सो यह सब सफल भया और तुमने इस समय अनुभव किया जो कि व्याज से भी पुरुषोत्तम मास के सेवन से तुमको यह सफल

हो गया ॥१३॥ जो मनुष्य यह पुरुषोत्तम मास में उत्तम महात्म्य को जानकर श्रद्धा से विधिपूर्वक कर्म को करता है तो क्या कहना है ॥१४॥ तुमने अपना जो अर्थ साधन किया वैसा करने को कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं। जिस पुरुषोत्तम मास में एक भी उपवास करने से मनुष्य पापराशि से मुक्त हो जाता है ॥१५॥ इस मास के समान पुरुषोत्तम भगवान् को कुछ भी प्रीति को देनेवाला नहीं है। जो पुरुषोत्तम भगवान् का व्रत करते हैं वे प्राणी धन्य और कृतकृत्य हैं ॥१६॥ इस भारतखण्ड में मनुष्य जन्म दुर्लभ

व्याजतोऽपि कृतेनैव सफलं स्यद्यथा तव ॥१३॥ किं पुनः श्रद्धयैतस्मिन् मासे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ विधिना कुर्वतः कर्मज्ञात्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥१४॥ यस्त्वया साधितः स्वार्थस्तादृक्कर्तुंच कः क्षमः ॥ यस्मिन्नेकोपवासेन मुच्यते पापराशिभिः ॥१५॥ नैतत्तुल्यं भवेत्किञ्चित्पुरुषोत्तमप्रीतिदम् ॥ ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तद्व्रतं ये प्रकुर्वते ॥१६॥ दुर्लभं मानुषं जन्म भूखण्डे भारताजिरे ॥ तादृशं जनुरासाद्य सेवन्ते पुरुषोत्तमम् ॥१७॥ ते सदा सुभगाः पुण्यास्तेषां च सफलो भवः ॥ येषां सर्वोत्तमो मासः स्नानादनजपैर्गतः ॥१८॥ दानानि पितृकार्याणि तपांसि विविधानि च ॥ तानि कोटिगुणान्येव सम्प्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥१९॥ धिक् तंच नास्तिकं पापं शठं धर्मध्वजं खलम् पुरुषोत्तमासाद्य स्नानदानविवर्जितः ॥२०॥

कहा है जो मनुष्य शरीर प्राप्त कर पुरुषोत्तम भगवान् का सेवन करते हैं ॥१७॥ वे सदा भाग्यवान् पुण्यकर्म के करनेवाले पवित्र हैं और उनका जन्म सफल है जिनका सब में उत्तम पुरुषोत्तम मास स्नान दान जप से व्यतीत हुआ है ॥१८॥ श्रीपुरुषोत्तम मास में दान, पितृकार्य (श्राद्ध), अनेक प्रकार के तप से सब अन्य मास की अपेक्षा कोटि गुण अधिक फल को देते हैं ॥१९॥ जो पुरुषोत्तम मास

के आने पर स्नान दान से रहित रहता है उस नास्तिक, पापी, शठ (ठग) खल, (दुष्ट) को धिक्कार है ॥२०॥ श्रीनारायण बोले। पुण्यशील से वर्णित अपने अदृष्ट को सुनकर चकित होता हुआ कदर्य प्रसन्न हो रोमाञ्चित हो गया ॥२१॥ तीर्थ के देवताओं को नमस्कार कर बाद कालञ्जर पर्वत को नमस्कार किया। और वन के देवताओं का तथा समस्त गुल्म (गुच्छ), लता वृक्ष को नमस्कार किया ॥२२॥ बाद विनय से विमान की प्रदक्षिणा कर मेघ के समान श्यामवर्ण, सुन्दर पीताम्बर को धारण कर वह कदर्य विमान

श्री नारायण उवाच ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यमदृष्टं वर्णितं निजम् ॥ तच्छ्रुत्वा चकितो हृष्टः पुलकाङ्कितविग्रहः ॥२१॥ तीर्थदेवान् नमस्कृत्य कालञ्जरगिरिं ततः ॥ न नाम काननाधीशान् सर्वगुल्मलतातरून् ॥२२॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य विमानं विनयान्वितः ॥ आरुरोह घनश्यामो लसत्पीताम्बरावृतः ॥२३॥ पश्यत्सु सर्वदेवेषु गन्धर्वाद्यैरभिष्टुतः वाद्यमानेषु वाद्येषु किन्नराद्यैर्मुहुर्मुहुः ॥२४॥ पुष्पवृष्टिमुचो देवा मन्दं मन्दं मुदान्विताः ॥ सादरं पूजयाञ्चक्रुः पुरन्दरपुःसराः ॥२५॥ ततो जगाम गोलोकं सानन्दं योगिदुर्लभम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं रासमण्डलमण्डितम् ॥२६॥ यत्र गत्वा न शोचन्ति जरामृत्युविवर्जिते ॥ तत्रासौ चित्रशर्मा च पुरुषोत्तमसेवनात् ॥२७॥ व्याजेनापि मुदोदोच्चैर्विहाय वानरं वपुः ॥

पर सवार हो गया ॥२३॥ समस्त देवताओं को देखते हुए गन्धर्व आदि से स्तुत और किन्नर आदिकों से बार बार वाद्य (बाजा) बजाये जाने पर ॥२४॥ इन्द्रादि देवताओं ने प्रसन्न होकर मन्द मन्द पुष्पवृष्टि को करते हुए आदरपूर्वक पूजन किया ॥२५॥ बाद आनन्द से युक्त, योगियों को दुर्लभ, गोप गोपी गौओं का सेव्य, रासमण्डल से शोभित गोलोक को गया ॥२६॥ जो मृत्यु से रहित

जिस गोलोक में जाकर प्राणी शोक का भागी नहीं होता है उस गोलोक में यह चित्रशर्मा पुरुषोत्तम के सेवन से गया ॥२७॥ व्याज से पुरुषोत्तम मास के सेवन से वानर शरीर छोड़कर दो भुजाधारी मुरली हाथ में लिए पुरुषोत्तम भगवान् को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥२८॥ श्रीनारायण बोले—इस आश्चर्य को देखकर समस्त देवता चकित हो गये और श्रीपुरुषोत्तम की प्रशंसा करते करते अपने स्थान को गये ॥२९॥ नारद मुनि बोले—हे तपोधन ! आपने दिन के प्रथम भाग का कृत्य कहा। पुरुषोत्तम मास के दिन के पिछले भाग में

द्विभुजं मुरलीहस्तं दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ॥२८॥ श्रीनारायण उवाच—इदमाश्चर्यमालोक्य देवाः सर्वेः सुविस्मताः ॥ स्वं स्वं स्वं स्थानं ययुः सर्वे शंसन्तः पुरुषोत्तमम् ॥२९॥ नारद उवाच—दिवसस्यादिमे भागे त्वयाऽह्निकमुदीरितम् ॥ तद्दिनापरभागीयं कथं कार्यं तपोधन ॥३०॥ गृहस्थस्योपकाराय वद मे वदतां वर ॥ सदा सर्वोपकाराय चरन्ति हि भवादृशाः ॥३१॥ श्रीनारायण उवाच—प्रातःकालोदितं कर्म समाप्य विधिवत्ततः ॥ कृत्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां तिलतर्पणमाचरेत् ॥३२॥ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाश्च यक्षोरग-दैत्यसङ्घाः ॥ प्रेताः पिशाचा उरगाः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मयाऽत्र दत्तम् ॥३३॥ ततः पञ्चमहायज्ञान् कुर्याद्भूतबलिं ततः ॥ काकस्य च सुनश्चैव बलिं दत्त्वैवमुच्चरन् ॥३४॥

होनेवाले कृत्य को कैसे करना चाहिये ॥३०॥ हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ ! गृहस्थ के उपकार के लिए मुझसे कहिये। क्योंकि आपके समान महात्मा सदा सबके उपकार के लिये भ्रमण करते रहते हैं ॥३१॥ श्रीनारायण बोले—प्रातःकाल के कृत्य को विधिपूर्वक समाप्त कर बाद मध्याह्न में होनेवाली सन्ध्या को करके तर्पण को करे ॥३२॥ देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, नाग ये सब

मध्याह्न में होनेवाली सन्ध्या को करके तर्पण को करे ॥३२॥ देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, नाग ये सब

जो अन्न की इच्छा करते हैं वे सब मेरे से दिये गये अन्न को ग्रहण करें ॥३३॥ इसके बाद पञ्चमहायज्ञ को करे, बाद भूतिबलि को करे और काक कुत्ता को श्लोक पढ़ता हुआ बलि को देवे ॥३४॥ इस प्रकार कहकर समस्त भूतों को पृथक् फिर बलि देवे, बाद विधि पूर्वक आचमन कर प्रसन्न मन होकर श्रद्धा से ॥३५॥ अतिथि की प्राप्ति के लिए गोदोहनकाल तक द्वार का अवलोकन करे यदि भाग्य से अतिथि मिल जाय तो ॥३६॥ बुद्धिमान् प्रथम वचन से सत्कार करके उस अतिथि को देवता के समान पूजन करे और यथाशक्ति

इत्युक्त्वा सर्वभूतेभ्यो बलिं दद्यात् पुनः पृथक् ॥ तत आचम्य विधिवच्छ्रद्धया प्रीतमानसः ॥३५॥ द्वारावलोकनं कुर्यादतिथिग्रहणाय च ॥ गोदोहकालं भाग्यात्तु प्राप्तश्चेदतिथिर्यदि ॥३६॥ आदौ सत्कृत्य वचसा देववत् पूजयेत् सुधीः ॥ तोषयेत् परया भक्त्या यथा-शक्त्यन्नपानतः ॥३७॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिव द्ब्रह्मचारिणे ॥ आकल्पितान्नादु द्धृत्य सर्वं व्यञ्जन संयुतात् ॥३८॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वमिनावुभौ ॥ तयोरन्न मदत्त्वै भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत् ॥३९॥ यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यत् पुनर्जलम् ॥ तद्भैक्षं मेरुणा तुल्य तज्जलं सागरोपमम् ॥४०॥ सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षां यः प्रयच्छति मानवः ॥

अन्न जल से सन्तुष्ट करे ॥३७॥ बाद विधिपूर्वक समस्त व्यञ्जन से युक्त सिद्ध अन्न से निकालकर भिक्षु (संन्यासी) और ब्रह्मचारी को भिक्षा देवे ॥३८॥ सन्यासी और ब्रह्मचारी ये दोनों सिद्ध अन्न के मालिक हैं इनको अन्न न देकर भोजन करनेवाला चान्द्रायण व्रत करे ॥३९॥ प्रथम संन्यासी के हाथ पर जल देकर भिक्षान्न देवे तो वह भिक्षान्न मेरु पर्वत के समान और जल समुद्र के समान कहा गया है ॥४०॥ जो मनुष्य सत्कार करके संन्यासी को भिक्षा देता है उसको गोदान के समान पुण्य होता है इस बात को यमराज

भगवान ने कहा है ॥४१॥ बाद मौन होकर पूर्वमुख बैठकर शुद्ध बड़े पात्र में रख अन्न की प्रशंसा करता हुआ भोजन करे ॥४२॥ अपने आसन पर अपने बर्तन में एक वस्त्र से भोजन नहीं करे। स्वयम् आसन पर बैठकर स्वस्थ चित्त, प्रसन्न मन होकर ॥४३॥ जो मनुष्य अकेला ही अपने काँसे के पात्र में भोजन करता है तो उसके आयु प्रज्ञा, यश और बल चार बढ़ते हैं ॥४४॥ (दिवा—

गोप्रदानसमं पुण्यमित्याह भगवान् यमः ॥४१॥ ततश्च भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः प्रशस्ते शुद्धपात्रे च भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥४२॥ नैकवासाः समश्नीयात् स्वासने निजभाने ॥ स्वयमासनमारुह्य स्वस्थचित्तः प्रसन्नधीः ॥४३॥ एक एव तु यो भुङ्क्ते स्वकीये कांस्यभाजने ॥ चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥४४॥ सत्यंत्वर्तेति मन्त्रेण जलमादाय पाणिना ॥ परिषिच्य भोक्तव्यं सघृतं व्यञ्जनान्वितम् ॥४५॥ भोजनात् किञ्चिदन्नग्र्यमादायैवं समुच्चरेत् ॥ नमो भूपतये पूर्वं भुवनपतये नमः ॥४६॥ भूतानां पतये पश्चाद्धर्माय च ततो बलिम् ॥ दत्त्वा च चित्रगुप्ताय भूतेभ्य इदमुच्चरेत् ॥४७॥ यत्र क्वचन संस्थानां क्षुत्तृषोपहतात्मनाम् ॥ तृप्तयेऽन्नमिदमस्तु यथासुखम् ॥४८॥ प्राणा-

सत्यंत्वर्तेन परिषिञ्चामि । रात्रौ— ऋतं वा सत्येन परिषिञ्चामि इस मन्त्र से हाथ में जल लेकर सिञ्चन कर घृत व्यञ्जन युक्त अन्न का भोजन करे ॥४५॥ भोजन में से कुछ अन्न लेकर इस प्रकार कहे—भूपतये नमः, प्रथम कहकर भुवनपतये नमः, कहकर धर्मराज को बलि देवे ॥४६॥ बाद चित्रगुप्त को देकर भूतों को देने के लिए यह कहे ॥४७॥ जिस किसी जगह स्थित, भूख प्यास से व्याकुल

भूतों की तृप्ति के लिए यथासुख यह अदृश्य अन्न होवे ॥४८॥ प्राणाय, अपानाय व्यानाय, उदानाय बाद समानाय कहे ॥४९॥ प्रणव प्रथम उच्चारण कर अन्त में स्वाहा पद जोड़ कर घृत के साथ पाँच ग्रास जिह्वा से प्रथम निगल जाय दाँतों से न दबावे ॥५०॥ बाद तन्मय होकर प्रथम मधुर भोजन करे नमक के पदार्थ और आम्ल पदार्थ मध्य में कटुपदार्थ तिक्त पदार्थ उसके बाद भोजन करे ॥५१॥ पुरुष प्रथम द्रव (गीला) पदार्थ भोजन करे, मध्य में कठिन पदार्थ भोजन करे, अन्त में पुनः द्रव पदार्थ भोजन करे तो

यापानसंज्ञाय व्यानाय च ततः परम् ॥ उदानाय ततो ब्रूयात् समानाय ततः परम् ॥४९॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य स्वाहान्ते च घृतप्लुतम् ॥ पञ्चकृत्वा ग्रसेदन्नं जिह्वया न तु दंशयेत् ॥५०॥ ततश्च तन्मना भूत्वा भुञ्जीत मधुरं पुरः ॥ लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तौ ततः परम् ॥५१॥ प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये तु कठिनाशनम् ॥ अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति ॥५२॥ अष्टौ ग्रासामुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः ॥ द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य त्वमितं ब्रह्मचारिणः ॥५३॥ नाद्याच्छास्त्रविरुद्धं तु भक्ष्यभोज्यादिकं द्विजः ॥ अभोज्यं प्राहुराहारं शुष्कं पर्युषितं तथा ॥५४॥ सर्वं सशेषमश्नीयात् घृतपायसवर्जितम् ॥ अग्राङ्गु-

बल और आरोग्य से रहित नहीं होता ॥५२॥ मुनि को आठ ग्रास भोजन के लिए कहा है। वानप्रस्थाश्रमी को सोलह ग्रास भोजन के लिए कहा है। गृहस्थाश्रमी का ३२ बत्तीस ग्रास भोजन कहा है और ब्रह्मचारी को अपरिमित (अनगिनती) ग्रास भोजन के लिए कहा है ॥५३॥ द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) शास्त्र के विरुद्ध भोज्य आदि पदार्थों को नहीं खाय। शुष्क और बासी पदार्थ को विद्वानों ने अभोज्य बतलाया है ॥५४॥ घृत दूध को छोड़ कर अन्य वस्तु भोजन करे। भोजन के बाद उस शेष को अङ्गुलियों के अग्र भाग में

रख कर ॥५५॥ अञ्जलि जल से पूर्ण करे उसका आधा जल पी जाय और अङ्गुलियों के अग्रभाग में स्थित शेष को पृथिवी में देकर ऊपर से अञ्जलि का शेष आधा जल ॥५६॥ विद्वान् उसी जगह इस मन्त्र को पढ़ता हुआ सिञ्चन करे ऐसा न करने से ब्राह्मण पाप का भागी होता है बाद प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होता है ॥५७॥ मन्त्र का अर्थ—रौरव नरक में, पीप के गड्ढे में पद्म अर्बुद वर्ष तक

लिषु तच्छेषं निधाय भोजनोत्तरम् ॥५५॥ जलपूर्णाञ्जलिं कृत्वा पीत्वा चैव तदर्धकम् ॥ अग्राङ्गुलिस्थितं शेषं भूमौ दत्त्वाऽञ्जलेर्जलम् ॥५६॥ शेषं निषिञ्चेत्तत्रैव पठन् मन्त्रमिमं बुधः ॥ अन्यथा पापभाग्विप्रः प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति ॥५७॥ रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुद-निवासिनाम् ॥ अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥५८॥ निषिच्यानेन मन्त्रेण कुर्याद्द-न्तविशोधनम् ॥ आचम्य पात्रमुत्सार्य किञ्चिदार्द्रेण पाणिना ॥५९॥ ततः परं समुत्थाय बहिः स्थित्वा समाहितः ॥ शोधयेन्मुख हस्तौ च मृदा शुद्धजलेन च ॥६०॥ कृत्वा षोडशगण्डूषान् शुद्धो भूत्वा सुखासनः ॥ इमौ मन्त्रौ पठन्नेव पाणिनोदरमालभेत् ॥६१॥ अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च बडवानलम् ॥ आहारपरिपाकार्थं स्मरेद्भीमं च पञ्चमम्

वास करने वाले इच्छा करने वाले के लिए मेरा दिया हुआ यह जल अक्षय्य होता हुआ प्राप्त हो ॥५८॥ मन्त्र पढ़के जल से सिञ्चन कर दाँतों को शुद्ध करे। आचमन कर गीले हाथ से पात्र को कुछ हटा कर ॥५९॥ उस भोजन स्थान से उठकर स्वस्थ होकर मिट्टी और जल से मुख हाथ को शुद्ध कर ॥६०॥ सोलह कुल्ला कर शुद्ध हो सुख से बैठ कर इन दो मन्त्रों को पढ़ता हुआ हाथ से उदर (पेट) को स्पर्श करे। ॥६१॥ अगस्त्य, कुम्भकर्ण शनि, बड़वानल और पञ्चम भीम को आहार के परिपारिक के लिये स्मरण करे

॥६२॥ जिसने आतापी को मारा और वातपी को भी मार डाला, समुद्र का शोषण किया वह अगस्त्य मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥६३॥ तदनन्तर प्रसन्न मन से श्रीकृष्ण देव का स्मरण करे फिर आचमन कर ताम्बूल को खाय ॥६४॥ भोजन करके बैठ कर परब्रह्म श्रीकृष्ण का उत्तम मार्ग के अविरोधी उत्तम शास्त्रों के विनोद से विचार करे ॥६५॥ बाद बुद्धिमान् अध्यात्मविद्या का श्रवण करे। सर्वथा आजी-

॥६२॥ आतापी मारितो येन वातापी च निपतितः ॥ समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥६३॥ ततः श्रीकृष्णदेवस्य कुर्वीत स्मरणं मुदा ॥ भूयोऽप्याचम्य कर्तव्यं ततस्ताम्बूलभक्षणम् ॥६४॥ भुक्त्वोपविष्टः श्रीकृष्णं परं ब्रह्म विचारयेत् ॥ सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गाद्यविरोधिना ॥६५॥ ततश्चाध्यात्मविद्यायाः कुर्वीत श्रवणं सुधीः ॥ सर्वथा वृत्तिहीनोऽपि मुहूर्तं स्वस्थमानसः ॥६६॥ श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा पापं परित्यजेत् ॥ श्रुत्वा निवर्तते मोहः श्रुत्वा ज्ञानामृतं लभेत् ॥६७॥ नीचोऽपि श्रवणेनाशु श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥ श्रेष्ठोऽपि नीचतां याति रहितः श्रवणेन च ॥६८॥ व्यवहारं ततः कुर्याद्बहिर्गत्वा यथासुखम् ॥ श्रीकृष्णं मनसा ध्यायेत् सर्वार्थसिद्धिदायकम् ॥६९॥ सूर्येऽस्तशिखरं प्राप्ते

विका से हीन मनुष्य भी एक मुहूर्त स्वस्थ मन होकर श्रवण करे ॥६६॥ श्रवण कर धर्म को जानता है, श्रवण कर पाप का त्याग करता है, श्रवण कर ज्ञानरूपी अमृत को प्राप्त करता है ॥६७॥ नीच भी श्रवण करने से शीघ्र श्रेष्ठ हो जाता है और श्रेष्ठ भी श्रवण से रहित होने से नीच हो जाता है ॥६८॥ बाद बाहर जाकर यथासुख व्यवहार (व्यापार) आदि करे और सर्वार्थ सिद्धि को देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् का मन से ध्यान करे ॥६९॥ सूर्यनारायण से अस्ताचल जाने के समय तीर्थ में जाकर अथवा गृह में पैर धोकर पवित्र धारण

कर सायंसन्ध्या की उपासना करे ॥७०॥ जो द्विजों में अधम प्रमाद से सायंसन्ध्या नहीं करता है वह गोवध पाप का भागी होता है और मरने पर रौरव नरक को जाता है ॥७१॥ कभी समय से न करने पर, सङ्कट में, मार्ग में हो तो द्विजश्रेष्ठ आधी रात के पहले सायंसन्ध्या को करे ॥७२॥ जो ब्राह्मण श्रद्धा के साथ प्रातः, मध्याह्न और सायंसन्ध्या की उपासना करता है उसका तेज घृत छोड़ने से

तीर्थं गत्वाऽथवा गृहम् ॥ सायंसन्ध्यामुपासीत धौताङ्घ्रिः सपवित्रकः ॥७०॥ यः प्रमा- दान्न कुर्वीत सायंसन्ध्यां द्विजाधमः ॥ स गोवधमवाप्नोति मृते रौरवमप्नुयात् ॥७१॥ कदाचित् काललोपेऽपि सङ्कटे वा पथि स्थितः ॥ आनिशीथात् प्रकुर्वीत सायंसन्ध्यां द्विजोत्तमः ॥७२॥ यस्त्रिसन्ध्यमुपासीत ब्राह्मणः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ तत्तेजो वर्धतेऽत्यन्तं घृतेनैव हुताशनः ॥७३॥ सादित्यां पश्चिमां सन्ध्याम र्धास्तमितभास्करम् ॥ प्राणानायम्य सम्प्रोक्ष्य मन्त्रेणाब्देवतेन तु ॥७४॥ साय 'मग्निश्च मे'त्युक्त्वा प्रातः 'सूर्ये' त्यपः पिबेत् ॥ प्रत्यङ्मुखोपविष्टस्तु वाग्यतः सुसमाहितः ॥७५॥ प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं तु जपेत्ततः ॥ अक्षसूत्रं समादाय सम्यगातारकोदयात् ॥७६॥ वारुणीभिस्तदादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणम् ॥

अग्नि के समान अत्यन्त बढ़ता है ॥७३॥ सायंकाल में सूर्यनारायण के आधा अस्त होने पर प्राणायाम कर 'आपोहिष्ठा'—इस मन्त्र से मार्जन करे ॥७४॥ और सायङ्काल 'अग्निश्चमा'—इस मन्त्र से आचमन करे और प्रातःकाल 'सूर्यश्चमा'—इस मन्त्र से आचमन करे। पश्चिम मुख बैठकर मौन तथा समाहित मन होकर ॥७५॥ प्रणव और व्याहृति सहित गायत्री मन का रुद्राक्ष की माला की माला लेकर तारा के उदय होने तक जप करे ॥७६॥ वारुणी ऋचाओं से सूर्यनारायण का उपस्थान कर प्रदक्षिणा करता हुआ दिशाओं को

पृथक् पृथक् दिशाओं के स्वामी को नमस्कार करे ॥७७॥ पश्चिम (सायं) सन्ध्या की उपासना कर अग्नि में आहुति देकर भृत्य वर्गों के साथ अल्प भोजन करे बाद कुछ समय तक बैठ जाय ॥७८॥ सायङ्काल और प्रातःकाल भोजन की इच्छा नहीं होने पर भी वैश्वदेव और बलि कर्म सदा करना चाहिये । यदि नहीं करता है तो पातकी है ॥७९॥ शाम को भोजन कर बैठने के बाद गृहस्थाश्रमी हाथ

कुर्वन् दिशो नमस्कुर्याद्दिगीशांश्च पृथक् पृथक् ॥७७॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाऽग्निमश्नीयात्ततः ॥ भृत्यैः परिवृतो भूत्वा नातितृप्तोऽथसंविशेत् ॥७८॥ सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च ॥ अनश्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥७९॥ कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा सायं ततो गृही ॥ गच्छेच्छय्यां ततो मृद्वीमुपधानसमन्विताम् ॥८०॥ स्वगृहे प्राक्छिराः शेते श्वासुरे दक्षिणाशिराः ॥ प्रवासे पश्चिमशिरा न कदाचिदुदक्छिराः ॥८१॥ रात्रिसूक्तं जपेत् स्मृत्वा देवांश्च सुखशायिनः ॥ नमस्कृत्याऽव्ययं विष्णुं समाधिस्थः स्वपेन्निशि ॥८२॥ अगस्त्यो माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः ॥ कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥८३॥ माङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने निधाय च ॥ वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रैः रक्षां

पैर धोकर तकिया सहित कोमल शय्या पर जाय ॥८०॥ अपने गृह में पूर्व की ओर शिर करके शयन करे, श्वसुर के गृह में दक्षिण की ओर शिर करके शयन करे, परदेश में पश्चिम की ओर शिर करके शयन करे परन्तु उत्तर की ओर शिर करके कभी शयन नहीं करे ॥८१॥ रात्रिसूक्त का जप करे और सुखशायी देवताओं का स्मरण कर अविनाशी विष्णु भगवान को नमस्कार कर स्वस्थचित्त हो रात्रि में शयन करे ॥८२॥ अगस्त्य, माधव, महाबली मुचुकुन्द, कपिल, आस्तीक, मुनि, ये पाँच सुखशायी कहे गये है ॥८३॥ माङ्-

लिक जल से पूर्ण घट को शिर के पास रख कर वैदिक और गारुड़ मन्त्रों से रक्षा करके शयन करे ॥८३॥ ऋतुकाल में स्त्री के पास जाय और सदा अपनी स्त्री में प्रेम करे, व्रती की कामना से पर्व को छोड़ कर अपनी ऋतुकाल में स्त्री के पास जाय ॥८५॥ प्रदोष और प्रदोष के पिछले प्रहर में वेदाभ्यास करके समय व्यतीत करे बाद दो प्रहर शयन करने वाला ब्रह्मभूत होने के योग्य होता

कृत्वा स्वपेत्ततः ॥८४॥ ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतऽ सदा ॥ पर्ववर्जं व्रजेदेनां तद्व्रती रतिकाम्यया ॥८५॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन यो नयेत् ॥ यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥८६॥ एतत्सर्वमशेषेण कृत्यजातं दिने दिने ॥ कर्तव्यं गृहिभिः सम्यग्गृहस्थाश्रमलक्षणम् ॥८७॥ अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ॥ शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उच्यते ॥८८॥ परदारेष्वसंसर्गो धर्मस्त्रीपरिरक्षणम् ॥ अदत्तदानविरमो मधुमांसविवर्जनम् ॥८९॥ एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः ॥ देहिभिर्देहपरमैः कर्तव्यो देहसम्भवः ॥९०॥ श्रीनारायण उवाच—अशेषवेदोदितसच्चरित्रमेतद्गृहस्थाश्रमलक्षणं हि ॥ उक्तं समासेन च लक्षणेन तुभ्यं मुने लोकहिताय सम्यक् ॥९१॥ इति

है ॥८६॥ यह सब प्रतिदिन के समस्त कृत्यसमुदाय को कहा। गृहस्थाश्रमी भलीभाँति इसको करे और यह गृहस्थाश्रम का लक्षण है ॥८७॥ अहिंसा, सत्य, प्राणी पर दया, शान्ति, यथाशक्ति दान करना, गृहस्थाश्रम का धर्म कहा है ॥८८॥ परस्त्री में भोग नहीं करना, अपनी धर्मपत्नी की रक्षा करना, बिना दी हुई वस्तु को नहीं लेना, सहत और मांस को नहीं खाना ॥८९॥ यह पाँच प्रकार का धर्म बहुत शाखा वाला, सुख देनेवाला है। देह से होनेवाले धर्म को उत्तम प्राणियों को करना चाहिये ॥९०॥ श्रीनारायण बोले। समस्त

वेदों में कहे हुए यह उत्तम चरित्र गृहस्थाश्रम का लक्षण है। हे मुने! लोक के हित के लिए संक्षेप में लक्षण के साथ आप से मैंने अच्छी तरह कहा ॥ ६१ ॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे आह्निककथनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे आह्निककथनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

नारद उवाच—स्तुता पतिव्रता नारी त्वया पूर्वं तपोनिधे ॥ तल्लक्षणानि सर्वाणि समासेन वदस्व मे ॥१॥ सूत उवाच—नोदितो नारदेनेत्थं पुरातनमुनिः स्वयम् ॥ पतिव्रतायाः सर्वाणि लक्षणान्याह भूसुराः ॥२॥ श्रीनारायण उवाच—शृणु नारद वक्ष्यामि सतीनां व्रतमुत्तमम् ॥ कुरूपो वा कुवृत्तो वा सुस्वभावोऽथ वा पतिः ॥३॥ रोगान्वितः पिशाचो वा क्रोधनो वाऽथ मद्यपः ॥ वृद्धो वाऽप्यविदग्धो वा मूकोऽन्धो बधिरोऽपि वा ॥४॥ रौद्रो वाऽथ दरिद्रो वा कदर्यः कुत्सितोऽपि वा ॥ कातरः कितवो वाऽपि ललना-

नारद जी बोले। हे तपोनिधे! प्रथम आपने पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा की है अब आप पतिव्रता स्त्री के लक्षणों को मुझसे कहें ॥१॥ सूत जी बोले। हे पृथिवी के देवता ब्राह्मण लोग! इस प्रकार नारद मुनि के पूछने पर स्वयं प्राचीन मुनि नारायण ने पतिव्रता स्त्री के लक्षणों को कहा ॥२॥ श्रीनारायण बोले। हे नारद! सुनो। मैं पतिव्रताओं के उत्तम व्रत को कहता हूँ। पति कुरूप हो, कुत्सित व्यवहार वाला हो, अथवा सुरूपवान् हो ॥३॥ रोगी हो पिशाच हो, क्रोधी हो, मद्यपान करने वाला हो, मूक हो, अन्धा हो, अथवा बधिर हो

॥४। भयङ्कर हो, दरिद्र हो, कृपण हो, निन्दित हो, दीन हो, चोर हो, स्त्रीलम्पट हो ॥५॥ परन्तु सती स्त्री सदा वाणी शरीर कर्म पति को देवता के समान पूजन करे। कभी भी स्त्री पति के साथ विषम (कठोर) व्यवहार नहीं करे ॥६॥ बाला हो, युवती हो अथवा वृद्धा हो परन्तु स्त्री स्वतन्त्रता पूर्वक अपने गृह में भी कुछ कार्य को नहीं करे ॥७॥ अहङ्कार काम क्रोध के सदा त्याग कर पति के मन को सदा प्रसन्न करती रहे और दूसरे के मन को कभी प्रसन्न नहीं करे ॥८॥ जो स्त्री दूसरे पुरुष से कामना सहित देखी जाने पर, प्रिय

लम्पटोऽपिवा ॥५॥ सततं देववत् पूज्यः साध्व्या वाक्कायकर्मभिः ॥ न जातु विषमं भर्तुः स्त्रिया कार्यं कथञ्चन ॥६॥ बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ॥ न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित् कार्यं गृहेऽपि ॥७॥ अहङ्कारं विहायाथ कामक्रोधौ च सर्वदा ॥ मनसो रञ्जनं पत्युः कार्यं नान्यस्य कुत्रचित् ॥८॥ सकामं वीक्षिताऽप्यन्यैः प्रियवाक्यैः प्रलोभिता ॥ स्पृष्टा वा जनसम्मर्दे न विकारमुपैति या ॥९॥ यावन्तो रोमकूपाः स्युः स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः ॥ तावद्वर्षसहस्राणि नाकं ताः पर्युपासते ॥१०॥ पुरुषं सेवते नान्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥ लोभिताऽपि परेणार्थैः सा सती लोकभूषणा ॥११॥ दौत्येन प्रार्थिता वाऽपि बलेन विधृताऽपि

वचनों से प्रलोभन (लालच) देने पर अथवा जनसमुदाय (भीड़) में स्पर्श होने पर विकार को नहीं प्राप्त होती है ॥९॥ तो स्त्रियों के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने हजार वर्ष तक वह स्त्री स्वर्ग में वास करती है ॥१०॥ दूसरे पुरुष के धन के लोभ देने पर भी जो स्त्री पर पुरुष का मन वचन कर्म से सेवन नहीं करती है तो वह स्त्री लोक में भूषण और सती कही गई है ॥११॥ दूती (कुट्टिनी) के प्रार्थना करने पर भी बलपूर्वक पकड़ी जाने पर वस्त्र आभूषण आदि से आच्छादित होने पर भी जो स्त्री दूसरे पुरुष की सेवा नहीं

करती है तो वह सती कही जाती है ॥१२॥ जो दूसरे से देखी जाने पर नहीं देखती है और हँसाए जाने पर भी हँसाती नहीं है, बात करने पर बोलती नहीं है वह उत्तम लक्षणवाली पतिव्रता स्त्री है ॥१३॥ रूप यौवन से युक्त और गाने नाचने में हुशियार होने पर भी अपने अनुरूप पुरुष को देख कर विकार को नहीं प्राप्त होती है वह स्त्री सती है । १४॥ सुरुपवान्, जवान्, मनोहर, कामनियों का प्रिय

वा ॥ वस्त्राद्यैर्वासिता वापि नैवान्यं भजते सती ॥१२॥ वीक्षिता वीक्षते नान्यैर्हासिता न हसत्यपि ॥ भाषिता भाषते नैव सा साध्वी साधुलक्षणा ॥१३॥ रूपयौवनसम्पन्ना गीते नृत्येऽतिकोविदा ।। स्वानुरूपं नरं दृष्ट्वा न याति विकृतिं सती ॥१४॥ सुरूपं तरुणं रम्यं कामिनीनां च वल्लभम् ॥ या नेच्छति परं कान्तं विज्ञेया सा महासती ॥१५॥ देवो मनुष्यो गन्धर्वः सतीनां नापरः प्रियः ॥ अप्रियं नैव कर्त्तव्यं पत्युः पत्न्या कदाचन ॥१६॥ भुङ्क्ते भुक्ते यथा पत्यौ दुःखिते दुःखिता च या ॥ मुदिते मुदिताऽत्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा ॥१७॥ सुप्ते पत्यौ च या शेतेर्वमेव प्रबुद्धयति ॥ प्रविशेच्चैव या वन्हौ याते भर्त्तरि पञ्चताम् ॥१८॥ नान्यं कामयते चित्ते सा विज्ञेया पतिव्रता ॥ भक्तिं श्वशुरयोः कुर्यात्

ऐसे पर पुरुष के मिलने पर भी जो स्त्री इच्छा नहीं करती है तो वह महासती कही गई है ॥१५॥ पतिव्रताओं को पति के सिवाय दूसरा देवता, मनुष्य, गन्धर्व भी प्रिय नहीं होता है, इसलिए स्त्री अपने पति का अप्रिय कभी नहीं करे ॥१६॥ जो पति के भोजन करने पर भोजन करती है, दुःखित होने पर दुःखित होती है, प्रसन्न होने पर अत्यन्त प्रसन्न होती है, परदेश जाने पर मलिन वस्त्र को धारण करती है ॥१७॥ जो पति के शयन करने पर शयन करती है और प्रथम जागती है, पति के मरने पर अग्नि में प्रवेश करती है ॥१८॥

जो दूसरे को चित्त से भी नहीं चाहती है वह पतिव्रता स्त्री है, सास श्वसुर में भक्ति करती है और विशेष करके पति में भक्ति करती है ॥१९॥ धनसञ्चय में अनुकूल, गृह के कार्य में प्रतिदिन तत्पर रहने वाली है वह सती है ॥२०॥ खेत से, वन से, ग्राम के पति के आने पर स्त्री उठ कर आसन और जल देकर प्रसन्न करे ॥२१॥ नित्य प्रसन्न मुख रहे, समय पर भोजन दे और भोजन करते समय कभी भ

पत्युश्चापि विशेषतः ॥१९॥ धर्मकार्येऽनुकूलत्वमर्थकार्येऽपि सञ्चये ॥ गृहोपस्कर संस्कारे सक्ता या प्रतिवासरम् ॥२०॥ क्षेत्राद्वनाद्वा ग्रामाद्वा भर्त्तारं गृहमागतम् ॥ प्रत्युत्थायाभिनन्देत आसनेनोदकेन च ॥२१॥ प्रसन्नवदना नित्यं काले भोजनदायिनी ॥ भुक्तवन्तं तु भर्त्तारं न वदेदप्रियं क्वचित् ॥२२॥ आसने भोजने दाने सम्माने प्रियभाषणे ॥ दक्षया सर्वदा भाव्यं भार्यया गृहमुख्यया ॥२३॥ गृहव्ययनिमित्तं च यद्द्रव्यं प्रभुणाऽर्पितम् ॥ निर्वृत्य गृहकार्यं सा किञ्चिद्बुद्ध्याऽवशेषयेत् ॥२४॥ त्यागार्थमर्पिते द्रव्ये लोभात् किञ्चिन्न धारयेत् ॥ भर्त्तुराज्ञां विना नैव स्वबन्धुभ्यो दिशेद्धनम् ॥ २५ ॥ अन्यालापमसन्तोषं परव्यापारसंकथाः ॥ अतिहासातिरोषं च क्रोधं च परिवर्जयेत् ॥ २६ ॥ यच्च भर्त्ता न

अप्रिय वचन नहीं कहे ॥२२॥ गृह में प्रधान स्त्री सदा आसन, भोजन, दान, सम्मान, प्रिय भाषण में तत्पर रहे ॥२३॥ गृह खर्च के लिये पति ने जो कुछ धन दिया है उससे गृह के कार्य को करके बुद्धिपूर्वक कुछ बचा लेवे ॥२४॥ दान के लिए दिये हुए धन में से लोभ करके कुछ भी नहीं रखे और विना पति की आज्ञा के अपने बन्धुओं को धन नहीं देवे ॥२५॥ दूसरे के साथ बातचीत, असन्तोष, दूसरे पुरुष के व्यापार की बातचीत, अत्यन्त रोष और क्रोध को पतिव्रता स्त्री छोड़ देवे ॥२६॥ पति जिस वस्तु का पान नहीं करता

है, जिस वस्तु को खाता नहीं है, जिस वस्तु का भोजन नहीं करता है उन सब वस्तुओं का पतिव्रता स्त्री त्याग करे ॥२७॥ तैल लगाना, स्नान, शरीर में उबटन लगाना, दाँतों की शुद्धि, पतिव्रता स्त्री पति की प्रसन्ता के लिए करे ॥२८॥ हे मुने! त्रेतायुग से स्त्रियों प्रतिमास रजोदर्शन होता है उस दिन से तीन दिन त्याग कर गृहकार्य के लिए शुद्ध होती है ॥२९॥ प्रथम दिन चाण्डाली

खादति ॥ यच्च भर्त्ता न चाश्नाति सर्वं तद्वर्जयेत् सती ॥२७॥ तैलाभ्यङ्गं तथा स्नानं शरीरोद्वर्तनक्रियाम् ॥ मार्जनं चैव दन्तानांकुर्यात् पतिमुते सती ॥२८॥ त्रेताप्रभृति नारीणां मासिमास्यार्त्तवं मुने ॥ तदा दिनत्रयं त्यक्त्वा शुद्धा स्याद्गृहकर्मणि ॥२९॥ प्रथमेऽहनि-चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥३०॥ स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा ॥ यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतंचैवानुलेपनम् ॥३१॥ दिवा-स्वापं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम् ॥ मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम् ॥३२॥ वर्जयेच्च नमस्कारं देवतानां रजस्वला ॥ रजस्वलायाः संस्पर्शं सम्भाषां च तया सह ॥३३॥ त्रिरात्रं स्वमुखं नैव दर्शयेच्च रजस्वला ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नैव यावत्स्नाता न

है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी है, तीसरे दिन रज की (धोबिन) है। चतुर्थ दिन शुद्ध होती है ॥३०॥ स्नान, शौच, गाना, रोदन, हँसना, सवारी पर चढ़ना, मालिश, स्त्रियों के साथ जूआ खेलना, चंदनादि लगाना ॥३१॥ विशेष करके दिन में शयन, दतुअन करना, मानसिक अथवा वाचिक मैथुन करना, देवता का पूजन करना ॥३२॥ देवताओं को नमस्कार, रजस्वला स्त्री नहीं करे। रजस्वला का स्पर्श और उसके साथ बातचीत नहीं करे ॥३३॥ रजस्वला तीन रात तक अपने मुख को नहीं दिखावे जब तक शुद्धिस्नान नहीं करे

तब तक अपने वचनों को नहीं सुनावे ॥३४॥ रजस्वला स्त्री स्नान कर दूसरे पुरुष को नहीं देखे, सूर्यनारायण को देखे बाद ब्रह्मकूर्च (पञ्चगव्य) का पान करे ॥३५॥ अपनी शुद्धि के लिए केवल पञ्चगव्य अथवा दूध का पान करें। श्रेष्ट स्त्री कहे हुये नियम में स्थित रहै ॥३६॥ यदि स्त्री गर्भवती हो तो नियम में तत्पर रहे, वस्त्र आभूषण अलङ्कार आदि से अलङ्कृत रहे और के प्रिय करने में यत्न

शुद्धितः ॥३४॥ स्नात्वाऽन्यं पुरुषं नारी न पश्येच्च रजस्वला ॥ ईक्षेत भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत् ॥३५॥ केवलं पञ्चगव्यं च क्षीरं वाऽऽत्मविशुद्धये ॥ यथोपदेशं नियता वर्तयेत वराङ्गना ॥३६॥ गर्भिणी चेद्भवेन्नारी तदा नियमतत्परा ॥ अलङ्कृता सुप्रयता भर्त्तुः प्रियहिते रता ॥३७॥ तिष्ठेत् प्रसन्नवदना स्वधर्मनिरता शुचिः ॥ कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा ॥३८॥ कुस्त्रीभिर्नाभिभाषेत शूर्पवातं च वर्जयेत् ॥ मृतवत्सादिसंसर्गं परपाकं च सुन्दरी ॥३९॥ न वीभत्सं किञ्चिदीक्षेन्न रौद्रां शृणुयात् कथाम् ॥ गुरुं वात्युष्णमाहारमजीर्णं न समाचरेत् ॥४०॥ अनेन विधिना साध्वी शोभनं पुत्रमाप्नुयात् ॥ अन्यथा गर्भपतनं स्तम्भनं वा प्रपद्यते ॥४१॥ हीनां निजगुणैरन्यां सपत्नीं नैव गर्हयेत् ॥

पूर्वक तत्पर रहे ॥३७॥ प्रसन्न मुख रहे, अपने धर्म में तत्पर रहे और शुद्ध रहे, अपनी रक्षा कर विभूषित रहे, और वास्तुपूजन में तत्पर रहे ॥३८॥ खराब स्त्रियों के साथ बातचीत नहीं करे, सूप की हवा शरीर में नहीं लगे, मृतवत्सा आदि का संसर्ग, दूसरे के यहाँ भोजन गर्भवती स्त्री नहीं करे ॥३९॥ भद्दे चीज को नहीं देखे, भयङ्कर कथा को नहीं सुने, गरिष्ट और अत्यन्त उष्ण भोजन नहीं करे और अजीर्ण न हो ऐसा भोजन करे ॥४०॥ इस विधि से रहने पर पतिव्रता स्त्री श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करती है अन्यथा गर्भ गिर

जाय अथवा गर्भ स्तम्भन हो जाय ॥४१॥ अपने गुणों से हीन दूसरे सौत की निन्दा नहीं करे, ईर्षा, राग से होनेवाले मत्सरता के होने पर भी ॥४२॥ सौत स्त्री परस्पर में अप्रिय वचन नहीं कहें, दूसरे के नाम का गान न करे और दूसरे की प्रशंसा नहीं करे ॥४३॥ पति से दूर वास नहीं करे किंतु पति के समीप में वास करे और पति के कहे हुए स्थान में पृथिवी पर पति के सामने मुख करके वास

ईर्ष्यारागसमुद्भूते विद्यमानेऽपि मत्सरे ॥४२॥ अप्रियं नैव कर्त्तव्यं सपत्नीभिः परस्परम् ॥
न गायेदन्यनामानि न कुर्यादन्यवर्णनम् ॥४३॥ न वसेद्दूरतः पत्युः स्थेयं वल्लभसन्निधौ ॥
निर्दिष्टे च महीभागे वल्लभाभिमुखा वसेत् ॥४४॥ नावलोक्या दिशः स्वैरं नावलोक्यः
परोजनः ॥ विलासैरवलोक्यं स्यात् पत्युराननपङ्कजम् ॥ ४५ ॥ कथ्यमाना कथा भर्त्रा
श्रोतव्या सादरं स्त्रिया ॥ पत्युः सम्भाषणस्याग्रे नान्यत् सम्भाषयेत् स्वम् ॥४६॥ आहूता
सत्वरं गच्छेद्रतिस्थानां रतोत्सुका ॥ पत्यौ गायति सोत्साहं श्रोतव्यं हृष्टचेतसा ॥४७॥
गायन्तं च पतिं दृष्ट्वा भवेदानन्द निर्वृता ॥ भर्तुः समीपे न स्थेयं सोद्वेगं व्यग्रचित्तया ॥४८॥
कलहो न विधातव्यः कलियोग्ये प्रिये स्त्रिया ॥ भर्त्सिता निन्दिताऽत्यर्थं ताडिताऽपि

करे ॥४४॥ स्वतन्त्रता पूर्वक दिशाओं को न देखे और दूसरे पुरुष को नहीं देखे। विलास पूर्वक पति के मुखकमल को देखे ॥४५॥ पति से कही जाने वाली कथा को आदर पूर्वक स्त्री श्रवण करे। पति के भाषण के समय स्वयं स्त्री बातचीत नहीं करे ॥४६॥ रति में उत्कण्ठा वाली स्त्री पति के बुलाने पर शीघ्र रतिस्थान को जाय, पति के उत्साह पूर्वक गाने के समय स्त्री प्रसन्नचित्त से श्रवण करे ॥४७॥ गाते हुए पति को देखकर स्त्री आनन्द में मग्न हो जावे, पति के समीप व्यग्र (चञ्चल) चित्त से व्याकुल हो नहीं बैठे ॥४८॥ कलह

के योग्य होने पर भी पति के साथ स्त्री कलह न करे। पति से भर्त्सित होने पर, निन्दा की जाने पर ताड़ित होने पर भी पतिव्रता स्त्री ॥४६॥ व्यथित (दुःखित) होने पर भी भय छोड़ कर पति को कण्ठ से लगावे, ऊँचे स्वर से रोदन न करे और पति कोशे नहीं ॥५०॥ स्त्री अपने गृह से बाहर भाग कर न जाय, यदि बन्धुओं के यहाँ उत्सव आदि में जाय तो ॥५१॥ पति की आज्ञा लेकर और अध्यक्ष

पतिव्रता ॥४६॥ व्यथिताऽपि भयं त्यक्त्वा कण्ठे गृह्णीत वल्लभम् ॥ उच्चैर्न रोदनं कुर्यन्नैवाक्रोशेच्च तं प्रति ॥५०॥ पलायनं न कर्त्तव्यं निजगेहाद्बहिः स्त्रिया ॥ उत्सवादिषु बन्धूनां सदनं यदि गच्छति ॥५१॥ लब्ध्वाऽनुज्ञां तदा पत्युर्गच्छेदध्यक्षरक्षिता ॥ न वसेत् सुचिरं तत्र प्रत्यागच्छेद्गृहं सती ॥५२॥ प्रस्थानाभिमुखे पत्यौ नासन्मङ्गलभाषिणी ॥ न वार्योऽसौ निषेधोक्त्या न कार्यं रोदनं तदा ॥५३॥ अकृत्वोद्वर्त्तनं नित्यं पत्यौ देशान्तरे गते ॥ वधूर्जीवनरक्षार्थं कर्म कुर्यादनिन्दितम् ॥५४॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पार्श्वे निद्रा कार्या नचान्यतः ॥ प्रत्यहं पतिवार्ता च तयाऽन्वेष्या प्रयत्नतः ॥५५॥ दूताः प्रस्थापनीयाश्च पत्युः क्षेमोपलब्धये ॥ देवतानां प्रसिद्धानां कर्त्तव्यमुपयाचनम् ॥५६॥ एवमादि विधातव्यं

(पति) से रक्षित होकर जाय और वहाँ अधिक समय तक वास न करे, पतिव्रता स्त्री अपने घर को लौट आवे ॥५२॥ पति के विदेश यात्रा के समय अमङ्गल वचन को न बोले, निषेध वचन से मना न करे और उस समय रोदन न करे ॥५३॥ पति के देशान्तर जाने पर नित्य उबटन न लगावै और जीवन रक्षा के लिए स्त्री अनिन्दित (शुभ) कर्म को करे ॥५४। श्वसुर सास के पास शयन करे अन्यत्र न करे और प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक पति के समाचार का खोज लेती रहे ॥५५॥ पति के कल्याण समाचार मिलने के लिए दूत

को भेजे और प्रसिद्ध देवताओं के समीप माङ्गलिक याचना करे ॥५६॥ पति के परदेश जाने पर पतिव्रता इस प्रकार इत्यादि कार्यों को करे। अङ्गों को न धोना, मलिन वस्त्र को धारण करना ॥५७॥ तिलक न लगाना, आँजन न लगाना, सुगन्धित पदार्थ माला आदि त्याग, नख, बाल का संस्कार न करना, दाँतों में मिस्सी आदि नहीं लगाना ॥५८॥ ऊँचे स्वर से हँसना, दूसरे की हँसी दूसरे की

सत्या प्रोषितकान्तया ॥ अप्रक्षालनमङ्गानां मलिनाम्बरधारणम् ॥५७॥ तिलकाञ्जनहीनत्वं गन्धमालविवर्जनम् ॥ नखरोम्णामसंस्कारो दशनानाममार्जनम् ॥५८॥ उच्चैर्हासः परैर्नर्म परचेष्टाविचिन्तनम् ॥ स्वेच्छापर्यटनं चैव परपुंसाङ्गमर्दनम् ॥ ५९ ॥ अटनं चैकवस्त्रेण निर्लज्जत्वं यथा गतिः ॥ इत्यादि दोषाः कथिता योषितां नित्यदुःखदाः ॥६०॥ निर्वृत्य गृहकार्याणि हरिद्रालेपनै स्तनुम् ॥ प्रक्षाल्य शुचितोयेन कुर्यान्मण्डन मुज्ज्वलम् ॥६१॥ समीपं प्रेयसो गच्छेद्विकसन्मुखपङ्कजा ॥ अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयुता ॥६२॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छेच्च सत्वरम् ॥ किमर्थं व्यहृता स्वामिन् स प्रसादो विधीयताम् ॥६३॥ मा चिरं तिष्ठतां द्वारि न द्वारमुप सेवयेत्। स्वामिना दापितं किञ्चित्कस्मैचिन्न-

चाल व्यवहार का विशेष रूप से चिन्तन करना, स्वच्छन्द भ्रमण करना, दूसरे पुरुष के अङ्गों का मर्दन करना ॥५९॥ एक वस्त्र से घूमना, लज्जा रहित (उतान) होकर चलना, इत्यादि दोष स्त्रियों को दुःख देने वाले कहे गये हैं ॥६०॥ गृह में कार्यों को करके हरदी सेवन से और शुद्ध जल से शरीर को शुद्ध कर स्वच्छ शृङ्गार को करे ॥६१॥ खिले हुए कमल के समान प्रसन्न मुख होकर पति के समीप जाय, स्त्री के इस व्यवहार से युक्त और मन, वचन- शरीर से युक्त स्त्री ॥६२॥ पति से बोलाई जाने पर गृह के कार्यों को छोड़कर

शीघ्र पति के पास जाय और कहे कि हे स्वामिन्! किस लिये बोलाया है वह प्रसाद (कृपा) कीजिये ॥६३॥ द्वार पर अधिक समय तक खड़ें न होवे। द्वार का सेवन न करे, स्वामी से मिली हुई चीज दूसरे को कुछ भी न देवे ॥६४॥ पति के उच्छिष्ट मीठा, अन्न, फल आदि को यह महाप्रसाद है यह कहकर निरन्तर प्रसन्न रहे ॥६५॥ सुख से सोवे, सुख से बैठे, स्वेच्छा से स्मरण करते हुए और आतुर कार्यों में पति को नहीं उठावे ॥६६॥ अकेली कहीं न जाय, नग्न होकर स्नान न करे, पति से द्वेष करने वाली स्त्री को

ददात्यपि ॥६४॥ सेवयेद्भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नफलादिकम् ॥ महाप्रसाद इत्युक्त्वा मोदमाना निरन्तरम् ॥६५॥ सुखसुप्तं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥ आतुरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत् क्वचित् ॥६६॥ नैकाकिनी क्वचिद्गच्छेन्न नग्ना स्नानमाचरेत् ॥ भर्तृविद्वेषिणीं नारीं साध्वीं नो भावयेत्क्वचित् ॥६७॥ नोलूखले न मुसले न वार्धिन्यां दृषद्यपि ॥ न यन्त्रकेऽपि देहल्यां सती चापविशेत्क्वचित् ॥६८॥ तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥ शङ्करादपि विष्णोर्वा पतिरेवाधिकः स्त्रियाः ॥ ६९ ॥ व्रतोपवासनियमं मतिमुल्लङ्घ्य याऽऽचरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमिच्छति ॥७०॥ उक्ता प्रत्युत्तरं दद्यान्नारी

कभी पतिव्रता न समझे ॥६७॥ उलूखल, मूसल, झाड़ू, पत्थर, यन्त्र (चक्की आदि), देहली पर पतिव्रता कभी भी न बैठे ॥६८॥ तीर्थ में स्नान की इच्छा करने वाली स्त्री पति के चरण जल को पीवे, स्त्री के लिए शङ्कर से भी अथवा विष्णु भगवान् से भी अधिक पति ही कहा गया है ॥६९॥ जो स्त्री पति का वचन न मान कर व्रत उपवास नियमों को करती है वह पति के आयुष्य का हरण करती है और मरने के बाद नरक को जाती है ॥७०॥ किसी कार्य के लिए कहीं जाने पर जो स्त्री क्रोध कर पति के प्रति जवाब देती है वह

ग्राम में कुतिया होती है और निर्जन वन में सियारिन (गीदड़ी) होती है ॥७१॥ स्त्रियों के लिए एक उत्तम नियम कहा गया है कि कि स्त्री सदा पति के चरणों का पूजन करके भोजन करे ॥७२॥ जो स्त्री पति को त्याग कर अकेली मिठाई खाती है वह वृक्ष के खोंड़रे में सोने वाली क्रूर उलूकी (उल्लू) होती है ॥७३॥ जो स्त्री पति का त्याग कर अकेली एकान्त में फिरती है वह ग्राम में सूकरी होती है

क्रोधेन तत्परा ॥ सरमा जायते ग्रामे सृगाली निर्जने वने ॥७१॥ स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमः समुदाहृतः ॥ अभ्यर्च्य भर्तुश्चरणौ भोक्तव्यं च सदा स्त्रिया ॥७२॥ या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ॥ उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥७३॥ या भर्तारं समुत्सृज्य रहश्चरति केवलम् ॥ ग्रामे वा सूकरी भूयाद्वल्गुली वा श्वविड्भुजा ॥७४॥ या हुंकृत्याप्रियं ब्रूते सा मूका जायते खलु ॥ या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा साऽन्यजन्मनि ॥७५॥ दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ॥ काणा वा विमुखी चापि कुरूपा चैव जायते ॥७६॥ वाह्यादागतमालोक्य त्वरिता च जलासनैः ॥ ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पाद-संवाहनादिभिः ॥७७॥ अतिप्रियतरैर्वाक्यैर्भर्त्तारं या सुसेवते ॥ पतिव्रताशिरोरत्नं सा

अथवा अपने विष्ठा को खाने वाली गोह होती है ॥७४॥ जो स्त्री पति को हुँकार कह कर अप्रिय वचन बोलती है वह मूक (गूंगी) अवश्य होती, जो अपने सौत के साथ सदा ईर्ष्या करती है वह दूसरे जन्म में दुर्भगा (दरिद्रा) होती है ॥७५॥ जो स्त्री पति की दृष्टि बचा के किसी दूसरे पुरुष को देखती है वह कानी होती है अथवा विमुखी (टेढ़े मुखवाली) और कुरूपा होती है ॥७६॥ जो स्त्री पति को बाहर से आये हुए देखकर जल्दी से जल, आसन, ताम्बूल, व्यजन (पङ्खा), पैर को दबाना आदि ॥७७॥ अत्यन्त प्रिय वचनों से

पति की सेवा करती है वह स्त्री पतिव्रताओं में शिरोरत्न के समान पण्डितों से कही गई है ॥७८॥ पति देवता हैं, पति गुरु हैं, पति धर्म तीर्थ, व्रत है इसलिए सबका त्याग कर एक पति का ही पूजन करे ॥७९॥ जिस तरह जीवन से हीन देह क्षणभर में अशुचि (अपवित्र) हो जाता है उसी प्रकार पति से हीन स्त्री अच्छी तरह स्नान करने पर भी सदा अपवित्र है ॥८०॥ सब अमङ्गल वस्तुओं की

नारी कथिता: बुधैः ॥७८॥ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥७९॥ जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ भर्तृहीना तथा योषित् सुस्नाताऽप्यशुचिः सदा ॥८०॥ अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा ह्यत्यमङ्गला ॥ विधवादर्शनात्सिद्धिर्जातु क्वापि न जायते ॥८१॥ विहाय मातरं चैकामाशीर्वादप्रदायिनीम् ॥ अन्याशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीर्विषोपमम् ॥८२॥ कन्यां विवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः ॥ भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोऽपिवा ॥८३॥ तस्माद्भर्ताऽनुयातव्यो देहवच्छाया स्वया ॥ एवं सत्या सदा स्थेयं भक्त्या पत्यनुकूलया ॥८४॥ व्यालग्राही यथाव्यालं बिलादुद्धरते बलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं नयेत्सती ॥८५॥ यमदूताः

अपेक्षा बिधवा स्त्री के दर्शन से कभी भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है ॥८१॥ आशीर्वाद को देने वाली एक माता को छोड़ कर दूसरी आशीर्वाद को भी सर्प विष के समान त्याग देवे ॥८२॥ ब्राह्मण लोग विवाह के समय कन्या को इस प्रकार कहलाते हैं कि पति के जीवित तथा मृत दशा में सहचारी हो ॥८३॥ इसलिये अपनी छाया के सामान पति का अनुगमन करना चाहिये। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री को भक्ति से सदा पति के अनुकूल होकर रहना चाहिये ॥८४॥ जिस प्रकार सप को पकड़ने वाला बलपूर्वक बिल से सर्प को निकाल

लेता है इसी प्रकार सती स्त्री यमदूतों से छुड़ाकर पति को स्वर्ग ले जाती है ॥८५॥ यमराज के दूत दूर से ही पतिव्रता स्त्री को देख कर पापकर्म को करने वाले उसके पतित पति को छोड़ कर भाग जाते हैं ॥८६॥ जितने अपने शरीर के रोम संख्या है उतने दशकोटि वर्षपर्यन्त पतिव्रता स्त्री पति के साथ रमरण करती हुई स्वर्ग सुख को भोगती है ॥८७॥ दुष्ट व्यवहार वाली स्त्रियाँ शील का नाश कर दोनों कुल (पिता और पति के कुल) को डुबो देती हैं और इस लोक में तथा परलोक में दुःखित रहती हैं ॥८८॥ यदि दैववश

पलायन्ते सतीमालोक्य दूरतः ॥ अपि दुष्कृतकर्माणमुत्सृज्य पतितं पतिम् ॥८६॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोट्ययुतानि च ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥८७॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ॥ पितुः कुलं तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः ॥८८॥ अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथञ्चन ॥ तत्रापि शीलं संरक्ष्यं शील-भङ्गात्पतत्यधः ॥८९॥ तद्वैगुण्यात्पिता स्वर्गात्पतिः पतति नान्यथा ॥ विधवाकबरीबन्धो भर्तुर्बन्धाय जायते ॥९०॥ शिरसो वपनं कार्यं तस्माद्विधवया सदा ॥ एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन ॥९१॥ पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् । तस्माद्भू-

पति के पीछे किसी तरह पति का अनुगमन नहीं करती हैं तो उस दशा में भी शील की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि शील को तोड़ने से नीचे (नरक) को गिर जाती है ॥८९॥ उस स्त्री के दोष से पिता और पति स्वर्ग से गिर जाते हैं इसमें संशय नहीं है। विधवा स्त्री का कबरीबन्धन (केशों का बन्धन) पति के बन्धन के लिए होता है ॥९०॥ इस लिये विधवा स्त्री सदा शिर के बालों को मुड़ा देवे, एक बार सदा भोजन करे कभी भी दूसरी बार भोजन नहीं कर ॥९१॥ खाट पर शयन करने वाली विधवा स्त्री अपने पति को

नीचे गिरा देती है इसलिये पति के सुख की इच्छा से पृथिवी पर शयन करना चाहिये ।।९२।। अङ्गों में उबटन नहीं लगावे और ताम्बूल को न खाय, सुगन्ध पदार्थ का सेवन विधवा कभी न करे ।।९३।। प्रतिदिन कुश तिल जल से पति का तर्पण करे और पति के पिता का तथा उनके पिता का नाम गोत्र कह कर तर्पण करे ।।९४।। सदा श्वेत वस्त्र धारण करे ऐसा न करने से रौरव नरक को जाती है।

शयनं कार्यं पतिसौख्यसमीहया ।।९२।। नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं न ताम्बूलस्य भक्षणम् ।। गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्यस्तया क्वचित् ।।९३।। तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुश-तिलोदकैः ।। तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ।।९४।। श्वेतवस्त्रं सदा धार्यमन्यथा रौरवं व्रजेत् ।। इत्येवं नियमैर्युक्ता विधवापि पतिव्रता ।।९५।। श्रीनारायण उवाच ।। नैतादृशं दैवतमस्ति किञ्चित्सर्वेषु लोकेषु सदैवतेषु ।। यदा पतिस्तुष्यति सर्वकामाल्लभ्या-त्प्रकामं कुपितश्च हन्यात् ।।९६।। तस्मादपत्यं विविधाश्च भोगाः शय्यासनान्यद्भुत

इस प्रकार नियमों से युक्त विधवा स्त्री भी पतिव्रता होती है ।।९५।। श्रीनारायण बोले— समस्त लोकों में तथा समस्त देवताओं में ऐसा पति के समान कोई देवता नहीं है जब पति देवता प्रसन्न होते हैं तो समस्त मनोरथों को प्राप्त करती है यदि पति देवता कुपित होते हैं तो समस्त कामनायें नष्ट हो जाता हैं ।।९६।। उस पति से सन्तान, विविध प्रकार के भोग, शय्या, आसन, अद्भुत प्रकार के

भोजन, वस्त्र, माला, सुगन्धित पदार्थ ये सब पदाथ और इस लोक में तथा स्वर्ग लोक में विविध प्रकार के यश मिलते हैं ॥६७॥
इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे पतिव्रतधर्मनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

सूतजी बोले। हे विप्र लोग! नारद मुनि इस प्रकार पतिव्रता के धर्म को सुनकर कुछ पूछने की इच्छा से पुरातन नारायण

भोजनानि ॥ बस्त्राणि माल्यानि तथैव गन्धाः स्वर्गे च लोके विविधा च कीर्तिः ॥६७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे पतिव्रताधर्मनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

सूत उवाच ॥ इत्थं पतिव्रताधर्ममाकर्ण्य नारदो मुनिः ॥ किञ्चित्प्रष्टुमना विप्रा मुनिमाह पुरातनम् ॥१॥ नारद उवाच ॥ सर्वदानाधिकं कांस्यसम्पुटं परिकीर्तितम् ॥ एतत्कारणमव्यक्तं वद मे बदरीपते ॥२॥ श्रीनारायण उवाच॥ एकदैतद्व्रतं ब्रह्मन्नचीकरदुमा पुरा ॥ तदापृच्छन्महादेवं किं देयं दानमुत्तमम् ॥३॥ येन सम्पूर्णतां याति व्रतं मे पौरुषोत्तमम् ॥ तन्मे वद दयासिन्धो सर्वेषां हितहेतवे ॥४॥ तच्छ्रुत्वा मनसि ध्यात्वा ध्यायन् श्रीपुरुषोत्तमम् ॥

मुनि से बोले ॥१॥ नारदजी बोले हे बदरीपते! आपने समस्त दानों में अधिक फल को देने वाला कांसा के सम्पुट का दान कहा है इसके अव्यक्त (अस्पष्ट) कारण को खुलासा करके मेरे लिए कहिये ॥२॥ श्रीनारायण बोले हे ब्रह्मन्! प्रथम एक समय पार्वती ने इस व्रत को किया था उस समय श्रीमहादेव जी से पूछा कि हे महादेव! इस व्रत में उत्तम दान क्या देना चाहिये ॥३॥ जिसके देने से मेरा पुरुषोत्तम व्रत सम्पूर्ण हो जावे। हे दयासिन्धो! समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए उस दान को मेरे से कहिये ॥४॥ पार्वती के

वचन को सुनकर शम्भू भगवान् ने श्रीपुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करते हुए मन में इस बात का विचार कर समस्त लोक के हित को चाहने वाली उमा (पार्वती) से कहा ॥५॥ श्रीमहादेव जी बोले। हे अपर्णे! श्रीपुरुषोत्तम मास में व्रतविधि को पूर्ण करने के योग्य वेद में कहीं पर भी कोई दान नहीं है ॥६॥ हे गिरिसुते जो जो उत्तम दान कहे हैं। वे सब श्रीकृष्ण के प्रिय पुरुषोत्तम मास में गौण हो

उमाम जोगदच्छम्भुः सर्वलोकहितैषिणाम् ॥५॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ न शक्यं किञ्चि-
देवास्ति दानं श्रीपुरुषोत्तमे ॥ व्रतपूर्णविधिं कर्तुमपर्णे छन्दसि क्वचित् ॥६॥ यद्यद्दानं
गिरिसुते ह्युत्तमं परिकीर्तितम् ॥ श्रीकृष्णवल्लभे मासि तत्सर्वं गौणतां गतम् ॥७॥ तस्मा-
देतादृशं दानं नैवास्ति क्वापि सुंदरि येन ते व्रतसम्पूर्तिर्भवेच्छ्रीपुरुषोत्तमे ॥८॥ पुरुषोत्तम-
मासेऽस्मिन् व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ ब्रह्माण्डं सम्पुटाकारं तदहं देयमङ्गने ॥९॥ न शक्यं तत्तु
केनापि दातुं क्वापि वरानने ॥ तस्मादेतत्प्रतिनिधिं कृत्वा कांस्यस्य सम्पुटम् ॥१०॥
तन्मध्ये पूरयित्ववापूपांस्त्रिंशन्मितान्मुदा ॥ सप्ततन्तुभिरावृत्य सम्पूज्य विधिवत्प्रिये ॥११॥
देयं विप्राय विदुषे व्रतसम्पूर्तिहेतवे ॥ एवं त्रिंशन्मितान्येव देयानि सति वैभवे ॥१२॥

गये हैं ॥७॥ इसलिए हे सुन्दरि! कहीं भी ऐसा दान नहीं है श्रीपुरुषोत्तम मास में जिसके करने से तुम्हारा व्रत पूर्ण हो ॥८॥ हे अङ्गने! इस पुरुषोत्तम मास में व्रत की पूर्ति के लिए सम्पुटाकार ब्रह्माण्ड का दान है उसको देना चाहिये ॥९॥ हे वरानने! वह दान कहीं भी किसी से देने के योग्य नहीं है इसलिए इस ब्रह्माण्ड के बदले में कांसे का सम्पुट बनाकर ॥१०॥ हे प्रिये! उसके भीतर प्रसन्नता से तीस मालपूआ रखकर सात तन्तु (डोरा) से बाँध कर और विधिपूर्वक पूजन करके ॥११॥ व्रत की पूर्ति के लिए विद्वान् ब्राह्मण को देवे।

यदि विभव हो तो इस प्रकार ३० तीस सम्पुट देवे ॥१२॥ धुर्जटि (शङ्कर) भगवान के उपकारक और सुन्दर वचन को सुनकर और सुन्दर वचन को सुनकर समस्त लोक के हित को चाहने वाली पार्वती प्रसन्न हो गईं ॥१३॥ हे नारद ! पार्वती तीस कांसे से सम्पुट को विद्वान् ब्राह्मणों को देकर तथा व्रतविधि को पूर्ण कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ।१४॥ सूतजी बोले । हे विप्र लोग ! इस प्रकार नारद मुनि

इत्याकर्ण्य वचो रम्यं धूर्जटेरुपकारकम् ॥ अभीभवदुमा हृष्टा सर्वलोकहितैषिणी ॥१३॥ त्रिंशत्कांस्यानि विद्वद्भ्यः सम्पुटानि व्यतीर्य सा ॥ पूर्णं व्रतविधिं कृत्वा मुमोदातीव नारद ॥१४॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिर्विप्रा नारायणवचोऽमृतम् ॥ पुनराहातितृप्ताऽसौ नामं नामं पुनः पुनः ॥१५॥ नारद उवाच ॥ सर्वेभ्यः साधनेभ्योऽयं मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ वरीयान्निश्चितो मेऽद्य श्रुत्वा महात्म्यमुत्तमम् ॥१६॥ श्रुत्वापि जायते भक्त्या महापापक्षयो नृणाम् ॥ किं पुनः श्रद्धया कर्तुर्विधिना चेति मे मतिः ॥१७॥ अतः परं न किञ्चिन्मे श्रोतव्यमवशिष्यते ॥ पीयूषात्यन्तसन्तृप्तो नान्यत्तोयं समीहते ॥१८॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा विरतो विप्रो नारदो मुनिसत्तमः ॥ अनीनमत्पादपद्मं पुरातनमुनेः

नारायण के अमृत के समान वचन को सुनकर अत्यन्त तृप्त हो बारम्बार नमस्कार कर पुनः बोले ॥१५॥ नारद मुनि बोले । सब साधनों से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास है । इस समय इसका उत्तम माहात्म्य सुन कर मेरे को ऐसा निश्चय हुआ ॥१६॥ केवल भक्ति पूर्वक श्रवण करने से भी मनुष्यों के महान् पापों का क्षय (नाश) हो जाता है तो श्रद्धा और विधि से करने वाले को फिर कहना ही क्या है ? यह बुद्धि है ॥१७॥ इसके बाद मेरे को सुनने को कुछ भी शेष नहीं रहा है क्योंकि अमृत के पान से अत्यन्त तृप्त मनुष्य दूसरे जल की

इच्छा नहीं करता है ॥१८॥ सूतजी बोले। मुनि श्रेष्ठ विप्र नारदजी इस प्रकार कहकर चुप हो गये और प्राचीन मुनि नारायण के श्रेष्ठ चरण कमल को नमस्कार करते भये ॥१९॥ जो प्राणी इस भारतवर्ष में जन्म को प्राप्त कर उत्तम श्रीपुरुषोत्तम मास के सेवन नहीं करते हैं, न श्रवण करते हैं, वे मनुष्य गृह में आसक्त रहने वाले मनुष्यों में अधम हैं ॥२०॥ इस संसार में जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं और जन्म जन्म में पुत्र, मित्र, स्त्री, श्रेष्ठ जन के वियोग से दुःख के भागी होते हैं ॥२१॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इस पुरुषोत्तम मास में

परम् ॥१९॥ भारते जनुरासाद्य पुरुषोत्तममुत्तमम् ॥ न सेवन्ते न शृण्वन्ति गृहासक्ता नराधमाः ॥२०॥ गतागतं भजन्तेऽत्र दुर्भगा जन्मजन्मनि ॥ पुत्रमित्रकलत्राप्तवियोगा-दुःखभागिनः ॥२१॥ अस्मिन्मासे द्विजश्रेष्ठ नासच्छास्त्राण्युदाहरेत् ॥ न स्वपेत् परशय्यायां नालपेद्वितथं क्वचित् ॥२२॥ परापवादान्न ब्रूयान्न कथञ्चित्कदाचन ॥ परान्नं च न भुञ्जीत न कुर्वीत परक्रियाम् ॥२३॥ वित्तशाठ्यमकुर्वाणो दानं दद्याद्विजातये ॥ विद्यमाने धने शाठ्यं कुर्वाणो रौरवं व्रजेत् ॥२४॥ दिने दिने द्विजेन्द्राय दत्त्वा भोजनमुत्तमम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे व्रती भोजनमाचरेत् ॥२५॥ धन्यास्ते पुरुषा लोके ये नित्यं पुरुषोत्तमम् ॥

असत् शास्त्रों को नहीं कहे, दूसरे की शय्या पर सयन नहीं करे, कभी वितथ (असत्य) बातचीत नहीं करे ॥२२॥ कभी किसी प्रकार दूसरे की निन्दा नहीं करे परान्न को नहीं खाय और दूसरे की क्रिया को नहीं करे ॥२३॥ धन की शठता को न करता हुआ ब्राह्मण को दान देवे। धन के रहने पर धन की शठता करने वाला रौरव नरक को जाता है ॥२४॥ प्रतिदिन ब्राह्मण को भोजन देवे और व्रत करने वाला दिन के आठवें भाग (४ बजने पर) भोजन करे ॥२५॥ वे पुरुष धन्य हैं जो इस लोक में भक्ति और विधान से

प्रेमपूर्वक पुरुषोत्तम भगवान् का नित्य पूजन करते हैं ।।२ ।। इन्द्रद्युम्न, शतद्युम्न, यौवनाश्व और भगीरथ राजा पुरुषोत्तम का आराधन कर भगवान् के समीप चले गये ।।२७।। इस लिये समस्त साधनों से श्रेष्ठ, समस्त अर्थों के फल को देने वाले पुरुषोत्तम मास में पुरुषोत्तम भगवान् का सब तरह से सेवन करना चाहिये ।।२८।। गोवर्धन को धारण करने वाले, गोप स्वरूप, गोपाल, गोकुल के उत्सवस्वरूप, ईश्वर, गोपिकाओं के प्रिय, गोविन्द भगवान को नमस्कार करता हूँ ।।२९।। प्रथम कौण्डिन्य ऋषि ने इस मन्त्र को बार

अर्चयन्ति विधानेन भक्त्या प्रेमपुरःसरम् ।।२६।। इन्द्रद्युम्नः शतद्युम्नो यौवनाश्वो भगीरथः ।। पुरुषोत्तममाराध्य ययुर्भवदन्तिकम् ।।२७।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यः पुरुषोत्तमः ।। सर्वसाधनतः श्रेष्ठः सर्वार्थफलदायकः ।।२८।। गोवर्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम् ।। गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम् ।।२९।। कौण्डिन्येन पुरा प्रोक्तमिमं मन्त्रं पुनः पुनः ।। जपन्मासं नयेद्भक्त्या पुरुषोत्तममाप्नुयात् ।।३०।। ध्यायेन्नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् ।। लसत्पीतपटं रम्यं सराधं पुरुषोत्तमम् ।।३१।। ध्यायं ध्यायं नयेन्मासं पूजयन्पुरुषोत्तमम् ।। एवं यः कुरुते भक्त्या स्वाभीष्टं सर्वमाप्नुयात् ।।३२।। गुह्याद्गुह्यतरं चैतन्नवाच्यं

बार कहा कि जो इस मन्त्र का भक्ति से जप करता हुआ पुरुषोत्तम मास को व्यतीत करता है वह पुरुषोत्तम भगवान् को प्राप्त करता है ।।३०।। नवीन मेघ के सामान श्याम, दो भुजावाले, मुरलीधर, शोभमान. पीतवस्त्रधारी, सुन्दर, राधिका के सहित पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान करे ।।३१।। पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान और पूजन करता हुआ पुरुषोत्तम मास को व्यतीत करे। इस प्रकार जो मनुष्य भक्ति से व्रत करता है वह अपने समस्त अभीष्ट को प्राप्त करता है ।।३२।। हे तपोधन ! यह गुप्त से भी गुप्त व्रत जिस किसी को

नहीं कहना चाहिये । मैंने भी किसी के सामने नहीं कहा है ॥३३॥ हे विप्रलोग ! अभीष्ट फलदायक, पवित्र इस पुराण को आदरपूर्वक हमेशा श्रवण करना चाहिये । एक श्लोकमात्र के श्रवण भी मनुष्यों के समस्त पापों को नष्ट करता है ॥३४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! गङ्गादि समस्त तीर्थों में स्नान से जो फल मिलता है वह फल पुरुषोत्तम मास माहात्म्य के श्रवण से मिलता है ॥३५॥ मनुष्य पृथिवी की

यस्य कस्यचित् ॥ मयाऽपि कथितं नैव कस्याऽप्यग्रे तपोधनाः ॥३३॥ श्रोतव्यमेतत्सतत पुराणमभीष्टदं पावनमादरेण ॥ श्लोकैकमात्रश्रवणेन पुंसामघानि सर्वाणि निहन्ति विप्राः ॥३४॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु मज्जतो यत्फलं भवेत् ॥ तत्फलं शृण्वतस्तस्य माहात्म्यं मुनिसत्तमाः ॥३५॥ इलां प्रदक्षिणीकुर्वन् यत्पुण्यं लभते नरः ॥ तत्पुण्यं शृण्वतस्तस्य माहात्म्यं पौरुषोत्तमम् ॥३६॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो वसुधाधिपः ॥ वैश्यो धनपति-र्भूयाच्छूद्रः सत्तमतां लभेत् ॥३७॥ येऽन्ये किरातहूणाद्याः पशुचर्यापरायणाः ॥ ते सर्वे मुक्तिमायान्ति श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ॥३८॥ पुरुषोत्तममहात्म्यं लेखयित्वा द्विजन्मने ॥ सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिर्विधिना यः प्रयच्छति ॥३९॥ कुलत्रयं समुद्धृत्य गोलोकं याति दुर्ल-

प्रदक्षिणा करता हुआ जिस पुण्य को प्राप्त करता है वह पुण्य पुरुषोत्तम मास माहात्म्य के श्रवण से होता है ॥३६॥ ब्राह्मण ब्रह्मतेज वाला, क्षत्रिय पृथिवी का मालिक, वैश्य धन का मालिक होता है और शूद्र श्रेष्ठ हो जाता है ॥३७॥ और जो दूसरे पशुचर्या में तत्पर किरात हूण आदि हैं वे सब पुरुषोत्तम के माहात्म्यश्रवण से मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥३८॥ जो पुरुषोत्तम मास माहात्म्य को लिख कर और वस्त्र आभूषण आदि से भूषित कर विधिपूर्वक ब्राह्मण को देता है ॥३९॥ वह तीनों कुलों का उद्धार करके जहाँ पर गोपिकाओं

के समूह से घिरे हुए पुरुषोत्तम भगवान् हैं ऐसे दुर्लभ गोलोक को जाता है ॥४०॥ जो इस उत्तम माहात्म्य को लिख कर गृह में रखता है उसके गृह में समस्त तीर्थ निरन्तर विलास करते हैं ॥४१॥ अनन्त पुण्य को देनेवाले महीनों में श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास के माहात्म्य को सुनकर समस्त मुनिलोग आश्चर्य करने लगे और भगवान् की चरण सेवा में अत्यन्त निपुण मुनि लोग विनयपूर्वक

भम् ॥ यत्रास्ते गोपिकावृन्दैर्वेष्टितः पुरुषोत्तमः ॥४०॥ लिखित्वा धारयेद्यस्तु गृहे माहात्म्यमुत्तमम् ॥ तद्गृहे सर्वतीर्थानि विलसन्ति निरन्तरम् ॥४१॥ मासोत्तमस्य महिमानमनन्तपुण्यं श्रुत्वा सुविस्मितधियो मुनयश्च सर्वे ॥ ऊचुश्च सूततनयं विनयेन विष्वक्सेनाङ्घ्रिसेवनविधौ निपुणा नितान्तम् ॥ ४२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग धन्योऽसि त्वं महामते ॥ त्वन्मुखामृतपानेन कृतार्थाः स्म वयं भृशम् ॥४३॥ चिरञ्जीव सदा सूत पौराणिकशिरोमणे ॥ अस्तु ते शाश्वती कीर्तिर्जगत्पावनपावनी ॥४४॥ तुभ्यं प्रदत्तं निमिषालयस्थैर्ब्रह्मासनं पूज्यतमं मुनीशैः ॥ त्वदीयवक्त्राम्बुजनिर्गत श्रीमुकुन्दवार्तामृतपानलोलैः ॥४५॥ विष्टरश्रवस एव पवित्रा यावदेव वितता भुवि कीर्तिः ॥ तावदत्र

सूतजी के पुत्र से बोले ॥४२॥ ऋषि लोग बोले हे सूत ! हे सूत ! हे महाभाग ! हे महामते ! तुम धन्य हो तुम्हारे मुख से अमृत पान कर हम सब अत्यन्त कृतार्थ हो गये ॥४३॥ हे सूत ! हे पौराणिकों में शिरोमणि ! तुम सदा चिरञ्जीवी होवो और तुम्हारी कीर्ति निरन्तर जगत् में पवित्रों को भी पवित्र करने वाली हो ॥४४॥ तुम्हारे मुखकमल से निकले हुए श्रीमुकुन्द (श्रीकृष्ण) के कथामृत के पान में लोभ, नैमिषारण्य में स्थित मुनीन्द्रों ने आपके लिए अत्यन्त पूज्य ब्रह्मासन दिया गया ॥४५॥ जब तक विष्णु भगवान् की

कीर्त्ति पृथिवी पर रहे तब तक इस पृथिवी पर मुनियों के समाज में हरि भगवान् की सुन्दर कथा को कहिये ॥४६॥ इस प्रकार ब्राह्मणों के आशीर्वचन को ग्रहण कर और समस्त ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर तथा नमस्कार कर अपने कृत्य को करने के लिए देवनदी (गङ्गा) को वह सूतजी के पुत्र गये ॥४७॥ नैमिषारण्य में स्थित सब लोग परस्पर कहने लगे कि यह प्राचीन पुरुषोत्तम मास का श्रेष्ठ और

मुनिवर्यसमाजे श्रीहरेर्वद कथां कमनीयाम् ॥४६॥ इत्थं द्विजाशीर्वचनं प्रगृह्य प्रदक्षिणी-कृत्य द्विजान् समस्तान् ॥ नत्वाऽगमद्देवनदीं स्वकीयं कृत्यं विधातुं स च सूतसूनुः ॥४७॥ अन्योन्यमुचुर्निमिषालयस्था वरिष्ठमाहात्म्यमिदं पुराणम् ॥ मासस्य दिव्यं पुरुषोत्तमस्य समाहितार्थार्पणकल्पवृक्षम् ॥४८॥ इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनारदसंवादे पुरुषोत्तममासमाहाम्यश्रवणफलकथनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ समाप्तमिदं पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम् ॥

दिव्य महात्म्य अभिलषित अर्थों को देने में कल्पवृक्ष ही है ॥४८॥ इति श्रीवृहन्नारदीयपुराणे पुरुषोत्तममासमाहात्म्ये श्रीनारायणनाराद-संवादे पुरुषोत्तममासमाहात्म्य श्रवणफलकथनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

सनाढ्यवंशोद्भव-डीङ्गरपुरियोपाह्व पण्डित जगन्नाथव्याससूनुना काशीस्थकाशीनाथसंस्कृतपाठशालायाःप्रधानाध्यापकेन व्याकरणाचार्य विद्यारत्न' पण्डित माधवप्रसादव्यासेन विरचिता माधवी नाम भाषाटीका समाप्ता ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

——:०:——

अथ पुरुषोत्तम [मलमास] मासव्रतोद्यापनप्रयोगः प्रारभ्यते।

अथ मलमासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां त्रयोदश्यामष्टम्यां तृतीयायां नवम्यामन्यतमतिथा-वुद्यापनं कार्यम्।

कर्ता कर्मदिने प्रातरुत्थाय स्नात्वा आहते धौते वाससी परिधाय नित्यकर्म समाप्य सर्वविघ्ननिवारणं गणेशपूजनं कुर्यात्। प्रथमं तमःसञ्चारिभूतादि निवारणार्थं दीपं प्रज्वाल्य-'नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे। सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥' इति तं सम्पूज्य आचम्य, गणेशाय पुष्पाञ्जलिं समर्प्य, 'सुमुखश्चैकदन्तश्च'—इत्यादि पठेत्। ततो महेश्वरस्मरणं कृत्वा गौरीं विष्णुं सूर्यं च प्रणमेत्।

ततः सङ्कल्पः—ॐ विष्णुः ३ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ॐ तत्सदद्य पृथिव्यां जम्बूद्वीपे भारतवर्षे कुमारिकाखण्डे आर्यावर्तैकदेशे अमुकपुण्यक्षेत्रे (अविमुक्त-वाराणसीक्षेत्रे) ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृतत्रेता-द्वापरान्ते अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलियुगस्य प्रथमचरणे षष्ट्यब्दानां मध्ये अमुकनाम-

संवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशि-
स्थिते श्रीचन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीदेवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथाराशिस्थानस्थितेषु एवं गुण-
विशेषण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रोऽमुकराशिर-
मुकशर्माऽहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तये ममाऽऽत्मनो दारिद्र्यपापदुःखनाशनसत्पुत्रप्राप्ति
पूर्वकाऽतुलभोगसिद्ध्ये वर्णाश्रमोचितकर्मानुष्ठान श्रद्धाद्वारकतदनुष्ठानजनितचित्तशुद्धि सम्पा-
दितसाधनचतुष्टयसमासादितात्मविचारणासञ्जातप्रत्यक्ब्रह्मै क्यानुसन्धाननिष्ठानिरस्ताशेषानर्थ-
व्रातत्तासमुद्बोधिताखण्डानन्दसाक्षात्काररूपब्रह्मप्राप्त्यर्थं सर्वेप्सितकामनासिद्ध्यर्थं आचरितस्य
आचीर्यमाणस्य च श्रीपुरुषोत्तममासव्रतस्य सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं श्रीसवितृरूपजनार्दनदेवता-
प्रीत्यर्थं च श्रीपुरुषोत्तम (मलमास) मासव्रतोद्यापनं करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याह-
वाचनं अविघ्नपूजनं मण्डपदेवतापूजनं मातृकापूजनं वसोर्द्धारापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं साङ्क-
ल्पिकेन विधिना नान्दी श्राद्धं आचार्यादिवरणानि (ग्रहानुकूलतासिद्धये) ग्रहयज्ञं च करिष्ये।
तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य गणपतिपूजना-
दिनान्दीश्राद्धान्तं कृत्वा आचार्यादीन् वृणुयात्। वृताचार्यः सर्षपान् विकीर्य पञ्चगव्ये[illegible] प्रोक्ष्य

उक्तविधिना मध्याह्ने सर्वतोभद्रे देवतानां स्थापनं पूजनं च पूर्ववत् कुर्यात्। तदुपरि व्रीहिस्थे कलशे हैमं लक्ष्मीयुतं जनार्दनं 'श्रीश्चते'—'विष्णोरराटमसि'—इति च मन्त्राभ्यां संस्थाप्य पूर्ववत् सम्पूज्य नानाविधपक्वान्ननैवेद्यं दद्यात्। फलपुष्पोपेतमर्घ्यं च दद्यात्। तत्र मन्त्रः—'देवदेव जगन्नाथ प्रलयोत्पत्तिकारक ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपां कुरु ममोपरि ॥' ततः प्रदक्षिणां नमस्कारं च विधाय प्रार्थयेत्। तत्र प्रार्थनामन्त्राः—क्षीरोदार्णवसम्भूते कमले कमलालये ॥ प्रयच्छ सर्वकामान् मे विष्णुवक्षःस्थलालये ॥१॥ पुत्रान् देहि धनं देहि सौख्यं सौभाग्यमेव च ॥ कुरु श्रियं महालक्ष्मीरप्रियं त्वाशु नाशय ॥२॥ जगन्नाथ नमस्तुभ्यं सर्वकाम-फलप्रद ॥ देहि मे सर्वजामांश्च पुत्रपौत्रान् प्रवर्धय ॥३॥ व्रतेनानेन सन्तुष्टो भवत्विह सदा मम ॥ ततः क्षमापनं कुर्यात्। तत्र मन्त्रः—न्यूनातिरिक्तकर्माणि मया यानि कृतानि च ॥ क्षमध्वं तानि सर्वाणि यूयं सर्वाश्च देवताः ॥१॥ ततः कथाश्रवणादिना रात्रिं निनयेत्। द्वितीयदिने प्रातःकाले नित्यकर्म समाप्य स्थापितदेवताः सम्पूज्य कुण्डे स्थण्डिले वा अग्निं प्रतिष्ठाप्य ग्रहाणां स्थापनं पूजनं च विधाय ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा ग्रहहोमः कार्यः। ततः प्रधानहोमः। तत्र क्रमः—पूजोक्तमन्त्राभ्यां लक्ष्मीसहितं जनार्दनं प्रतिमन्त्रमष्टोत्तरसंख्याकाभिः घृताक्तपायसबिल्वघृत-

द्रव्याहुतिभिर्हुत्वा मण्डलदेवताश्च एकैकयाऽऽहुत्या हुत्वा स्विष्टकृदादिप्रणीताविमोकान्तं कर्म कृत्वा प्रतित्रयस्त्रिंशदपूपान् त्रयस्त्रिंशत्प्रतिकांस्यपात्रेषु निधाय अन्यत्रयस्त्रिंशत्कांस्यपात्रैः सञ्छाद्य सघृतानि सहिरण्यानि वायनानि कृत्वा सपत्नीकत्रयस्त्रिंशत्संख्याकब्राह्मणेभ्यः सम्पूज्य निवेदयेत्। अथवा एकं सपत्नीकं ब्राह्मणं वस्त्रादिना सम्पूज्य त्रयस्त्रिंशदपूपान् कांस्यपात्रे निधाय सघृतं सहिरण्यं वायनं ब्राह्मणाय निवेदयेत् तत्र मन्त्रः—विप्राय वेदविदुषे श्रोत्रियाय कुटुम्बिने॥ नरकोत्तारणार्थाय ह्यच्युतः प्रीयतामिति॥ इति दत्त्वा छत्रोपानद्भूषणाच्छादनादियुतां शय्यां च दत्वा व्रतपूर्त्तये ब्रह्मणे वृषभं आचार्याय गां प्रधानपीठं च समर्प्य स्थापितदेवतानामुत्तरपूजनं विसर्जनं च विधाय नानाविधपक्वान्नैस्त्रयस्त्रिंशत्सपत्नीकान् ब्राह्मणान् अन्यांश्च ब्राह्मणान् दीनानाथांश्च सन्तर्प्य आशिषो गृहीत्वा भूयसीं दक्षिणां दत्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा बन्धुभिः सह भुञ्जीत॥

इति श्रीकाशीस्थकाशीनाथसंस्कृतपाठशालायां प्रधानध्यापकेन सनाढ्यवंशोद्भवडीङ्गुरपुरीयोपाह्व श्रीपण्डितजगन्नाथव्याससूनुना व्याकरणाचार्येण 'विद्यारत्न' पण्डितमाधवप्रसादव्यासेन सम्पादितः श्रीपुरुषोत्तम (चलमास) मासव्रतोद्यापनप्रयोगः समाप्तः॥

जनता प्रेस, बुलानाला, वाराणसी।

इति

पुरुषोत्तममासमाहात्म्यम्

समाप्तम्

प्रकाशक—पं० त्रिभुवननाथ भार्गव

भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी १.